Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

पंचम सेमेस्टर - बी0ए0एस0एल (N)- 320

संस्कृत साहित्य का इतिहास

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **बी0ए0एस0एल (N)- 320**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकाय अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर देवेश कुमार मिश्र,
संस्कृत संकाय, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादन

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
प्रोफेसर बृजेश कुमार पाण्डेय, संकाय अध्यक्ष, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**खण्ड 1**	**(इकाई 1 से 5)**
डॉ०उमेश कुमार शुक्ल, प्रवक्ता व्याकरण (संस्कृत विभाग) श्री मुनिकुल ब्रह्मचर्यआश्रम वेद संस्थान,मंदालगढ़	**खण्ड 2**	**(इकाई 1 से 5)**
डॉ० मारूति नन्दन मिश्र, महादेव पी०जी० कॉलेज, बरियाजनपुर, चिरई गाँव, वाराणसी	**खण्ड 3**	**(इकाई 1 से 6)**

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- संस्कृत साहित्य का इतिहास (BASL (N)- 320)
प्रकाशन वर्ष : 2025
ISBN No.
मुद्रक:

नोट:- सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) संस्कृत साहित्य का इतिहास : भाग-1	**पृष्ठ संख्या 01-04**
इकाई 1 – आदिकवि वालमीकि परिचय, समय, रामायण का मूल्यांकन	05-22
इकाई 2 – वेदव्यास : परिचय, समय, महाभारत का परिचय	23-44
इकाई 3 – कालिदास : परिचय - कृतित्व	45-56
इकाई 4 – कालिदास की काव्यकला, नाट्यकला एवम् उपमा कालिदासस्य	57-72
इकाई 5– महाकवि माघ का जीवन परिचय,समय एवं कृतियों का महत्त्व	73-79
खण्ड- दो (Section-B) संस्कृत साहित्य का इतिहास : भाग-2	**पृष्ठ संख्या 80**
इकाई 1 –भारवि : व्यक्तित्व एवं कृत्तियों का विस्तृत परिचय	81-102
इकाई 2 – श्रीहर्ष : व्यक्तित्व एवं कृत्तियों का विस्तृत परिचय	103-115
इकाई 3 – जयदेव : व्यक्तित्व एवं कृत्तियों का विस्तृत परिचय	116-122
इकाई 4 – भवभूति : व्यक्तित्व एवं कृत्तियों का विस्तृत परिचय	123-136
इकाई 5– शूद्रक : व्यक्तित्व एवं मृच्छकटिकम् की नाटकीय विशेषताएँ	137-150
खण्ड- तीन (Section-C) संस्कृत साहित्य का इतिहास: भाग-3	**पृष्ठ संख्या 151**
इकाई 1– शाखदत्त:व्यक्तित्व एवं मुद्राराक्षस का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक विवेचन	152-173
इकाई 2– भर्तृहरि: व्यक्तित्व एवं शतकत्रय का विस्तृत विवेचन	174-189
इकाई 3– पण्डित राज जगन्नाथ का विस्तृत परिचय एवं साहित्य में योगदान	190-215
इकाई 4– गद्यकवि बाण की कादम्बारी का विस्तृत परिचय	216-236
इकाई 5– सुबन्धु एवं उनकी कृति वासवदत्ता का परिचय	237-255
इकाई 6– दण्डी काल निर्धारण,दशकुमारचरित एवं लक्षण ग्रन्थ का विस्तृत विवेचन	256-272

खण्ड- एक (Section-A)
संस्कृत साहित्य का इतिहास : भाग-1

इकाई -1 आदि कवि- परिचय, समय, रामायण का मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आदिकवि का परिचय एवं समय
1.4 रामायण का मूल्यांकन
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वैदिक एवं लौकिक साहित्य के सन्धिकाल पर विराजमान आदि काव्य की संज्ञा से विभूषित रामायण एवं उसके रचयिता आदि वाल्मीकि के परिचय वर्णन से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है।

इस इकाई के अन्तर्गत आप वाल्मीकि का जीवन और रामायण के बारें में जानेंगे। रामायण आदि काव्य महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित है। यह ग्रन्थ राम कथा के समस्त परवर्ती काव्यों एवं नाटकों का स्रोत है। इसको 'उपजीव्य काव्य' कहा गया है। अन्य सभी को उपजीवी। इस महाकाव्य में नायकत्व राम का है, नायिका चित्रण की केन्द्र बिन्दु सीता है। सम्पूर्ण महाकाव्य का अंगीरस करूण है। शेष अन्य रस सहायक रस के रूप में पदे – पदे दृष्टिगोचर है। राम और रावण के युद्ध का विस्तृत वर्णन इसी महाकाव्य में प्राप्त है।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप वाल्मीकि का परिचय बताते हुये रामायण में वर्णित घटनाओं के सूक्ष्म अध्ययन से बता सकेंगे कि रामायण की महत्ता अन्य महाकाव्य की अपेक्षा अधिक क्यों है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप बता सकेंगें कि –

- रामायण को आदि काव्य क्यों कहा जाता है।
- महर्षि वाल्मीकि ने किस घटना के आधार पर राम कथा का चित्रण किया।
- वैदिक और लौकिक साहित्य की विशेषता क्या है।
- रामायण में वर्णित नायक का चरित्र किस कोटि का है।
- रामायण का अंगी रस क्या है।

1.3 आदिकवि का परिचय एवं समय

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि के आदिकवि हैं तथा उनका रामायण आदिकाव्य है। उनकी कविता देश तथा काल की अवधि के द्वारा परिच्छिन्न नहीं की जा सकती। वे उन विश्व-कवियों में अग्रणी है जिनकी वाणी एक देश विशेष के प्राणियों का ही मंगल साधन नहीं करती और न किसी काल-विशेष के जीवों का मनोरंजन करती है। काल-क्रम से संस्कृत साहित्य के विकास में आदिम होने पर भी वाल्मीकि की अमृतमयी वाणी में सौन्दर्य – सृष्टिका चरम उत्कर्ष है तथा महनीय काव्य-कला का परम औदात्य है। वाल्मीकि का रामायण 'महनीय कला' के लिए जिस आदर्श को काव्य-गोष्ठी में प्रस्तुत किया है वह वाल्मीकि के इस काव्य में सुचारू रूप से अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। फ्लाउबेर की मान्यता में 'ग्रेट आर्ट (महान् कला) इन वस्तुओं की साधना तथा प्रसारणसे मण्डित होती है 2 – मानव सोख्य की अभिवृद्धि, दीन-आर्त जनों का उद्धार, परस्पर में सहानुभुति का प्रसार, हमारे और संसार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्यों

का अनुसन्धान, जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी बन जाय या **ईश्वर की महिमा झलके।** 'यह लक्षण वाल्मीकि के रामायण के ऊपर अक्षरश: घटित होता है। जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिए रामायण में जिन आदेशों की वाल्मीकि ने अपनी अमर तुलिका से चितत्रत किया, वे भारतवर्ष के लिए ही मान्य और आदरणीय नहीं है, प्रत्युत् महर्षि वाल्मीकि अपनी मानव-मात्र के सामने उच्च नैतिक स्तर तथा सामाजिक उदात्तता की भावना को प्रस्तुत करते हैं।

हमारी दृष्टि में वाल्मीकि का काव्य शाश्वतवाद का उज्ज्वल उदाहरण है। वर्ण्य विषयों की दृष्टि से काव्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है:-

1.4 रामायण का मूल्यांकन

(क) जीवन के अस्थायी तत्वों के संगठन द्वारा निर्मित काव्य

इस प्रकार की साहित्यिक रचना किसी काल-विशेष के लिए ही रोचक और उपादेय होती है, उस काल या युग का परिवर्तन होने पर नई आर्थिक स्थिति या सामाजिक ढॉचा आने पर वह केवल पुरानी ही नहीं पड. जाती; बल्कि वह अनावश्यक, अनुपादेय,निष्प्राण तथा निर्जीव बन जाती है। प्रत्येक युग में कतिपय समस्याएँ अपना विशिष्ट समाधान चाहती जैसे मध्ययुगीन यूरोप में 'फ्युडल सिस्टम' (सामन्तीय प्रथा), वर्तमान युग में वर्गो का परस्पर संघर्ष , मालिक और मजदूर का परस्पर विद्रोह, जमीदार तथा किसान का मनोमालिन्य, जो किसी विशेष आर्थिक ढॉचे की उपज है। इन समस्याओं का समाधान अनेक मूल्यवान् कृतियों का प्रेरक रहा है, परन्तु उस युग-विशेष के परिवर्तन के साथ ही साथ ये कला-कृतियॉ भी विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाती हैं।

(ख) जीवन के स्थायी मूल्यवान् तत्वों, तथ्यों तथा सिद्धान्तों पर आधारित काव्य- कृतियॉ मानव-जीवन बालू की भीत के समान शीघ्र ही ढहकर गिर जाने वाली वस्तु नहीं है। उसमें स्थायित्व है; पीछे आने वाली पीढियों को राह दिखाने की क्षमता है। और यह सम्भव होता है महनीय शोभन गुणों के कारण; जैसे उदात्तता, अर्थ और काम की धर्मानुकूलता, संकट के समय दीन का संरक्षण, विपत्ति के अघात से प्रताड़ित मानव को अपने बाहु-बल से बचाना, शरणागत का रक्षण आदि। इन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा जीवन में स्थायिता तथा महनीयता की जननी होती है। ऐसे काव्यों को हम शाश्वत काव्य का अभिधान दे सकते हैं। वाल्मीकि का काव्य इस शाश्वत काव्य का समुज्जल निदर्शन है, क्योंकि वह मानव-जीवन के स्थायी मूल्यवान् तत्वों को लेकर निर्मित किया गया है।

संस्कृत की आलोचना-परम्परा में रामायण 'सिद्धरस' प्रबन्ध कहा जाता है। कथा- वस्तु की विवेचना के अवसर पर आनन्दवर्धन का यह प्रख्यात श्लोक है (पृष्ठ148):-

सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादय:।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधिनी।

अभिनव गुप्त की व्याख्या से 'सिद्धरस' का अर्थ स्पष्ट झलकता है –सिद्ध: आस्वादमात्र - शेष:; नतु भावनीयो रसो यस्मिन्- अर्थात् जिस में रस की भावना नहीं करनी पड़ती, प्रत्युत

रस आस्वाद के रूप में ही परिणत हो गया रहता है, वह काव्य 'सिद्धरस' कहलाता है, जैसे रामायण । श्रीरामचन्द्र का नाम सुनते ही प्रजावत्सल नरपति,आज्ञाकारी पुत्र, स्नेही भ्राता, विपद्ग्रस्त मित्रों के सहायक बन्धु का कमनीय चित्र हमारे मानस-पटल के ऊपर अंकित हो जाता है। जनकनन्दिनी जानकी का नाम ज्यों ही हमारे श्रवण को रससिक्त बनाता है, त्यों ही हमारे लोचनों के सामने अलोकसामान्य पातिव्रत की मंजुल मूर्ति झूलने लगती है। उनके कथन-मात्र से हमारा हृदय आनन्दविभोर हो उठता है। उनसे आनन्द की स्फूर्ति होने के लिए क्या राम के आदर्शचरित्र के अनुशीलन की आवश्यकता पड़ती है? हमारा हृदय राम-कथा से इतना स्निग्ध, रस-सिक्त तथा धुल-मिल गया है कि हमारे लिए राम और जानकी किसी अतीत युग की स्मृति न रहकर वर्तमान काल के जीवन्त प्राणी के रूप में परिणत हो गये हैं। इसीलिए रामायण को 'सिद्धरस' काव्य कहा गया है। वाल्मीकि विमल प्रतिभा से सम्पन्न, दैवी गुणों से मण्डित,आर्षचक्षु रखनेवाले एक महनीय 'कवि' थे। 'कवि' के वास्तविक स्वरूप की झलक आलोचकों को वाल्मीकि के दृष्टान्त से ही मिली। कवि की कल्पना में 'दर्शन' के साथ 'वर्णन' का भी मन्जुल सामरस्य रहता है। महर्षि को वस्तुओं का निर्मल दर्शन नित्यरूप से था, परन्तु जब तक 'वर्णन' का उदय नहीं हुआ तब तक उनकी कविता' का प्राकटय नहीं हुआ। समालोचकशिरोमणि भट्टतौत का यह कथन यथार्थ है :-

तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुने।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना।।

संस्कृत की काव्य-धारा रसकूल का आश्रय लेकर प्रवाहित होगी – इसका परिचय उसी मिल गया जब प्रेमपरायण सहचर के आकस्मिक वियोग से सन्तप्त क्रौन्ची के करूण निनाद को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में छलक पड़ा था- शोक: श्लोकत्वमागत:। काव्य का जीवन रस है; काव्य का आत्मा रस है- यह आदि- कवि की आलोचना-जगत को महती देन है। वाल्मीकि के काव्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है- उदात्तता ।पात्रों के चित्रणमें, प्रसंगों के वर्णन में, प्रकृति के चित्रण में तथा सौन्दर्य की स्फूर्तिमें सर्वत्र उदात्तता स्वाभाविक रूप से विराजती है। आदिकवि के इस काव्य-मन्दिर की पीठस्थली है राम तथा जानकी का पावन चरित्र। राम शोभन गुणों के भव्य पुन्ज हैं। वाल्मीकि ने ही हमें रामराज्य की सच्ची कल्पना देकर संसार के सामने एक आदरणीय आदर्श प्रस्तुत किया राम कृतज्ञता की मूर्ति हैं- वे किसी प्रकार किये गए एक भी उपकार से सन्तुष्ट हो जाते हैं; परन्तु सैकड़ो अपकारों का भी वे स्मरण नहीं रखते (2।1।11):-

कथन्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मकतया।।

वे सदा दान देते हैं, कभी दूसरे से प्रतिग्रह नहीं लेते। वे अप्रिय कभी नहीं बोलते, सत्यपराक्रम राम अपने प्राण बचाने के लिए भी इन नियमों का उल्लंघन नहीं करते (3336):-

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयान्न ब्रूयात् किन्चिदप्रियम्।

अपि जीवितह्वतोर्वा राम: सत्यपराक्रम: ।।

राम पूर्ण मानव हैं। वे आदर्श पति हैं।सीता के प्रतिराम का सन्ताप चतुर्मुखी है। स्त्री(अबला) के नाश होने से वे कारूण्य से सन्तप्त हैं। आश्रिता के नाश से दया (आनृशंसय) के कारण, पत्नी (यज्ञ से सहधर्म-चारिणी) के नाश से शोक के कारण तथा प्रिया (प्रेमपात्री) के नाश से प्रेम (मदन) के कारण वे सन्तप्त हो रहे हैं(5।15।49) :-

स्त्री प्रणष्टेति कारूण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यत: ।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेने च ।।

राम के भातृ-प्रेम का परिचय हमें तब मिलता है, जब वे लक्ष्मण को शक्ति लगने पर अपने अनूठे हृद्गत भाव की अभिव्यक्ति करते है:-

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवा:।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्रातासहोदर: ।।

प्रत्येक देश में स्त्रियॉं मिल सकती हैं तथा बन्धुजन भी प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु मैं तो ऐसा देश ही नहीं देखता जहाँ सहोदर भ्राता मिल सके। अनूठी उक्ति है राम की यह। शत्रु के भ्राता विभीषण को बिना विचार किये ही शरणगति प्रदान करना राम के चरित्र का मर्मस्थल है, परन्तु मेरी दृष्टि में उनकी उदात्तता का परिचय रावण-वध के प्रसंग में हमें मिलता है। राम का यह औदार्य आज तो कल्पना के भी बाहर है:-

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं न प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

हे विभीषण, वैर का अन्त होता है शत्रु के मरण से। रावण की मृत्यु के साथ ही साथ हमारी शत्रुता भी समाप्त हो गई । उसका दाह-संस्कार आदि क्रिया करो। मेरा भी वह वैसा ही है जैसा तुम्हारा। 'मामाप्येष यथा तव'- रामचरित्र की उदात्तता का चरम उत्कर्ष है।

भगवती जनक-नन्दिनी के शील-सौन्दर्य की ज्योत्स्ना किस व्यक्ति के हृदय को शीतलता और शान्ति नहीं प्रदान करती ? जानकी का शील वाल्मीकि की प्रतिभा का विलास है, पातिव्रत धर्म का उत्कर्ष है आर्य-ललना की विशुद्धि का प्रतीक हैा रावण को सीता की यह भर्त्सना कितनी उदात्तता है (5।37/62):-

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं कि पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।।

इस निन्दनीय निशाचर रावण से प्रेम करने की बात दूर रही, मैं तो इसे अपने पैर से –नहीं, बाएँ पैर से – भी नहीं छू सकती।

अपनी पीठ पर बैठकर राम के पास पहुँचा देने के हनुमान के प्रस्ताव को ठुकराती हुई सीता कह रही हैं कि मैं स्वयं किसी भी परपुरूष के शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती। रावण का तो स्पर्श अनाथ तथा असमर्थ होने से ही मुझे करना पड़ा था। सीता की यह चिर स्मरणीय उक्ति विशुद्धि के चरम की सूचिका है (5/37/62):-

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम।।

परित्याग के समय भी सीता का धैर्य तथा उनका उदार चरित्र वाल्मीकि की लेखनी का चमत्कार है जिसे कालिदास और भवभूति ने अपने ग्रन्थों में अक्षरश: चित्रित किया है।

रामायण का कला पक्ष

रामायण में हृदयपक्ष का प्राधान्य होने पर भी कलापक्ष की अवहेलना नहीं है। वाल्मीकि की भाषा उदात्त भावों की अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम है। छोटे-छोटे, प्राय: समासविहीन पदों में महर्षि ने बड़े ही सरस तथा सरल शब्दों के द्वारा अपने भावों की अभिव्यंजना की है। शाब्दी सुषमा की ओर महर्षि का ध्यान स्वत: आकृष्ट हुआ है तथा उन्होंने इसका प्रकटीकरण बड़ी सुन्दरता तथा भावुकता के साथ किया है। आनुप्रासिक शोभा के लिए एक पद्य का दृष्टान्त पर्याप्त होगा।

तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव।।

अलंकार से विहीन, सुषमा से हीन सीता को देखकर हनुमान जी ने बड़े कष्ट से पहचाना कि यही सीता है, जिस प्रकार संस्कार से हीन तथा अर्थान्तर (भिन्न अर्थ) में प्रयुक्त वीणा को सुनकर श्रोता बड़ी कठिनता से उसके स्वरूप को पहचानता है (सुन्दर काण्ड 15/37):-

दु:खेन बुबुधे सीतां हनुमान् अनलंकृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्।।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा का प्रदर्शन भी बड़ा चमत्कारपूर्ण है। लंका-दाह के अनन्तर हनुमान अरिष्ट पर्वत के ऊपर जब चढ़ते हैं (सर्ग 56), तब वाल्मीकि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है- एक से एक नवीन चमत्कारी उत्प्रेक्षा जिसे कवि की वाणी ने स्पर्श कर उच्छिष्ट नहीं बना डाला है। पर्वत के श्रृङ्गों से लटकने वाले मेघों के द्वारा प्रतीत होता है कि वह पहाड़ चादर ओढ़े हुए है:-

सोत्तरीयमिवाम्भोदै: श्रृङ्गान्तर विलम्बिभि।

जल की बाढ़ की गम्भीर गड़गड़ाहट के कारण वह पर्वत अध्ययन-सा प्रतीत होता है तथा अनेक झरनों के शब्दों से वह गीत गाता –सा मालूम पड़ रहा है (सुन्दर काण्ड 56/28)

तोयौघनि:स्वनैर्मन्द्रै: प्राधीतमिव सवर्त:।
प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनै:।।

अलंकारों का यह विन्यास पाठकों के हृदय में केवल कौतुक तथा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं किया है, प्रत्युत् यह रसानुकूल है- मूल रस का पर्याप्त रूप से पोषक,संवर्धक तथा परिवृंदक है। रूपक की भी छटा कम सुहावनी नहीं है। तात्पर्य यह है कि रामायण में कला-पक्ष का विकास भी बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। तथ्य यह है कि रसमग्न कवि जान-बूझकर किसी शाब्दी शोभा या आर्थी छटा से अपने काव्य को चमत्कृत बनाते हैं। इस तथ्य को हमारे आलंकारिकों ने खूब पहचाना है और

इसीलिए आनन्दवर्धक रसपेशल अलंकार के लिए 'अपृथक् यत्ननिर्वर्त्य' होना नितान्त आवश्यक गुण मानते हैं । रसात्मक अलंकार के लिए कवि को कोई प्रयत्न अलग से नहीं करना पड़ता। रसाविष्ट दशा में वे स्वत: आविर्भूत हो जाते हैं, यह तथ्य हमारे आलोचकों ने वाल्मीकि की काव्य-कला के विश्लेषण से अवगत किया।

वाल्मीकि की प्रतिभा तथा योग्यता की एक महती दिशा अभी तक सामान्य आलोचकों की दृष्टि से ओझल रही है। वाल्मीकि हमारे आदिकवि ही नहीं है, प्रत्युत् आदि आलोचक भी हैं। काव्य का नैसर्गिक रूप क्या होता है, महाकाव्य के भीतर किन मौलिक उपादानों का ग्रहण होता है? आदि प्रश्नों का प्रथम उत्तर हमें 'वाल्मीकि –रामायण' में उपलब्ध होता है। संस्कृत साहित्य में 'महाकाव्य' की कल्पना रामायण के साहित्यिक विश्लेषण का निश्चित परिणाम है। रामायण के अन्तरंग तथा बहिरंग की समीक्षा करके संस्कृत साहित्य को वर्धिष्णु तथा समृद्ध बनाया। काव्य के अन्तरंग के अन्तरंग की समीक्षणके प्रसंग में महर्षि की सबसे बड़ी देन आलोचना-जगत् को है- शोक तथा श्लोक का समीकरण(शोक: श्लोकत्वमागत) । इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संस्कृत के मूर्धन्य आलोचक आनन्दवर्धन ने तथा महाकवि कालिदास ने समभावेन इंगित किया है । कालिदासकी स्पष्ट उक्ति है (रघुवंश) :-

विषादविदृाण्डजदर्शनोत्य: श्लोकत्वमापद्यत् यस्य शोक:।

आनन्दवर्धन की रूचिर आलोचना है (ध्वन्यालोक 1/5):-

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे: पुरा।

क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थ: शोक: श्लोकत्वमागत:।।

इस समीकरण का तात्पर्य बड़ा गम्भीर है। रसाविष्ट हृदय होने पर ही कविता का उद्गम होता है। जब तक कवि के हृदय को तीव्र भावना आक्रान्त नहीं करती , तब तक वह विशुद्ध कविता का निर्माण नहीं कर सकता। काव्य अन्तश्चेतना की बाह्य अभिव्यक्ति है। जो हृदय स्वत: किसी भाव का अनुभव नहीं करता, वह किसी भी दशा में दूसरों के ऊपर उस भाव को प्रकटीकरण नहीं कर सकता। अतएव रसात्मक कविता के उन्मेष के लिए हृदय को रस दशा में पहुँचाना ही पड़ता है। तीव्र भाव के अन्त:जागरण के साथ ही साथ उसकी शाब्दी अभिव्यक्ति का बाहर अवश्यमेव होती है। आलोचना के इस मर्म को वाल्मीकि का महत्वपूर्ण तथ्यसंकेत है। यह तक हुई काव्य की अन्त:स्फूर्ति की चर्चा।

काव्य के बहिरंग रूप के विषय में वाल्मीकि में बहुत-सी उपादेय सामग्री अपने विश्लेषण की अपेक्षा रखती है। लव-कुश के द्वारा मधुर स्वरों में रामायण का गायन वाल्मीकि की इस मार्मिकआलोचना का भाजन है (बालकाण्ड 4/17) :-

अहो गीतस्य माधुर्य श्लोकानां च विशेषत:।

चिरनिवृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्।।

प्राचीन काल में बहुत पूर्व निवृत्त होने वाली घटना को प्रत्यक्ष के समान दिखलाने वाला काव्य ही हमारी श्लाघा का पात्र होता है। यह पद्य केवल माधुर्य गुण तथा भाविक

अलंकार के काव्य में आवश्यक प्रसाधन होने की ओर ही संकेत नहीं करता, प्रत्युत यह पद्य अभिनवगुप्त के साहित्य –शास्त्रीय गुरू भट्टतौत के उस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का भी आधार है जिसके द्वारा रस की अनुभूति के लिए उसका 'प्रत्यक्षायमाण' होना एक आवश्यक साधन होता है। इसी प्रकार किष्किन्धा काण्ड में हनुमान जी के भाषण की प्रशंसा में रामचन्द्र ने जो उपादेय बातें कहीं हैं वे साहित्य की दृष्टि से मार्मिक है। (किष्किन्धा काण्ड 3 सर्ग 30-32 श्लोक) । इस प्रकार समीक्षा करने पर वाल्मीकि का आलोचक रूप भी हमारे सामने भली –भॉति प्रकट होता है।

तथ्य तो यह है कि वाल्मीकि की प्रतिभा ने रामायण में जिस अमृत रस का सन्निवेश किया है वह सदा कविजनों को आप्यायित करता रहेगा। हजारों वर्षो से भारतीय पाठकों का हृदय रामायण के पाठ से स्पन्दित होता आया है और आगे भी स्पन्दित होता रहेगा। मानव-मूल्यों के अंकन में , काव्य के सुचारू आदर्श के चित्रण में, जीवन को उदात्त बनाने की कला में, सत्यं तथा शिवं के साथ सुन्दरं के मधुमय सामान्जस्य में वाल्मीकि की वाणी विश्व के सामने एक भव्य आदर्श उपस्थित करके जनता के हृदय को सदा आप्यायित करती रहेगी-इस चिरन्तन सत्य का कथमपि अपलाप नहीं हो सकता।

रामायण का अंगी रस

इस विषय में आनन्दवर्धन का स्पष्ट कथन है कि रामायण के आरम्भ में 'शोक: श्लोकत्वमागत:' इस कथन के द्वारा वाल्मीकि ने स्वयं ही करूण रस की सूचना दी है और सीता के आत्यन्तिक वियोग तक अपने प्रबन्ध का निर्माण कर उन्होंने करूण रस का पूर्ण निर्वाह किया है। फलत रामायण का अंगीरस 'करूणा' ही है (ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत, पृष्ट 237) अन्य रस जैसे श्रृंगार और वीर अंग रस हैं। वाल्मीकि के अनुसरणकर्ता कवियों ने भी अपने काव्यों में करूण रस का परिपोष किया है।

वाल्मीकि समग्र कविसमाज के उपजीव्य है, विशेषत: कालिदास तथा भवभूति के। इन दोनों महाकवियों ने रामायण का गाढ अनुशीलन किया था और इनकी कविता में हमें जो रस मिलता है उसमें रामायण की भक्ति कम सहायक नहीं रही है। कालिदास का श्रृंगार रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु उनका 'करूण' रस कम प्रभावशाली नहीं हैं कालिदास ने उभयविध 'करूण' को उपस्थित कर उसे सांगोपांग रूप से दिखलाया है। पत्नी की करूणा का रूप हम रघुवंश के 'अज-विलाप' में पाते है और पति के निमित्त पत्नी की करूण परिवेदना 'रति-विलाप' के रूप में हमें रूलाती है। ताप से लोहा भी पिघल उठता है, तब कोमल मानव-चित्त सन्ताप से मृदु बन जायगा- क्या इस विषय में संदेह के लिए स्थान है ? 'अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु? कालिदास के इन करूण वर्णनों में मानव-हृदय को प्रभावित करने की क्षमता है परन्तु भवभूति के उत्तर -रामचरित में तो यह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया है। यह भवभूति का ही काम था कि उन्होंने सीता के वियोग में राम को रोते देखकर पत्थर को रूलाया है और वज्र के हृदय को भी विदीर्ण

होते दिखाया है – अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदय। भवभूति ने करूण को 'एको रस:' –मुख्य रस, अर्थात् समस्त रसों की प्रकृति माना है और अन्य रसों को उनकी विकृति माना है। एको रस: करूण एव निमित्तभेदात्' - इस कथन के मूल को हमें वाल्मीकि के अन्दर खोजना चाहिये। वाल्मीकि का यह महाकाव्य पृथ्वीतलों को विदीर्ण कर उगनेवाले उस विराट् वटवृक्ष के समान है, जो अपनी शीतल छाया से भारत के समस्त मानवों को आश्रय देता हुआ प्रकृति की विशिष्ट विभूति के समान अपना मस्तक ऊपर उठाये हुए खडा है। महाकाव्य प्रधानतया वीर-रस प्रधान हुआ करते हैं, जिनमें युद्ध का घोष, विजय-दुन्दुभि का गर्जन तथा सैनिकों का माहात्म्य प्रदर्शित होता है परन्तु रामायण माहात्म्य वीर-रस के प्रदर्शन में नहीं हैं। किसी देवचरित के वर्णन में भी रामायण का गौरव नहीं है; क्योंकि महर्षि वाल्मीकि ने जब आदर्श गुणों से मण्डित किसी व्यक्ति का परिचय पूछा ,तब नारद ने एक मानव को ही उन अनुपम गुणों का भाजन बतलाया-'तैर्युक्त: श्रूतयां नर:' रामायण नर-चरित्र का ही कीर्तन है। भारतीय गार्हस्थ्य -जीवन का विस्तृत चित्रण रामायण का मुख्य उद्देश्य प्रतीत हो रहा है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श पति , आदर्श पत्नी -आदि जितने आदर्शो को इस अनुपम महाकाव्य में आदि कवि की शब्द-तूलिका ने खींचा है वे सब गृहधर्म के पट पर ही चित्रित किये गये हैं। इतना ही क्यों, राम-रावण का वह भयानक युद्ध भी इस काव्य का मुख्य उद्देश्य नहीं है। वह तो राम-जानकी-पति-पत्नी- की परस्पर विशुद्-प्रीति को पुष्ट करने का एक उपकरण-मात्र है और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। रामायण को भारतीय सभ्यता ने अपनी अभिव्यक्ति के लिये प्रधान साधन बना रखा है और भारतीय सभ्यता की प्रतिष्ठा गृहस्थाश्रम है। अत: यदि इस गार्हस्थ्य धर्म की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये आदिकवि ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? रामायण तो भारतीय सभ्यता का प्रतीक ठहरा, दोनों में परस्पर उपकार्योपकारक-भाव बना हुआ है। एक को हम दूसरी की सहायता से समझ सकते हैं।

रामचरित्र

आदिकवि ने अपने काव्य-मन्दिर की पीठ पर प्रतिष्ठित किया है-मर्यादा-पुरूषोत्तम महामानव महाराजा रामचन्द्र को। विभिन्न विकट परिस्थितियों के बीच में रहकर व्यक्ति अपने शील के सौन्दर्य की किस प्रकार रक्षा कर सकता है यह हमें वाल्मीकि ने ही सिखलाया है। यदि आदिकवि ने इस चरित्र का चित्रण न किया होता, तो हमे मंजुल गुणों के सामन्जस्य का परिचय कहॉ से मिलता ?इसके शब्दों में इतनी माधुरी है, चित्रों में इतनी चमक है कि मानव के कान और नेत्र इसके परिशीलन से एक साथ ही आप्यायित हो उठती हैं। रामायण को जितनी बार पढा जाय, उतनी ही बार उसमें नयी-नयी बाते सूझती हैं। इन सरल परिचित शब्दों में इतना रस-परिपाक हुआ है कि पढनेवालों का चित्त आनन्द से गद्गद् हो उठता है। सच बात तो यह है कि रामायण के इन अनुष्टुपों को पढ़कर शताब्दियों से भारत का हृदय स्पन्दित होता आ रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा।

राम के किन आदर्श गुणों के अंकन में यह लेखनी प्रवृत्त हो ? उनकी कृतज्ञता का वर्णन किन शब्दों में किया जाय ? राम तो किसी तरह किये गये एक ही उपकार से सन्तुष्ट हो जाते है; और अपकार चाहे कोई सैकड़ों ही करे, उनमें से एक का भी स्मरण उन्हें नहीं रहता। अपकारों को भूलने वाला हो तो ऐसा हो। उनके क्रोध तथा प्रसाद दोनों ही अमोध है। अपने अपराधों के कारण हनन-योग्य व्यक्ति ायों को बिना मारे वे नहीं रहते और अवध्य के ऊपर क्रोध के कारण कभी उनकी ऑख भी लाल नहीं होती (2/4/6)-

नास्य क्रोध: प्रसादो वा निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति।।

राम का शील कितना मधुर है। वे सदा दान करते है, कभी दूसरे से प्रतिग्रह नहीं लेते। वे अप्रिय कभी नहीं बोलते। साधारण स्थितिकी बात नहीं, प्राणसंकट उपस्थित होने की विषय दशा में भी सत्य पराक्रम वाले राम इन नियमों का उल्लंघन नहीं करते। अपने कुटुम्बियों के प्रति उनका व्यवहार कितना कोमल तथा सहानुभूति पूर्ण है ! सीता के प्रति राम के प्रेम का वर्णन करते समय आदिकवि ने मनस-तत्व का बड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण प्रस्तुत कियाहै। राम सीताके वियोग के चार कारणों से सन्तप्त हो रहे है[1]।–सीता के प्रति उनके परिताप का कारण चतुर्मुखी है। धर्मशास्त्र आपत्ति में स्त्री की रक्षा करने का उपदेश होता है , परन्तु राम से यह न हो सका, अत: वह अबला स्त्री की रक्षा न कर सकते के कारण 'कारूण्य' से सन्तप्त हैं। बन में सीता राम की आश्रिता थी, परन्तु राम ने अपने आश्रित की रक्षा नहीं की,अत: 'आनृशंस्य' – आश्रित जनोंके संरक्षक –स्वभावसे सन्तप्त हैं। सीता उनकी पत्नी सहधर्मिणी ठहरी। उनके नष्ट होने पर श्रीराम के धर्म का पालन क्योंकर हो सकेगा, अत: शोक से; वे उनकी प्रिया, प्रियतमा ठहरी, परम सुख की साधिका ठहरी। उस परम लावण्यमयी पत्नी के नाश ने उनके हृदय में अतीत के उस आनन्दमय जीवन की मधुर स्मृति जगा दी है- इस कारण' प्रेम' से। इन नाना भावों के कारण सीता के वियोग में राम सन्तप्त हो रहे हैं।

वाल्मीकि की दृष्टि में मानव-जीवन में सबसे श्रेष्ठ पदार्थ है और इसी चरित्र से युक्त व्यक्ति की खोज करने पर नारद जी ने वाल्मीकि को इक्ष्वाकुवंशी रामचन्द्र को सबसे श्रेष्ठ आदर्श मानव बतलाया। ब्रह्म को साक्षात् करने वाले, अनुष्टुप् छन्द के प्रथम अवतार के कारणभूत आदिकवि वाल्मीकि की परिणत प्रज्ञा का फल है यह वाल्मीकि रामायण मानव समाज, मानव-व्यवहार तथा मानव-सद्गुणों की पराकाष्ठा का पूर्ण निर्वाह हम राम के जीवन में पाते हैं। राम शारीरिक सुषुमा तथा मानसिक सौन्दर्य- दोनों के जीते-जागते प्रतीक थे। राम के सौन्दर्य के वर्णन में वाल्मीकि कह रहे हैं (2/17/13):-

न हि तस्मान्मन: कश्चित् चक्षुषी वा नरोत्तमात्।
नर: शक्नोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे।।

रामचन्द्र की अलौकिक सुषमा का अनुमान इसी घटना से लगायाजा सकता है कि राम के अत्यन्त दूर चले जाने पर कोई भी मनुष्य न तो अपने मन को उनसे खींच सकता था और न अपने दोनों नेत्रों को। जो राम को नहीं देखता और जिसे राम नहीं देखते – ये दोनों

संसार में निन्दा के पात्र बनते हैं। इतना ही नहीं , उनकी अपनी आत्मा भी उन्हें निन्दा करती है। रामचन्द्र के दिव्य गुणों की यह झॉकी कितनी मधुर तथा सुन्दर है (2/1/10-14) :-

स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं प्रभाषते।
उच्यमानोऽपि परूषं नोतरं प्रतिद्यते।।
बुद्धिमान् मधुरभाषी पूर्वाभाषी प्रियंवद:।
वीर्यवान् न च वीर्येण महता स्वेन विस्मित:।।
न चानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजक:।
अनुरक्त: प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते।।

रामचन्द्र सदा शान्त –चित्त रहते थे। वे बड़ी कोमलता तथा मृदुता के साथ बोलते थे। उनसे कोई कितना भी रूखा क्यों न बोले, वे कभी भी कड़ा और रूखा उत्तर नहीं देते थे। किसी प्रकार किये गये एक भी उपकार से वह तुष्ट हो जाते थे, परन्तु सैकड़ों भी अपकारों को कभी स्मरण नहीं करते थे। किसी से भेंट होने पर भी वही पहिले बोलते थे और सदा मीठा बोलते थे। अत्यन्त वीर्यशाली थे, परन्तु इसके कारण उन्हें गर्व छूकर भी नहीं था। वे कभी झूठी बातें नहीं कहते थे । 'रामो द्विर्नाभिभाषते = राम कभी दो बात नहीं कहते थे, एक बार जो कह दिया सो कह दिया- प्रजाओं के साथ उनका सम्बन्ध बड़ा मीठा था। आसक्ति उभयमार्गी थी। राम का अनुराग प्रजाओं के लिये वैसा था जैसा उनका राम के लिए था।

इन गुणों का अनुशीलन किसी भी व्यक्ति को मानवता के ऊँचे पद पर पहुँचने तथा प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है। व्यक्ति के लिये मृदुभाषी होना; सत्य-वचन होना तो आवश्यक है ही ,परन्तु राम में वाल्मीकि ने एक विलक्षणगुण की सत्ता बतलाई है; वह है उपकारकी स्मृति तथा उपकार की विस्मृति । रामचन्द्र के इस उदार हृदय ,विशाल चित्त तथा महनीय आशय का पूर्ण परिचय उसी एक वाक्य से चलता है जिसे उन्होनें सीता की सुधि लानेवाले, अलौकिक उपकार करने वाले हनुमान जी से कहा था। जनकन्दिनी का सन्देश सुनकर विह्वलचित होकर राम ने यह वचन कहा था-

मय्येव जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं हरे।
नर: प्रत्युपकारार्थी विपत्तिम् अभिकांक्षति।

हे कपिकुलनन्दन ! आपने जो मेरे साथ उपकार किया है वह मेरे में ही जीर्ण हो जाय, मिलकर पच जाय, बाहर अभिव्यक्ति का कोई अवसर ही न आवे, क्योंकि प्रत्युपकार करनेवाला व्यक्ति अपने उपकारी के लिये विपत्ति की कामना करता है, जिससे उसे अपने प्रत्युपकार के लिए उचित अवसर मिले। कितनी उदात्त है वाल्मीकि की यह सूक्ति और कितना उदार है राम का हृदय वह कभी सोचते भी नहीं कि हनुमान के ऊपर विपत्ति आवे जिससे उनके साथ प्रत्युपकार करने का कभी अवसर मिले। रावण से युद्ध के समय रामचन्द्र की शौर्यभावना पूर्णतया अभिव्यक्ति पाती है। वे रावण की भर्त्सना इन शब्दों में करतेहैं (युद्ध0 105/13-14) –

स्त्रीषु शूर घिनाथासु परदाराभिमर्शक।
कृत्वा कापुरूषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे।।
भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित।
दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे।।

शूरता की यही सच्ची कसौटी है- स्त्रियों का आदर, मर्यादा का पालन, निर्लज्ज कार्य – कलापों से उपरम तथा शुभ चरित्र का व्यवस्थित रूप से पालन। रावण में इन सबका एकदम अभाव था। इसीलिये तो वह अन्याय तथा अधर्म का प्रतीक माना जाता है। पराक्रमी शत्रु से चित्र-विचित्र युद्ध के परिणाम रूप ही राम ने रावण पर विजय पाया। रावण कोई साधारण शत्रु नहीं था। कैलाश को उखाड़ने वाला, ब्रह्मा को परास्त करने वाला तथा देवताओं से भी अपनी सेवा कराने वाला रावण कोई सामान्य मानव नहीं था। जगत् को अपने घोर कार्यो से रूलाने के कारण ही तो वह 'रावण' कहलाताथा। ऐसे शत्रु को मारकर राम ने उसके साथ जो सद्व्यवहार किया वह शूरजगत् की एक आलोकसामान्य घटना है।

रावण की मृत्यु पर शोक करते हुए विभीषण ने ठीक ही कहा (युद्ध0 122/5-8)-

गत: सेतु: सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रह:।
गत: सत्तवस्य संक्षेप: प्रस्तावानां गतिर्गता।।
आदित्य: पतितो भूमौ मग्नतमसि चन्द्रमा:।
चित्रभानु: प्रशान्तार्चि: व्यवसायो निरूद्यम:।
अस्मिन् निपतिते भूमौ वीरे शस्त्रभृतां वरे।।

रावण का यह नितान्त यथार्थ चरित्र-चित्रण है। युद्ध में निहत रावण भूमि पर गिरनेवाले आदित्य, अन्धकार में धँसे हुए चन्द्रमा, शान्त ज्वाला वाले अग्नितथा उद्यमहीन उत्साह के समान है। राम ने भी रावण की उचित प्रशंसा की तथा उसमें वर्तमान गुणों के महत्व को समझाया और अन्त में अपने हृदय की विशालता को बड़े सुन्दर शब्दों में प्रकट किया-

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं न: प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

मरण ही वैर की समाप्ति है। रावण के मर जाने पर हमारा प्रयोजन सम्पन्न हो गया। अब इसका उचित दाह-संस्कार करो। जैसे यह तुम्हारा है, वैसे ही मेरा भी है।शत्रु के प्रति इतनी उदार भावना रखना तथा तदनुसार व्यवहार करना युद्ध के इतिहास में अश्रुतपूर्व घटना है।

सीता चरित्र

भगवती जनक-नन्दिनी के शील-सौन्दर्य की ज्योत्स्ना किस व्यक्ति के हृदय को शीतलता तथा शान्ति नहीं प्रदान करती ? जानकी का चरित्र भारतीय ललना के हेलनासूचक वचन कहा है, वह भारतीय नारी के गौरव को सदा उद्घोषित करता रहेगा। 'इस निशाचर रावण से प्रेम करने की बात तो दूर रहीं, मैं तो इसे अपने पैर से – नहीं- नहीं,बायें पैर से –भी नहीं छूसकती (5/26/10)।

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं विगर्हितम्।

रावणं कि पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥

रावण की मृत्यु के अनन्तर राम ने सीता के चरित्रकी विशुद्धि सामान्य जनता के सामने प्रकट करने के लिये अनेक कटुवचन कहे। उन वचनों के उत्तर में सीता के वचन इतने मर्मस्पर्शी हैं कि आलोचक का हृदय आनन्दातिरेक से गदगद् हो जाता है। 'मेरे चरित्र पर लांछन लगाना कथमपि उचित नहीं है। मेरे निर्बल अंश को आपने पकड़कर आगे किया है, परन्तु मेरे सबल अंश को पीछे ढकेल दिया है। नारी का दुर्बल अंश है- उसका स्त्रीत्व और उसका सबल अंश है- उसका पत्नीत्व तथा पातिव्रत। नर-शार्दूल ! आप मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं, परन्तु क्रोध के आवेश में आपका यह कहना साधारण मनुष्यों के समान है। आपने मेरे स्त्रीत्व को तो दोषरोपण करने के निमित्त आगे किया है, परन्तु आपने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि बालकपन में ही आपने मेरा पाणिग्रहणकिया, आपकी मैं शास्त्रानुमोदित धर्मपत्नी हूँ। मैं आपकी भक्ति करती हूँ तथा मेरा स्वभाव निश्छल और पवित्र है। आश्चर्य है आप जैसे नर-शार्दूल ने मेरे स्वभाव को, भक्ति को तथा पाणिग्रहण को पीछे ढकेल दिया, केवल स्त्रीत्व को आगे रखा है-

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्॥
न प्रमाणीकृत: पाणिर्बाल्ये बालेन पीड़िता।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठत: कृतम्॥

कितनी आजस्विता भरी है इन सीधे-सादे निष्कपट शब्दों में ! अनादृता भारतीय ललना का यह हृदयोद्गार कितना हृदय-वेधक है! सुनते ही सहृदय मनुष्य की ऑंखों में सहानुभूति के ऑंसू छलक पड़ते हैं।

राम और सीता का निर्मल चरित्र वाल्मीकि की कोमल काव्य-प्रतिभा का मनोरम निदर्शन है। सामायण हमारा जातीय महाकाव्य है। वह भारतीय हृदय का उच्छ्वास है। यह मानव-जीवन राम –दर्शन के बिना निरर्थक है – 'राम-दर्शन' उभय अर्थमें – राम-कर्तृक दर्शन (राम के द्वारा देखा जाना) तथा राम-कर्मक दर्शन (राम को देखना। राम जिसको नहीं देखते,वह लोक में निन्दित है और जो व्यक्ति राम को नहीं देखता, उसका भी जीवन निन्दित है। उसका अन्त:करण स्वयं उसकी निन्दा करने लगता है-

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्चति।
निन्दित: सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते॥(2/17/14)

मानवता की कसौटी: वाल्मीकि की दृष्टि में-

महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में 'चरित्र' ही मानवता की कसौटी है। चरित्र से युक्त मनुष्य की खोज तथा उसका विशद वर्णन ही रामायण का मुख्य उद्देश्य है। वाल्मीकि ने महर्षि नारद से यही जिज्ञासा की है- 'चारित्रेण च को युक्त:?' चरित्र ही मानव को देवता बनाता है। इस चरित्र का पूर्ण विकास मर्यादा-पुरूषोत्तम रामचन्द्र में दृष्टिगोचर होता है। रामचरित्र ही आर्यचरित्र का आदर्श है और वह मानवता की चरम अभिव्यक्ति है। राम में मानसिक

विकास की ही पूर्णता लक्षित नहीं होती है; अपि तु शारीरिक सौन्दर्य का भी मंजुल पर्यवसान उनमें उपलब्ध होता है (द्रष्टव्य- सुन्दर काण्ड , अध्याय 35)। राम में धैर्य का चूडान्त दृष्टान्त हमें मिलता है।

साधारण मनुष्य जीवन के साफल्यभूत राज्य से बहिर्भूत होने पर कितना व्यथित तथा आर्त होता है? यह अनुभव से हमें भली-भॉति पता चलता है, परन्तु राम के ऊपर इस निर्मम घटना का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़त। वे महनीय हिमालय के समान अडिग तथा अडोल खडे होकरविपत्ति के दुर्दान्त तरंगों को अपने विशाल वक्ष:स्थल के ऊपर सहते हैं, और उनके चित्त में किसी प्रकार का विकार लक्षित नहीं होता :- (2/19/33)

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ।।

इसका कारण यह था कि उनमें ममत्व बुद्धि का विलास दृष्टिगोचर नहीं होता। भगवद्गीता के अनुसार आदर्श मानव में जिन गुणों का सद्भाव रहता है, रामचन्द्र उन समग्रगुणों की जीवन्त मूर्ति थे। विषमबुद्धि व्यक्ति ही परिस्थिति के विपर्यय से परिताप का आश्रय बनता है, परन्तु समबुद्धि व्यक्ति विषम विपर्यय में भी परिताप को अपने पास फटकने नहीं देता। समबुद्धि तथा समदर्शी राम परिताप करने से इसीलिए कोसों दूर हैं। राम क्षात्र धर्म के साकार विग्रह हैं। भारतवर्ष का क्षत्रियत्व राम के नस-नस में व्याप्त हो रहा है। ऋषियों के विशेष आग्रह करने पर राम राक्षसों के मारने की विकट प्रतिज्ञा करते हैं। सीता क्षात्रधर्म के सेवन से बुद्धिके मलिन होने की बात सुनाकर उन्हें इस कार्य से विरत करना चाहती हैं (3।958), परन्तु राम इस प्रेममय उपालम्भ का तिरस्कार कर डंके की चोट क्षत्रियत्व के आदर्श को प्रकट करते हैं:-क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्त-शब्दो भवेदिति (10/3)। क्षत्रियों के द्वारा धनुष धारण करने की यही आवश्यकता है कि पीड़ितों का शब्द ही कहीं न हो। जगत् की रक्षा का भार धनुर्धारो क्षत्रियों के ऊपर सर्वदा रहता ही है।

राम सत्य तथा प्रतिज्ञा-पालन के महनीय व्रती हैं। सत्यनिष्ठा तथा प्रतिज्ञा-निर्वाह के महनीय व्रत के कारण वे संसार में महिमा –सम्पन्न माने जाते हैं। जाबालि ने राम को अयोध्या लौट जाने तथा सिंहासन पर आसीन होने के लिए किन युक्तियों का व्यूह नहीं रचा, परन्तु राम अपने सत्य से, पिता के सामने की गई प्रतिज्ञा से रंच मात्र भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने बड़े आग्रह से कहा कि न तो लोभ से, न मोह से, न अज्ञान से मैं सत्य के सेतु को तोड़ूंगा। पिता के सामने प्रतिज्ञा का निर्वाह अवश्य करूँगा (अयोध्या0 109/17)

नैव लोभान्न मोहाद्वा नह्यज्ञानात् तमोऽन्वित:।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरो: सत्यप्रतिश्रव: ।।

सीता जी के द्वारा बारम्बार क्षात्रधर्मानुकूल प्रतिज्ञा-पालन से पराड़गुख किये जाने पर राम का क्षत्रियत्व उबल उठता है। वे डंकेकी चोट पुकार उठते हैं- मैं अपने प्राणों को भी छोड़ सकता हूँ, हे सीते? लक्ष्मण के साथ तुम्हें भी छोड़ सकता हूँ परन्तु प्रतिज्ञा कभी

नहीं छोड़ सकता, विशेष कर ब्राह्मणों के साथ की गई प्रतिज्ञा तो मेरे लिए नितान्त अपरिहार्य है (अरण्य0 1019)-

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषत:।।

राजा की महिमा

वाल्मीकि आर्यधर्म के रहस्य का उद्घाटन करते हैं, जब वे कहते है कि आर्यजीवन धर्मबन्ध से बंधा हुआ है। मानव भारतीय संस्कृति के अनुसार स्वतन्त्र प्राणी तो अवश्य है, परन्तु समग्र मानव एक दूसरे से धर्मसम्बन्ध में बँधकर एक दूसरे के हित –चिन्तन तथा हिताचरण में संलग्न है तथा अपने निर्दिष्ट नैतिक मार्ग से एक पग भी नहीं डिगता।भरत अपने शुद्ध भावों की सफाई देते हुए कह रहे हैं कि धर्मबन्धन के कारण ही मैं वध करने योग्य भी पापाचारिणी माता को मार नहीं डालता (अयोध्या0 106/8)।

वाल्मीकि समग्र राष्ट्र के हितचिन्तक कवि हैं। राष्ट्र का केन्द्र है राजा। भारतीय राजा पाश्चात्य राजाओं के समान प्रजाओं की इच्छाओं का दलन करने वाला स्वेच्छाचारी नरपति नहीं होता, प्रत्युत वह प्रजाओं का रंजक, प्रकृतिरंजक, उनका हितचिन्तक तथा राष्ट्र का उन्नायक होता है। इस प्रसंग में 'अराजक जनपद' की दुरवस्था का वर्णन पढकर वाल्मीकि की मनोवृत्ति का हम अनुमान लगा सकते हैं। अयोध्याकाण्ड के 67 वें सर्गका 'नाराज के जनपदे' वाला लोकगायन भारतीय राजनीति के सिद्धान्तों का प्रकाशक एक महनीय वस्तु है। राजा राष्ट्र के धर्म तथा सत्य का उद्भव स्थल है (अयोध्या0 67/33/34)। इसीलिए उसके अभाव में राष्ट्र का कोई भी मंगल न सम्पन्न हो सकता है, न कोई कल्याण कल्पित हो सकता है।

वाल्मीकि ने राम के राज्य का जो सुखद तथा शुभग चित्रण किया है वह राजनीति शास्त्र को एक अनुपम देन है। राम राजनीति के महनीय उपासक थे। उनके समान नीतिमान् राजा दूसरा नहीं हुआ। ' रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्' (शुक्रनीति 4/6/1346)। इसलिए उनके द्वारा व्याख्यात तथा आचरित नीति ही राजाओं के लिए मान्य नीति है। अराजक जनपद में कृषि और गोरक्षा से जीने वाले सुरक्षित तथा धनी प्राणी द्वारा खोल कर कभी नहीं सोते थे, दस्यु दानवों के भय से। इसीलिए राजा की नितान्त आवश्यकता होती है (अयोध्या0 67।19)-

नाराजके जनपदे धनवन्त: सुरक्षिता:।
शेरते विवृतद्वारा: कृषिगोरक्ष- जीविन:।।

इस प्रकार वाल्मीकि भारतीय साहित्य के हृदय के ही प्रकाशक आदिकवि नहीं है, बल्कि वे भारतीय संस्कृति के संस्कारक मनीषी भी हैं। कमनीय काव्यलता उनके रामायण के पद्यों में स्वत: नाचती है और भारत की भव्य संस्कृति उनके पात्रों के द्वारा अपनी वाल्मीकि मनोरम झाँकी दिखलाती है। इसीलिए कविता –कल्पद्रुम के कमनीय कोकिल रूप वाल्मीकि का कूंजन किसे आनन्द विभोर नहीं करता?

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये -

1. निम्नलिखित में आदि कवि कौन है।

क. कबीरदास ख. तुलसीदास ग. **वाल्मीकि** घ. इनमें से कोई नहीं

2. रामायण के रचनाकार है।

क. आनन्दवर्द्धन ख. **वाल्मीकि** ग. तुलसीदास घ. कालीदास

3. रावण का वध किसने किया था।

क. **रामचन्द्र** ख. कृष्ण ग. ब्रह्मा घ. शिव

4. संस्कृत की आलोचना-परम्परा में कौन 'सिद्धरस' प्रबन्ध कहा जाता है

क. **रामायण** ख. महाभारत ग. ध्वन्यालोक घ. कोई नहीं

5. निम्नलिखित श्लोक को पूरा कीजिये -

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवा:।

..... ।।

क. तं तु देशं न पश्चामि यत्र भ्रातासहोदर: ।।

ख. न प्रमाणीकृत: पाणिर्बाल्ये बालेन पीड़िता।

ग. मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठत: कृतम्

घ. नर: शक्नोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे

6. वैर की समाप्ति का कारण किसे माना गया है।

क. जन्म ख. **मरण** ग. मोक्ष घ. युद्ध

7. 'चरित्र ही मानवता की कसौटी है' किसका कथन है।

क. कालीदास ख. भतृहरि ग. **वाल्मीकि** घ. तुलसीदास

8. निम्नलिखित में किसे मर्यादा पुरूषोत्तम से सम्बोधित किया गया है।

क. **राम** ख. कृष्ण ग. वासुदेव घ. तुलसी

9. **'रामो द्विर्नाभिभाषते'** का अर्थ है।

क. राम दो बात बोलते थे।

ख. **राम कभी दो बात नहीं बोलते थे।**

ग. राम हमेशा बोलते थे।

घ. कोई नहीं

10. रामायण महाकाव्य का अंगीरस क्या है।

क. रौद्र ख. श्रृंगार ग. **करूण** घ. वीभत्स

11. रामायण महाकाव्य की नायिका कौन है।

क. **सीता** ख. अनुसूया ग. सावित्री घ. कोई नहीं

12. निम्नलिखित में राष्ट्र का नायक होता है।

क. **राजा** ख. रानी ग. कवि घ. मन्त्री

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपने जाना कि रामायण को आदिकाव्य कहा जाता है। इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि है। यही भारतीय काव्य जगत का उद्गम स्रोत भी माना जाता है। रामायण अपने परवर्ती विशाल काव्य एवं नाट्य साहित्य का उद्गम ग्रन्थ है। राम और सीता के आदर्श चरित्र के वर्णन से संबलित तो है ही किन्तु इसमें वर्णित समस्त घटनायें राम और सीता द्वारा आचरित हैं। रामायण की प्रशंसा समस्त साहित्य जगत् करता है। वाल्मीकि को कविकोकिल की संज्ञा से विभूषित किया गया है। रामायण का अंगी रस करूण है। जिसकी नायिका सीता है। उत्तम नायक और नायिका के समस्त लक्षण इन दोनों में घटित होते हैं। करूण रस की विविधता इस ग्रन्थ में प्रतिपद दृष्टिगोचर है। चरित्र चित्रण के लिये रामायण में वर्णित पात्रों की चारित्रिक विशेषतायें मानदण्ड के रूप में परिलक्षित है। सीता का चरित्र एक स्त्री सुलभ मर्यादा की शिक्षा सम्पूर्ण परवर्ती समाज को प्रदान करता है। एक आदर्श पत्नी का प्रतिबिम्बन इनके चरित्र में प्रतिपद अनुकरणीय है। इसी प्रकार नायक राम एक पत्नीव्रत नायक है। वह विषम परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता। यद्यपि प्रजा पालन कर्तव्यनिष्ठा आदि सभी तत्वों का चित्रण एक महाकाव्य के नायकत्व के रूप में तो हैं ही किन्तु इतना होने पर भी अन्य सभी महाकाव्यों में वर्णित नायक के गुणों से कुछ अतिरिक्त राम का नायकत्व है। इसीलिये भारतीय मनीषा कहती है कि – **राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है। जो कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है**। अत: इस इकाई का अवलोकन कर आप रामायण महाकाव्य के साहित्यिक, सामाजिक तथा अन्य वैशिष्ट्य को बता सकेंगे।

1.6 शब्दावली

क्षात्रधर्मानुकूल – क्षत्रिय धर्म के अनुकूल

रामायण – राम और अयन दो शब्दों से मिलकर रामायण शब्द बनता है। अयन का अर्थ है घर, निवास। नायक- ग्रन्थ के वर्णन गौरव के लिये कथावस्तु का श्रेष्ठ संचालक नायक कहलाता है।

नायिका, - स्त्री सुलभ मर्यादा की पालिका नायक की सहधर्मिणी

सम्भाव्य – सम्भव होना

नीतिमानभूत – नियम के अनुरूप

पापाचारिणी – पाप का आचरण करने वाली स्त्री पापाचारिणी कहलाती है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग. **वाल्मीकि** 2. ख. **वाल्मीकि** 3. क. **रामचन्द्र** 4. क **रामायण** 5. क. **तं तु देशं**
2. **न पश्यामि यत्र भ्रातासहोदर:** 6. ख. **मरण** 7. ग. **वाल्मीकि** 8. क. **राम** 9. ख. **राम कभी दो बात नहीं बोलते थे।** 10. ग. **करूण** 11. क. **सीता** 12 क. **राजा**

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

2 . संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भासुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाल्मीकि का परिचय अपने शब्दों में लिखिये।
2. राम का विस्तृत चरित्र चित्रण कीजिये।
3. सीता की चारित्रिक विशेषतायें लिखिये।

इकाई 2. व्यास-परिचय, समय, महाभारत का परिचय

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 व्यास परिचय एवं समय
2.4 महाभारत का परिचय
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने आदिकवि बाल्मीकि एवं उनकी रचना रामायण के बारे में जाना। वैदिक सनातन परम्परा में धर्म की स्थापना करने हेतु धर्मग्रन्थ के रचनाकार वेदव्यास का परिचय, समय एवं महाभारत का परिचय वर्णन से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। महाभारत धर्मग्रन्थ के साथ – साथ मानवीय सभ्यता की मर्यादा एवं आदर्श स्थापित करने वाला एक महासूत्र है, जिसको अपनाकर मानव अपना एवं अपने राष्ट्र का सर्वतोमुखी विकास करने में सफल हो सकता है। इस इकाई में आप महाभारत एवं उसके रचयिता वेदव्यास से सम्बन्धित विषय का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि महाभारत के रचयिता वेदव्यास जी सत्यवती के पुत्र थे, जो स्वयं महाभारत के एक महत्वपूर्ण पात्र थी । यमुना के किसी द्वीप में जन्म के कारण व्यास जी 'द्वैपायन' कहलाते थे, शरीर के रंग के कारण 'कृष्णमुनि' तथा यज्ञीय उपयोग के लिए चारों वेदों को संहिताओं में विभाग करने के कारण 'वेदव्यास' के नाम से विख्यात थे।

2.2 उद्देश्य

स्वार्थ पुरूषार्थ और परमार्थ की परम्परा के वर्णन में सर्वाधिक समृद्ध ग्रन्थ जय भारत और महाभारत के वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप यह बतायेंगे कि –

- व्यास कौन थे। यह किसी का नाम है अथवा उपाधि।
- महाभारत का परिवर्द्धन कितनी श्रेणियों में हुआ है।
- महाभारत में जीवन से सम्बन्धित सामान्य और विशिष्ट प्रकार की शिक्षायें क्या है।
- महाभारत का अंगी रस क्या है।
- शान्त रस को महाभारत में किस कारण से अंगीरस के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।
- महाभारत की साहित्यिक विशेषतायें क्या है।

2.3 व्यास का परिचय

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।
भूषणतयैव संज्ञां यदडिकतां भारती वहति।।

गोवर्धनाचार्य

रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रन्थों में जिस प्रकार फूट निकलता है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का इतिहास – वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना

धर्मगन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। इसके अतिरिक्त 'विष्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता', 'भीष्मस्तवराज', 'गजेन्द्रमोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ इसी के अंश हैं। इन्हीं पॉच ग्रन्थों को 'पंचरत्न' के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं गुणों के कारण महाभारत 'पंचम वेद' के नाम से विख्यात है।

वाल्मीकि के समान व्यास भी संस्कृत कवियों के लिए उपजीव्य हैं। महाभारत के उपाख्यानों का अवलम्बन कर ही कालान्तर में हमारे कवियों ने काव्य, नाटक, गद्य, चम्पू, पद्य , कथा, आख्यायिका आदि नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है। इतना ही क्यों ? जावा,सुमात्रा के साहित्य में भी महाभारत विद्यमान है। वहॉ के लोग भी महाभारत के कथानक से उसी प्रकार शिक्षा ग्रहणकरते हैं तथा पाण्डव-चरित के अभिनय से उसी प्रकार मनोरंजन करते हैं जिस प्रकार भारतवासी। महाभारत इतना विशाल है कि व्यासजी का यह कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है- 'इस ग्रन्थ में जो कुछ है वह अन्यत्र है, परन्तु जो कुछ इसमें नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।[1] प्राचीन राजनीति को जानने के लिए हमें इसी ग्रन्थ की शरण लेनी पड़ती है। विदुरनीति, जिसमें आचार तथा लोकव्यवहार के नियमों का सुन्दर निरूपण है, महाभारत का ही एक अंश है। इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक , राजनीतिक आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक गौरवपूर्ण ग्रन्थ है।

रचयिता

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास का सम्बन्ध महाभारत के पात्रों के साथ बहुत ही घनिष्ठ है। उनकी माता का नाम सत्यवती था। मल्लाहों के राजा दासराज के द्वारा जन्मकाल से ही उनकी रक्षा तथा पोषण हुआ था। यमुना के किसी द्वीप में जन्म के कारण व्यास जी 'द्वैपायन' कहलाते थे, शरीर के रंग के कारण 'कृष्णमुनि' तथा यज्ञीय उपयोग के लिए एक को वेद चार संहिताओं में विभाग करने के कारण 'वेदव्यास' के नाम से विख्यात थे। वे धृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर के जन्मदाता ही नहीं थे, प्रत्युत पाण्डवों का विपत्ति के समय छाया के समान अनुगमन करने वाले थे तथा अपने उपदेशों से उन्हें धैर्य, ढाढस तथा न्यायपथ पर आरूढ़ रहने की शिक्षा दिया करते थे। कौरवों को युद्ध से विरत् करने के लिए इन्होंने कोई भी प्रयत्न उठा नहीं रखा, परन्तु विषय –भोग के पुतले इन कौरवों ने इनके उपदेशों को लात मारकर अपनी करनी का फल खूब ही पाया। इनसे बढकर भारतीय युद्ध के वर्णन करने का अधिकारी कोई दूसरा विद्वान् नहीं था। इन्होंने तीन वर्षो तक सतत परिश्रम से – सदा उत्थान से –इस अनुपम ग्रन्थ की रचना की (आदिपूर्व-56/52):-

त्रिभिर्वर्षै: सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनि:।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम्।।

ऐसे महनीय ग्रन्थ की तीन वर्षो के भीतर रचना का कार्य ग्रन्थकार की अनुपम काव्य-प्रतिभा तथा अदम्य उत्साह का पर्याप्त सूचक है।

आजकल महाभारत में एक लाख श्लोक मिलते हैं। इसलिए इसे 'शतसाहस्र-संहिता' कहते हैं। इसका यह स्वरूप कम से कम डेढ़ हजार वर्ष से पुराना अवश्य है, क्योंकि गुप्त –कालीन शिलालेख में यह 'शतसाहस्री संहिता' के नाम से उल्लिखित हुआ है। विद्वानों का कहना है कि महाभारत का वह रूप अनेक शताब्दियो में विकसित हुआ। बहुत प्राचीन काल से अनेक गाथाएँ तथा आख्यान इस देश में प्रचलित थे, जिनमें कौरवों तथा पाण्डवों की वीरता का वर्णन किया था। अथर्ववेद में परीक्षित का आख्यान उपलब्ध होता है। अन्यवैदिक ग्रन्थों में यत्र-तत्र महाभारत के वीर पुरूषों की बातें उल्लिखित मिलतीहैं। इन्हीं सब गाथाओं तथा आख्यानों को एकत्र कर महर्षि वेदव्यास ने जिस काव्य का रूप दिया है वही आजकल का सुप्रसिद्ध महाभारत है।

2.4 महाभारत का परिचय

महाभारत के विकास के तीन क्रमिक स्वरूप माने जाते हैं- (1) जय, (2) भारत, (3) महाभारत। इस ग्रन्थ का मौलिक रूप (1) 'जय' नाम से प्रसिद्ध था। इस ग्रन्थ में नारायण, 'महाभारत' का मूल प्रतीत होता है। वहीं स्वयं लिखा हुआ है कि इसका प्राचीन नाम जय था। पाण्डवों के विजय-वर्णन के कारण ही इस ग्रन्थ का ऐसा नामकरण किया गया है।
(2) भारत – 'जय के अनन्तर विकसित होने पर इस ग्रन्थ का अभिधान पड़ा - भारत। नाम से प्रतीत होता है कि यह भारतवंशी कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध का वर्णन परक ग्रन्थ था। उस समय उसका परिणाम केवल चौबीस सहस्र श्लोक था और यह आख्यानों से रहित था। (3) उपाख्यानों के समावेश ने इसे भारत से 'महाभारत' का रूप प्रदान किया, जो अपने 'खिल पर्व '(अर्थात् परिशिष्ट रूप) 'हरिवंश' से संयुक्त होकर परिमाण में चतुर्गुण हो गया –एक लाख श्लोक वाला।
(3) **महाभारत** - लगभग पॉच सौ वर्ष ईस्वी पूर्व विरचित आश्वलायन गृह्यसूत्र में 'भारत' के साथ 'महाभारत' का नाम निर्दिष्ट है। भारत के वर्तमान रूप में परिबृंहण का कार्य उपाख्यानों के जोड़ने से ही निष्पन्न हुआ है। इन उपाख्यानों में कुछ तो प्राचीन ऋषि तथा राजाओं के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण घटना-प्रधान हैं, कतिपय तत्कालीन लोक – कथा के ही साहित्यिक संस्करण हैं और इस दृष्टि से इनकी तुलना जातकों के साथ की जा सकती है। अध्यात्म, धर्मतथा नीति की विशद विवेचना ने इस महाभारत को भारतीय धर्म तथा संस्कृति का विशाल 'विश्वकोष' बनाने में कुछ उठा नहीं रखा। डाक्टर सुखठणकर का प्रमाणपुष्ट मत है कि भृगुवंशी ब्राह्मणों के द्वारा किये गये सम्पादनों का ही फल महाभारत का वर्तमान वृद्धिंगत रूप है। कुलपति शौकन स्वयं भार्गव थे, उनकी जिज्ञासा भार्गववश की कथा सुनने की थी। तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्।

महाभारत के नाना उपाख्यानों का सम्बन्ध स्पष्टरूप से भार्गवों के साथ है। और्व (आदि) कार्तवीर्य (वन) , अम्बोपाख्यान (उद्योग) , विपुला (शान्ति), उर्त्तक (अश्व0) इन

समग्र विख्यात् आख्यानों का सीधा सम्बन्ध भार्गवों के साथ है। आदि पर्व के प्रथम 53 अध्याय (पौलोम तथा पौष्यपर्व) भार्गववंशीय कथा से अपना सम्बन्ध रखता है।

महाभारत का रचना काल

आज उपलब्ध महाभारत लक्ष श्लोकात्मक हैं। यह स्वरूप अठारह पर्वो का न होकर हरिवंश से संयुक्त करने पर ही सिद्ध होता है। परिशिष्ट होनेसे हरिवंश भी महाभारत का अविभाज्य अंग माना जाता था और इन दोनों को मिलाने पर ही एक लाख श्लोक की संख्या निर्णीत होती है। इस 1 महाभारत के काल-निर्णय के निमित्त कतिपय प्रमाण उपस्थित किये जाते है:-

(क) अठारह पर्वो का यह ग्रन्थ तथा हरिवंश संवत् 535 और 635 के बीच जावा तथा बाली द्वीपों में विद्यमान थे। कविभाषा में अनूदित समग्र ग्रन्थ के आठ पर्व-आदि, विराट, उद्योग, भीष्म, आरमवासी, मुसल,प्रस्थानिक और सवर्गरोहण-बाली में इस समय उपलब्ध हैं और कुछ प्रकाशित भी हुए हैं। अनुवाद के बीच-बीच में मूल श्लोक भी दिये गये है, जो महाभारत के श्लोक से मिलते हैं। फलत: 535 सं0 से कम से कम दो सौ वर्ष पूर्व भारत में महाभारत का प्रामाण्य अंगीकृत था।

(ख) गुप्त शिलालेखों में एक शिलालेख (चेदि संवत् 197 विक्रमी 502=445 ईस्वी) में महाभारत का उल्लेख 'शतसाहस्री संहिता' अभिधान द्वारा किया गया है। अत: इस समय से दो सौ वर्ष पूर्व महाभारत को वर्तमान रूप में होना अनुमान सिद्ध है।

(ग) महाकवि अश्वघोष ने अपने 'वज्रसूची उपनिषद्' में हरिवंश के श्राद्ध माहात्म्य में से 'सप्तव्याधा दशार्णेषु' (हरिवंश 24/20, 21) इत्यादि श्लोक तथा महाभारत के ही अन्य श्लोक (शान्तिपर्व 261/17) पाये जाते हैं। इससे प्रकट है कि प्रथम शती से पूर्व हरिवंश को मिलाकर वर्तमान महाभारत प्रचलित था।

(घ) आश्वलायन गृह्यसूत्रों में (3/4/4) भारत और महाभारत का पृथक –पृथक उल्लेख किया गया है। बौधायन धर्मसूत्रों (2/2/26) के एक स्थान पर महाभारत वर्णित ययाति उपाख्यान का एक श्लोक मिलता है (आदि 78/10) तथा बौधायन गृह्य सूत्र में 'विश्णुसहस्रनाम' का स्पष्ट उल्लेख ही नहीं है, प्रत्युत् इसमें (2/22/9) गीता का 'पत्रं पुष्पं फलं तोय' श्लोक (गीता9/26) उद्धृत है। बौधायन ईस्वी सन् से लगभग चार सौ वर्ष पहिले हुए थे- ऐसा डॉ0 बूलर ने प्रमाणित किया है।

(ड़) महाभारत में जहॉ विष्णु के अवतारों का वर्णनकिया गया है, वहॉ बुद्धका नाम तक नहीं है। नारायणीयोपाख्यान (शान्तिपर्व 339/100) में दश अवतारों के भीतर हंस को प्रथम अवतार माना गया है और बुद्ध का उल्लेख न कर 'कल्कि'का निर्देश कृष्ण के तुरन्त बाद में किया गया है। फलत: बुद्ध से अनभिज्ञ महाभारत बुद्धपूर्वयुग की नि:संदिग्ध रचना है।

(च) चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आनेवाल यूनानी राजदूत मेगस्थानीज ने अपने भारत-विषयक ग्रन्थ में लिखा है कि हिरेक्लीज अपने मूल पुरूष डायोनिसस से पन्द्रहवॉ था और उसकी पूजा मथुरा के निवासी शौरसेनीय लीग आदर के साथ करते थे। हिरेक्लीज से श्रीकृष्ण

का ही बोध होता है, जो महाभारत के अनुसार दक्ष प्रजापति से पन्द्रहवें पुरूष थे (अनुशासन 14/7/25-33) । इतना ही नहीं, मेगास्थनीज ने विचित्र लोगों-कर्ण प्रावरण, एकपाद , ललटाक्ष आदि- का और सोना निकालनेवाली चीटियों का जो वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है वह महाभारत के ही आधार पर है (सभापर्व 51 और 52 अ0) । फलत: वह केवल महाभारत से ही परिचित नहीं था, प्रत्युत् उस युग में प्रचलित कृष्ण-चरित तथा कृष्ण पूजा से भी अवगत था।

इन प्रमाणों के साक्ष्य पर यह निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान महाभारत का निर्माण बुद्ध के पूर्व युग से सम्बद्ध है। ईस्वी पूर्व पन्चम अथवा षष्ठ शती में उसकी रचना हुई।

ग्रन्थ परिचय

महाभारत के खण्डों को पूर्व कहते हैं। ये संख्या में 18 अठारह हैं-

(1) आदि, (2) सभा, (3) वन, (4) विराट, (5) उद्योग, (6) भीष्म , (7) द्रोण, (8) कर्ण, (9) शल्य, (10) सौप्तिक, (11) स्त्री, (12) शान्ति, (13) अनुशासन, (14) अश्वमेघ, (15) आश्रमवासी, (16) मौसल, **(17)** महाप्रस्थानिक, (18) स्वर्गारोहण । आदि पर्व में चन्द्रवंशका विस्तृत इतिहास तथा कौरव-पाण्डवों की उत्पत्ति का वर्णन है। सभा पर्व में द्यूतक्रीडा, वन पर्व में पाण्डवों का वनवास, विराटपर्व में पाण्डवों का अज्ञातवास, उद्योग पर्व में श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरवों की सभा में जाना तथा शान्ति का उद्योग करना,भीष्म पर्व में अर्जुन को गीता का उपदेश ,युद्ध का आरम्भ , भीष्म का युद्ध और शरशय्या पर पड़ना; द्रोण पर्व में अभिमन्यु –वध, द्रोणाचार्य का युद्ध और वध; कर्ण का युद्ध और वध; शल्य पर्व शल्य की अध्यक्षता में लड़ाई और अन्त में वध, सौप्तिक पर्व में पाण्डवों के सोये हुए पुत्रों का रात में अश्वत्थामा द्वारा वध; सत्रीपर्व में स्त्रियों का विलाप; शान्तिपर्व में भीष्म पितामह का युधिष्ठिर को मोक्षधर्म तथा राजधर्म का उपदेश; अनुशासन पर्व में धर्म तथा नीति की कथाएँ ; अश्वमेघ पर्व में युधिष्ठिर का अश्वमेघ यज्ञ करना; आश्रमवासी पर्व में धृतराष्ट्र, गान्धारी आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना; मौसल पर्व में यादवों का मूसल के द्वारा नाश; महाप्रस्थानिक पर्व में पाण्डवों की हिमालय-यात्रा तथा स्वर्गारोहण पर्व में पाण्डवों का स्वर्ग में जाना वर्णितहै।

इनके अतिरिक्त महाभारत में अनेक रोचक तथा शिक्षाप्रद उपाख्यान भी है, जिनमें निम्नलिखित आख्यान विशेष प्रसिद्ध हैं-

(1) **शकुन्लोपाख्यान** - यह उपाख्यान महाभारत के आदिपर्व में है (आ0 71), जिसमें दुष्यन्त और शकुन्तला की मनोहर कथा है। महाकवि कालिदास के 'शकुन्तलां नाटक का आधार यही आख्यान है।

(2) **मत्स्योपाख्यान-** यह वनपर्व में है। इसमें मत्स्यावतार की कथा है, जिसमें प्रलय उपस्थित होने पर मत्स्य के द्वारा मनु के बचाये जाने का विवरण है। यह कथा 'शतपथ ब्राह्मण' में भी उपलब्ध होती है तथा भारत से भिन्न देशों के इतिहास में भी इसका उल्लेख मिलता है।

(3) **रामोपाख्यान**- यह भी कथा वनपर्व के 18 अध्यायों में वर्णित है (अ0 274-291)।

(4) शिवि उपाख्यान- यह सुप्रसिद्ध कथानक वन पर्व में ही है जिसमें उशीनर के राजा शिवि ने अपना प्राण देकर शरण में आये कपोत की रक्षा बाज से की थी (अ0 130) यह कथा जातकों में भी आती है।

(5) सावित्री उपाख्यान- भारतीय ललनाओं के लिए आदर्शरूप सावित्री की कथा वनपर्व में मिलती है। महाराज द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् तथा सावित्री का उपाख्यान पातिव्रत्य धर्म की पराकाष्ठा है। ऐसी सुन्दर कथा शायद ही किसी अन्य साहित्य में प्राप्त हो (अ0 239)।

(6) नलोपाख्यान- राजा नल और दमयन्ती की कमनीय कथा इसी पर्व में मिलती है (अ0 52-79)। श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' महाकाव्य का यही आधार है।

हरिवंश

महाभारत के खिल पर्व होने के कारण हरिवंश की आलोचना अब प्रसंग प्राप्त है। हरिवंश में श्लोकों की संख्या सोलह हजार तीन सौ चौहत्तर (16, 374 श्लोक) श्रीमद्भागवत की श्लोक –संख्या से कुछ ही अधिक है। डॉ0 विन्टरनित्स के कथनानुसार यूनानी कवि होमर के दोनों महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' की सम्मिलित पद्य संख्या से भी यह अधिक है, परन्तु यह एक लेखक की रचना न होकर अनेक लेखकों के संयुक्त प्रयास का फल है। हरिवंश का अन्तिम पर्व (ग्रन्थ का तृतीय भाग) तो परिशिष्ट भूत हरिवंश का भी परिशिष्ट है और काल क्रम से सबसे पीछे का निर्मित भाग है।

हरिवंश में तीन पर्व या खण्ड हैं-

(क) हरिवंश पर्व- कृष्ण के वंश वृष्णि-अन्धक की कथा विस्तार से दी गयी है और इस आदिम पर्व के वर्णन के अनन्तर राजा पृथु की कथा विस्तार से दी गयी है। सूर्यवंशीय राजाओं के प्रसंग में विश्वामित्र तथा वसिष्ठ का भी आख्यान वर्णित है। प्रसंग से पृथक् हटकर प्रेतकल्प (अन्त्येष्टि एवं श्राद्ध) का वर्णन नौ अध्यायों में (अ0 16-24) विस्तार से निबद्ध है और इसीके अन्तर्गत 21 वें अध्याय में पशुओं की बोली को समझने-बूझने वाले ब्रह्मदत्त की कथा दी गई है। चन्द्रवंशीय राजाओं के वर्णन के अवसर पर राजा पुरूरवा और उर्वशी का प्रख्यान से समानता रखता है (अ0 26)। नहुष, ययाति तथा यदु के वर्णन के पश्चात् विष्णु की अनेक स्तुतियॉं प्रस्तुत की गई हैं। जो एक प्रकार से कृष्ण के पूर्व दैवी इतिहास का प्ररिचय देती हैं।

(ख) विष्णुपर्व– यह समय ग्रन्थ का अतिशय विस्तृत तथा महनीय भाग है। इसमें कृष्णचन्द्र की विविध लीलाओं का, विशेषत: बाललीलाओं का, बड़ा ही सांगोपांग रूचिर विवरण है श्रीमद्भागवत के वर्णनसे तुलना करने पर अनेक स्थल पर पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं अन्य घटनायें भी दी गयी हैं। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के जन्म, शंबर द्वारा हरण, समुद्र से प्राप्ति तथा मायावती के साथ विवाह आदि प्रख्यात कथाओं का यहॉं उल्लेख है, परन्तु असुरों के राजा वज्रनाभ की दुहिता प्रभावती के साथ प्रद्युम्न का विवाह

और वह भी नितान्त नाटकीय ढंग से एकदम नूतन तथा पर्याप्तरूपेण रोचक है (150 अ0)। इसी प्रकार प्रख्यात रासलीला का हल्लीसक नृत्य के रूप में निर्देश किसी प्राचीन युग की स्मृति दिलाता है। इस पर्व के अन्त में अनिरूद्ध का विवाह बाणासुर की कन्या उषा के साथ बड़े उमंग और उत्साह से वर्णित है और इससे पूर्व 'हरि-हरात्मक स्तव' (अ0 184) द्वारा शिव और विष्णु की एक ही अभिन्न देवता के रूप में सुन्दर स्तुति की गई है। इस पर्व में विषय की एकता और वर्णनकी संगति से प्रतीत होता है कि प्राचीन युग में 'श्रीकृष्ण चरित काव्य' के साथ यह अंश सम्बन्ध रखता है, परन्तु तृतीय भाग के विषय में किसी एकता की कल्पना नहीं की जा सकती।

(ग) भाविष्यपर्व- यह भाग विविध वृत्तों का पौराणिक शैली में परस्पर असम्बद्ध संकलन है। इस पर्व का नामकरण प्रथम अध्याय के नाम पर है, जहॉ भविष्य में होने वाली घटनाओं का संकेत किया गया है। जनमेजय द्वारा विहित यज्ञों का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है (अ0 191-196)। विष्णु के सूकर, नृसिहं तथा वामन अवतारों के वर्णन के अनन्तर- शिवपूजा तथा विष्णु पूजा के समन्वय की दिशा दिखाई गई है। शिव के दो उपासक हंस तथा डिम्भक की कथा विस्तार से है, जिन्हे कृष्ण ने पराजित किया था। महाभारत के माहात्म्य वर्णन के पश्चात् समग्र हरिवंश का ध्येय हरि की स्तुति में प्रदर्शित किया गया है- 'आदावन्ते च मध्ये च हरि: सर्वत्र गीयते'।

हरिवंश का स्वरूप

एक ओर हरिवंश महाभारत का परिशिष्ट (खिल) माना जाता है और दूसरी ओर यह 'पुराण' नाम से भी अभिहित होता है। इसके पोषक प्रमाणों की कमी नहीं है-

(1) महाभारत के आरम्भ में ग्रन्थ के समग्र पर्वो की संख्या एक सौ परिगणित है (आदि अ0 2) और इसके भीतर हरिवंश भी सम्मिलित किया गया है (आदि 2/82-83)। ध्यान देने की बात तो यह है कि हरिवंश 'खिलसंज्ञित पुराण' कहा गया है। (हरिवंशसतत: पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्)। फलत: व्यास की दृष्टि में खिल और पुराण दोनों साथ-साथ होने में कोई वैषम्य नहीं है।

(2) हरिवंश के 20 वें अध्याय में 'यथा ते कथितं पूर्व मया राजर्षिसत्तम' के द्वारा ययाति के चरित की महाभारत में पूर्व स्थिति का स्पष्ट निर्देश है (आदिपर्व अ0 81-88)।

(3) हरिवंश के 32 वें अध्याय में अदृश्यवाणी का कथन 'त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला' के द्वारा महाभारत में शकुन्तलोपाख्यान की ओर स्पष्ट संकेत है तथा 54 अध्याय में कणिक मुनि महाभारत में कणिक मुनि की पूर्व स्थिति बतलाता है (आदिपर्व अ0 140)।

(4) हरिवंश का उपक्रम तथा उपसंहार बतलाता है कि हरिवंश महाभारत का ही परस्पर सम्बद्ध खिल पर्व है। उपक्रमाध्याय में भारती कथा सुनने के बाद वृष्णि अन्धक चरित सुनने की इच्छा शौनक ने सौति से जो प्रकट की वह दोनों के सम सम्बन्ध का सूचक है।

हरिवंश के 132 वेंअ0 में महाभारत के कथाश्रवण का फल है, जिस कथन की संगति हरिवंश के महाभारत के अन्तर्गत मानने पर ही बैठ सकती है, अन्यथा नहीं।

(5) बहिरंग प्रमाणों में आनन्दवर्धन का यह कथन साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि महाभारत के अन्त में हरिवंश के वर्णन से समाप्ति करने वाले व्यासजी ने शान्तरस को ही ग्रन्थ का मुख्य रस व्यन्जना के द्वारा अभिव्यक्त किया है।[1]

फलत: हरिवंश महाभारत का 'खिल' पर्व है। साथ ही साथ पन्चलक्षण से समन्वित होने से यह 'पुराण' नाम्ना भी अभिहित किया जाता है, परन्तु न तो यह महापुराणों में अन्तर्भूत होता है और न उपपुराणों में। दोनों से इसकी विशिष्टता पृथक् ही है।

हरिवंश का कालनिर्णय

हरिवंश के कालनिर्माण तथा महाभारत के साथ सम्बद्ध होने के काल का निर्णय प्रमाणों द्वाराकिया जा सकता है-

(क) हरिवंश के साथ सम्मिलित होकर लक्ष श्लोकात्मक रूप धारण करने वाला महाभारत 'शत साहस्री संहिता' के नाम से 454 ईस्वी के गुप्त शिलालेख में उल्लिखित है।

(ख) अश्वघोष (प्रथमशती) ने अपने वज्रसूची उपनिषद् में हरिवंश के 'प्रेतकल्प' प्रकरण से 'सप्तव्याधा दशार्णेषु' (हरिवंश 24/20, 21) इत्यादि श्लोकों को प्रमाण रूप से उद्धृत किया है। अत: हरिवंश की रचना प्रथमशती से अर्वाचीन नहीं हो सकती।

(ग) हरिवंश (विष्णु पर्व 55/50) में 'दीनार' का उल्लेख उसके रचनाकाल का द्योतक है। रोम साम्राज्य के सोने के सिक्के 'दिनारियस' कहलाते थे और उसी शब्द का संस्कृत रूप ' दीनार' है। इस शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग प्रथमशती के शिलालेखों में उपलब्ध होता है।

(घ) हरिवंश के एक श्लोक में शुंगब्राह्मण राज्य के संस्थापक पुष्यमित्रशुंग द्वारा यज्ञ का उल्लेख भविष्य में होनेवाली घटना के रूप में निर्दिष्ट किया गया है-

उपात्तयज्ञो देवेसु ब्राह्मणेषुपपत्स्यते।
'औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानी: काश्यपो द्विज:।
अश्वमेधं कलियुगे पुन: प्रत्याहरिष्यति।।(हरिवंश 3/2/39-40)

यह तो प्रसिद्ध ही है कि ब्राह्मण सेनापति पुष्पमित्र ने दो बार अश्वमेघ यज्ञ किया था, जिनमें महाभाष्य के रचयिता पतन्जलि स्वयं ऋत्विक् रूप से उपस्थित थे। 'इह पुष्पमित्रं याजयाम:'-महाभाष्य। पुष्पमित्र ने लगभग 36 वर्षो तक राज्य किया (लगभग ईस्वी पूर्व187-151) और आरम्भ में वे मौर्य सम्राट् के सेनापति थे। इसी प्रसिद्ध सेनानी का निर्देश इस श्लोक में है। फलत: हरिवंश का रचनाकाल इससे पूर्व नहीं, तो इसके कुछ ही पश्चात् होना चाहिए। अतएव 'हरिवंश' का निर्माण काल ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में मानना सर्वथा सुसंगत होगा।हरिवंश का धार्मिक महत्व सर्वत्र प्रख्यात है। सन्तान के इच्छुक व्यक्तियों के लिये 'हरिवंश' के विधिवत् श्रवण का विधान लोक प्रचलित है। शपथ खाने के लिए पुरूषों के हाथ पर हरिवंश की पोथी रखने का प्रचलन नेपाल में उसी प्रकार है

जिस प्रकार किसी मुसलमान के हाथ पर कुरान रखने का। श्रीकृष्ण के चरित के तुलनात्मक अध्ययन के लिए हरिवंश के विष्णुपर्व का परिशीलन नितान्त आवश्यक है। प्राचीन भारत की ललित कलाओं के विषय में हरिवंश बहुत ही उपादेय सामग्री प्रस्तुत करता है। प्राचीन भारत में नाटक के अभिनय-प्रकार की जानकारी के लिए यहॉ उपादेय तथ्यों का संकलन है। सबसे महत्वपूर्ण है हरिवंश में राजनैतिक इतिहास का वर्णन, जो किसी भी प्राचीन पुराण के वर्णन से उपादेयता और प्रामाणिकता में किसी प्रकार न्यून नहीं है[2]। फलत: प्रथम शती में भारती संस्कृति की रूपरेखा जानने के लिए हरिवंश' हमारा विश्वनीय मार्गदर्शक है।

महाभारत के टीकाकार

महाभारत के टीकाकारों की एक दीर्घ परम्परा है जिसके अन्तर्गत बड़े विद्वानों तथा अध्यात्मवेत्ता की गणना है। डॉ0 सुखठणकर के अनुसार महाभारत के टीकाकारों के नाम निम्नलिखित हैं:- अनन्तभट्ट, अर्जुन मिश्र, आनन्द, चतुर्भुज मिश्र, जगदीश चक्रवर्ती, देवबोध , नीलकण्ठ , महानन्द पूर्ण , यज्ञनारायण, रत्नगर्भ, रामकिंकर, रामकृष्ण, रामानुज, लक्ष्मण, वरद, वादिराज, विद्यासागर, विमलबोध, शंकराचार्य श्रीनिवास, सर्वज्ञनारायण, सृष्टिधर (22) ।इन बाइस टीकाकारों के अतिरिक्त अन्य टीकाकार भी हैं- गदानन्द ('भारत-ज्ञान-दीपक' नामक टीका के कर्ता, जिनकी टीका का हस्तलेख वर्गीय साहित्य परिषद् में उपलब्ध है) , जगद्धर,जनार्दनमुनि और विद्यानिधिभट्ट (जिन चारोंका निर्देश आनन्द-पूर्ण ने अपनी भारत-टीका में किया है), वैशम्पायन तथा शान्डिल्य माधव (30) –(जिनमें प्रथम का निर्देश विमलबोध ने तथा अन्तिम दो का अर्जुन मिश्र ने अपनी टीकाओं में किया है), किसी रामकृष्ण की विरोधार्थभंजिनी व्याख्या तथा अज्ञातनामा लेखक का 'विषमपद-विवरण' विराटपर्व के ऊपर प्रकाशित हैं। आठ टीकाओं के 'लक्षाभरण' की कुछ टिप्पणियॉ विराट तथा उद्योग पर्व पर प्रकाशित हैं। आठ टीकाओं के साथ विराट पर्व को 1915 ई0 में तथा पॉच टीकाओं के साथ उद्योग पर्व को 1920 में गुजराती प्रिटिंग प्रेस ने प्रकाशित कर महाभारत के अनुशीलन कार्य में विशेष योगदान दिया है। 'निगूढ़पदबोधिनी' तथा 'भारतटिप्पणी' नामक अज्ञातनामा लेखकों की व्याख्या के अतिरिक्त उत्कल के कवीन्द्र (लगभग 1600 ई0) की 'भारत-व्याख्या' मिलती है। वादिराज की व्याख्या का नाम 'लक्षश्लोकालंकार' भी है। श्रीधराचार्य ने मोक्षधर्म के ऊपर अपनी व्याख्या लिखी है। इस प्रकार महाभारत के 36 टीकाकारों का पता पूर्णरूप से चलता है। इन टीकाकारों में से अनेक के तो नाम ही यत्र-तत्र निर्दिष्ट हैं तथा कतिपय टीकाकारों की टीका एक पर्व पर अथवा अनेक पर्व पर मिलती है। ऐसे श्लाध्य टीकाकार भी हैं जिनकी टीका भारत के 18 पर्वो पर उपलब्ध होती है इनमें प्रख्यात कतिपय टीकाकारों का कालक्रम से संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:-

(1) देवबोध या देवस्वामी- महाभारत के सर्वप्राचीन उपलब्ध टीकाकार है, जिनका उल्लेख पिछले टीकाकारों ने बड़े आदर तथा सम्मान के साथ किया है। इनकी टीका आदि, सभा[1] 'भीष्मपर्व[1] तथा उद्योग पर्व के ऊपर प्रकाशित भी हो चुकी है। टीका की पुष्पिका में ये परमहंस परिव्राजकाचार्य कहे गये हैं। फलत: ये अद्वैतवादी सन्यासी थे। इनके गुरू का

नाम सत्यबोध मिलता है। यह विस्तृत नहीं है;कठिन शब्दों का अर्थ देकर यह विषम स्थलों का तात्पर्य भी देती है। यह टीका अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है । इसका प्रभाव पिछले टीकाकारों पर प्रचुर मात्रा में है। और मतभेद होने पर भी टीकाकारों ने इसका उल्लेख बड़े आदर तथा सम्मान के साथ किया है। अर्जुनमिश्र के द्वारा यह श्लाघ्य स्तुति टीकाकारों के हार्दिक भाव को प्रकट करती है-

वेदव्यासमुखाम्भोजगलितं वाड़मयामृतम्।
संभोजयन्तं भुवनं देवबोधं भजामहे।।

विमलबोध ने इनके मत का उल्लेख अपनी टीका में किया है । फलत: इनका समय 1150 ईस्वी से पूर्व होना चाहिए।

(2) वैशम्पायन- मोक्षधर्म, अर्थात् शान्तिपर्व, के ऊपर लिखी इनकी व्याख्या उपलब्ध है। विमलबोध ने अपनी 'विषम-श्लोकी' नामक महाभारत-व्याख्या में इनके नाम का उल्लेख किया है-

वैशम्पायन-टीकादिदेवस्वामिमतानि च ।
वीक्ष्य व्याख्या विरचिता दुर्घटार्थप्रकाशिनी ॥

अत: इनका भी आविर्भावकाल 1150 ईस्वी से पूर्व होना चाहिए । देवबोध तथा विमलबोध के बीच की व्याख्याश्रृंखला वैशम्पायन के द्वारा निश्चित रूप से निर्मित की गई है।

(3) विमलबोध- इनकी व्याख्या अठारहों पर्वो के ऊपर उपलब्ध होती है। फलत: इनका महत्व प्रौढ़ टीकाकारों में समधिक वैशिष्ट्यपूर्ण है। इन्होने अपनी टीका में धर्मनिबन्धकार के रूप में धारेश्वर (भोज) का, उनके प्रख्यात ग्रन्थ 'सरस्वती-काण्ठा-भरण' का तथा उनके अज्ञातपूर्व धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ 'व्यवहार-मन्जरी' का सप्रमाणउल्लेख किया है । भोजराज का समय 1010 ई0 से लेकर 1055 तक साधारणतया माना जाता है ।1062ई0 के पीछे इनका समय कथमपि नहीं है । इस उल्लेख के कारण विमलबोध का समय धारेश्वर भोज तथा आनन्दपूर्ण के बीच में है । इनकी टीका का नाम- ' विषमश्लोकी' या 'दुर्घटार्थ-प्रकाशिनी या 'दुर्बोधपदभंजिनी' है और यह विराट तथा उद्योगपर्व के ऊपर प्रकाशित हुई है (गुजराती प्रिंटिंग प्रेस)।

(4) नारायण सर्वज्ञ-यह टीकाकार कहीं सर्वज्ञ नारायण या केवल नारायण नाम से भी निर्दिष्ट किया गया है। मनुस्मृति के टीकाकारों में भी 'सर्वज्ञ नारायण' अन्यतम है, जिसका समय काणे के अनुसार 1130-1300 ई0 है। मनु की टीका का नाम 'मन्वर्थवृत्ति-निबन्ध' है, जो मनु की प्रख्यात टीका मानी जातीहै। ये दोनों सर्वज्ञ नारायण अभिन्न वयक्ति माने जाते हैं। इनकी टीका के विस्तार का ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि वह कितने पर्वो के ऊपर विशेष पड़ा। विराट तथा उद्योग पर्व की टीका प्रकाशित है। इस टीका का प्रभाव टीकाकारों के ऊपर विशेष पड़ा । उद्योगपर्व की टीका के परिशिष्ट के रूप में अर्जुन मिश्र ने निम्न कूट श्लोक का व्याख्यान सर्वज्ञ नारायण के मतानुसार किया है ।

विषं भुड्क्ष्व सहामात्यैर्विनाशं प्रान्नुहि धुवम् ।

विना केन विना नाभ्यां स्फीतं कृष्णाजिनं वरम् ।।

अत: अर्जुन मिश्र के ऊपर इनके प्रकृष्ट प्रभाव का संकेत इससे स्पष्ट है। इनकी टीका का नाम 'भारतार्थ-प्रकाश' है।

(5) चतुर्भुज मिश्र- ये भी महाभारत के एक मान्य टीकाकार हैं। इनके समय का परिचय अनेक साधनों से मिलता है। इन्होंने अपनी टीका में 'मेदिनी कोष' को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। मेदिनी का समय 1200 ई0- 1275 ई0 के बीच माना जाता है। उधर आनन्दपूर्ण विद्यासागर ने (1350 ई0) अपनी 'विद्यासागरी' टीका में चतुर्भुज मिश्र का नाम निर्देश किया है। फलत: इनका समय दोनों के मध्य में कभी मानना होगा। 1300 ई0 के आसपास सर्वज्ञ नारायण के अनन्तर इन्हें स्थान देना समुचित होगा। टीका का नाम 'भारतोपाय-प्रकाश' है; जो केवल विराट पर्वपर प्रकाशित है।

चतुर्भुज मिश्र के द्वारा रचित'अमरूशतक' की एक व्याख्या (भाव-चिन्तामणि) का पता चलताहै, जिसमें ये अपने को 'काम्पिल्य' बतलाते हैं। फलत: ये कंपिला (उत्तर प्रदेश के फतेहगढ़ के पास) के निवासी थे। अर्जुनवर्मदेव (1211 ई0 -1215 ई0 के द्वारा रचित अमयशतक की व्याख्या से वे परिचय रखते हैं। फलत: इनका समय 1250 ई के अनन्तर तथा 1660 ई0 के पूर्व (जब इनकी टीका का हस्तलेख मिलता है) होना चाहिए। मेरी दृष्टि में महाभारत के टीकाकार चतुर्भुज मिश्र ही 'अमयशतक' के भी टीकाकार हैं और इनका समय 13 वीं शती के अन्तिम भाग में मानना कथमपि अनुचित न होगा।

(6) आनन्दपूर्ण 'विद्यासागर'- ये 14वीं शती के मध्य में एक प्रख्यात सन्यासी थे। विद्यासागर इनका उपनाम था। इनके गुरू का नाम था परमहंस परिव्राजकाचार्य अभयानन्द। अद्वैत वेदान्त के इतिहास में आनन्दपूर्ण एक महिमाशाली प्रौढ़ ग्रन्थकार है जिनकी दार्शनिक कृतियॉ ये है- (1) पंचपादिका टीका,(2) न्यायकल्पलतिका (सुरेश्वराचार्य की बृहदारण्यवार्तिका की टीका), (3) भावशुद्धि(मण्डन मिश्र की ब्रह्मसिद्धि की टीका), (4) खण्डन खण्डखाद्य की टीका (विद्यासागरी), (5) महाविद्या-विडम्बन टीका(1225 ई0 के आसपास लिखितवादीन्द्र के प्रौढ़ ग्रन्थ की व्याख्या), (6) समन्वय-सूत्र-विवृति(ब्रह्मसूत्र 1।1।4 की टीका), (7) न्यायचन्द्रिका (चार परिच्छदों मे न्याय, मीमांसा तथा वैशेषिक मतों का खण्डन) , (8) वेदान्त–विद्यासागर (वेदान्त का मौलिक ग्रन्थ), (9) प्रक्रियामंजरी। इनकी महाभारत पर टीका बहुत ही विस्तृत तथा पाण्डित्यपूर्णहै, जिसमें प्राचीन टीकाकारों के मतों का उल्लेख विस्तार के साथ है।पॉच पर्वो की टीका उपलब्ध है- आदि पर्व (जयकौमुदी), सभा,भीष्म, शान्ति तथा अनुशासन पर्व (व्याख्या रत्नावली)। इनके समय का निर्धारण किया जा सकता है। ऊपर के छठे ग्रन्थ का हस्तलेख 1405 ई0 का तथा दूसरे ग्रन्थ का हस्तलेख 1434 ई0 का है। फलत: 1400 ईस्वी से इन्हें प्राचीन होना ही चाहिये। नौवें ग्रन्थ की रचना कामदेव[1] नामक राजा के समय की गई। ये कामदेव गोवा में राज्य करने वाले कदम्बवंशी नरेश थे, जिनका शिलालेख 1315 ई0 का उपलब्ध होताहै। फलत:

आनन्दपूर्ण का समय 1350 ई0 में, अर्थात् 14वीं शती का मध्यभाग मानना उचित होगा। इन्होंने आदिपर्व की टीका(संस्कृत साहित्य परिषद् में उपलब्ध) में सात नये महाभारत के टीकाकारों का उल्लेख किया है, जिनमें से अनेक टीकाकार एकदम नये हैं। इन व्याख्याकारों के नाम है- अर्जुन, जगद्धर, जनार्दन, मुनि लक्ष्मण (टीका का नाम 'विषमोद्धारिणी' जो सभा तथा विराट पर्व पर उपलब्ध है), विद्यानिधि भट्ट तथा सृष्टिधर। विद्यासागर के द्वारा उद्धृत होने से उन सभी का समय 14 शती के मध्यकाल से निश्चित रूप से प्राचीन है।

(7) अर्जुन मिश्र- इनकी टीका का नाम 'भारतार्थदीपिका' और 'भारतसंग्रही-दीपिको' है। इसका केवल एक अंश (विराट तथा उद्योग की टीका) अब तक प्रकाशित हुआ है। टीका की पुष्पिका में ये अपने को 'भारताचार्य' की महनीय उपाधि से विभूषित करते है। इनके पिता का नाम था- ईशान, जो भारत के पाठक या पाठकराज थे और अपने पुत्र के समान ही 'भारताचार्य'की उपाधि धारण करते थे। ये बंगाल के निवासी तथा गंगा के तीरस्थ किसी नगर या ग्राम के वासी थे। अपने कुल को 'चम्पाहेटीय' या 'चम्पाहेठि' के नामक स्थान का निवासी था। कलकत्ते से 15 मील दक्षिणपश्चिम में 'चम्पाहाटी' नामक एक स्थान है। सम्भव है कि अर्जुन मिश्र का कुल यहीं का मूल निवासी था। इन्होंने अपने से प्राचीन टीकाकारों में देवबोध, विमलबोध, शाण्डिल्य तथा सर्वनारायण का उल्लेख किया है और ये स्वयं नीलकण्ठ (17 शती का उत्तरार्ध) के द्वारा उद्धृत हुए हैं। इनकी 'अर्थदीपिका' देवबोध की प्रख्यात टीका के आदर्श पर निर्मित है। इसका संकेत इन्होंने अपनी टीका(उद्योगपर्व की) में स्पष्टत: किया है। मोक्षधर्म पर इनकी टीकाके हस्तलेख का समय 1534 ईस्वी है। इन्होंने मेदिनी कोष (1200ई0 -1275) को उद्धृत तथा सर्वज्ञ नारायण (13वी शती) का निर्देश किया है। फलत: इनका समय 14वीं शती का उत्तरार्ध (1350ई0-1500 ई0) माना जा सकता है। इनकी टीका अल्पाक्षर होने पर भी सारगार्भितहै। सनत्सुजातीय पर्व की व्याख्या में अध्यात्मशास्त्र के सिद्धान्तों का बड़ा ही प्रामाणिक और पाण्डित्यपूर्णविवेचन है। ये हरिवंश को भी महाभारत का अविभाज्य अंग मानते है। इसीलिए इनकी टीका हरिवंश के ऊपर भी उपलब्ध है।

(8) नारायण- पर्व निर्दिष्ठ सर्वज्ञ नारायण आवन्त रकालिन भिन्न टीका कार है; क्योकि इन्होंने स्पष्त: नारायण सर्वज्ञ के मत की आलोचना कर अपनी व्याख्या की रचना की।' इन्होने अर्जुनमिश्र का पूर्व टीकाकारों की गणना में उल्लेख किया है। फलत: इनका समय 14वीं शती के अनन्तर कभी होना चाहिए। इनकी टीका का नाम 'निगुद्धार्थ पदबोधिनी ' है।

(9) **वादिराज-** यह टीकाकार दक्षिण भारत के निवासी थे, परन्तु इनके पाठ दक्षिणि कोष से पूर्णत: नही मिलते है न उत्तरीयकोष से मिलते है। इनके पाठ दोनो के बीच नहीं है। विराट पर्व की टीका के अन्त में अपने मध्वगुरू को इन्होंने प्रणाम अर्पित किया है। वादिराज का समय तथा कार्य माध्व सम्प्रदाय के इतिहास में नितान्त महत्वपूर्ण है। अपने 'तीर्थप्रबन्ध काव्य ' (हस्तलेख भण्डार कर संस्थान में) में इन्होंने पण्डरपूर के विढोवा (विट्ठल) की मूर्ति

के तुंगभद्रा तीरस्थ विजयनगर के स्थानन्तरण का उल्लेख किया है। कृष्ण देव राम के समय में (1509-1530 ई0) इस स्थानतरण की घटना की संभावना है। इन्हें अग्रहार देने का उल्लेख 1493 शक वर्ष के (1571ईव) एक शिलालेख में मिलता है। इनके प्रधान शिष्य कर्नाटक के प्रख्यात संत कनकदास का समय 1550 ई0 – 1570 ई0 के आसपास है। फलत: वादिराज का समय 16वीं शती का मध्यभाग लगभग 1525 ई0 -1575 ई0 मानना उक्त शिलालेख के स्पष्ट आधार पर सुनिश्चित है। अपने नाम का अर्थ इन्होंने स्वयं लिखा है' – वादी (माध्वाचार्य) राजा है जिसके वह व्यक्त, अर्थात् माध्वाचार्य का दास। वादिराज द्वैतमतानुयायी आचार्यों में अन्यतम प्रौढ नैयायिक थे। इनकी महाभारत –टीका का नाम 'लक्षाभरण' या लक्षालंकार भी है। विराट तथा उद्योग पर्व पर यह प्रकाशित है(गुजराती प्रैस)।

(10) नीलकण्ठ – इनका पूरा नाम नीलकण्ठचतुर्धर (चौधरी) है और इनके वंशज आज भी महाराष्ट्र में विद्यमान है। इनकी टीका नितान्त प्रख्यात , 'भारतभाव भावदीप' बहुश: प्रकाशित हुई है।[2] यह महाभारत के 18 पर्वो पर उपलब्ध है। नीलकण्ठ के पूर्वज महाराष्ट्र कूर्पर ग्राम (आजकल कोपर गॉव, बम्बई प्रान्त का अहमदनगर जिला) के मूल निवासी थे, परन्तु इस टीका की रचना काशी में की गयी, जहॉ वे आकर बस गये थे। **नीलकण्ठ ने मन्त्र** - रामायण तथा मन्त्र – भागवत नामक ग्रन्थों का भी प्रणयन किया है, जिसमें रामयण और भागवत की कथा से संबद्ध मन्त्र ऋगवेद से क्रमबद्ध संग्रहीत है तथा नीलकण्ठ ने इनके ऊपर अपने सिद्धान्तानुसार टीका भी लिखी है। नीलकण्ठ चतुर्धर के पिता का नाम 'गोबिन्द ' था तथा पुत्र का भी नाम 'गोबिन्द' था, जिनके पुत्र (अर्थात् नीलकण्ठ के पौत्र) शिव ने पैठण मे रहते हुए 'धर्मतत्व -प्रकाश' ग्रन्थ का निर्माण 1746 ई0 में किया। नीलकण्ठ की 'शिवतान्डव-टीका' का रचनाकाल 1680 ई0 तथा गणेश गीता की टीका का रचना काल 1693 ई0 है। 'भारत-भाव द्वीप ' के नानाहस्तलेखों का समय 1687 ई0 से लेकर 1695 ई0 है, अत: इनका समय 1650 ई0 1700 ई0 मानना उचित प्रतीत होता है

समीक्षण

संस्कृत-साहित्य में आदिकवि वाल्मीकि के अनन्तर महाऋषि व्यास ही सर्वश्रेष्ठ कवि हुए। इनके लिखित काव्य ' आर्ष –काव्य ' के नाम से प्रसिद्ध है। पिछली शताब्दियों में संस्कृत की जो उन्नति हुई , जिन काव्य–नाटकों की रचना हो गयी उनमें इन दो ग्रन्थों का प्रभाव मुख्य है। महाकवि कालीदास ने रघुवंश में इन कवियों की बडे आदर के शब्दों में संकेत किया है। व्यास की प्रतिभा की परिचायक यही घटना है। कि युद्धो के वर्णन में कहीं भी पुनरूक्ति ा नहीं दीख पड़ती है। व्यास जी का अभिप्राय महाभारत लिख कर केवल युद्धों का वर्णन नहीं है, अपितु इस भौतिक जीवन की नि:सारथा दिखलाकर प्राणियों को मोक्ष के लिए उत्सुक बनाना है। इसी लिए महाभारत का मुख्य रस शान्त है, वीर तो अंगभूत है। इसमें प्राकृतिक वर्णन नितान्त अनुठे तथा नवीनता पूर्ण है। व्यास जी की यह कृति महाकाव्य न होकर इतिहास कही जाती हैं; क्योंकि वह हमारे आदरणीय वीरों की पुण्यमयी गाथा है। यह वह धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें प्रत्येक श्रेणी का मनुष्य अपने जीवन के सुधार की सामग्री प्राप्त कर सकता है।

राजनीति का तो वह सर्वस्व ही है। राजा और प्रजा के पृथक –पृथक कर्तव्यों तथा अधिकारों का समुचित वर्णन इसकी महती विशेषता है। वाल्मीकि के साथ-साथ से भी हमारे कवियों को काव्यसृष्टि के लिए प्रेरणा तथा स्फूर्ति मिलती आई है और आगे भी मिलेगी। भगवद्गीता की महत्ता का प्रदर्शन करना आवश्यक है। कर्म, ज्ञान और भक्ति का जैसा मंजुल समन्वय गीता में किया गया है वैसाअन्यत्र अप्राप्य है। व्यास जी का कथन है कि इस आख्यान को बिना जाने हुए जो पुरूष वेदांग तथा उपनिषदों को भले जानें, वह कभी विचक्षण नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह महाभारत एक साथ ही अर्थशास्त्र ,धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र है[2]। जिसने इस आख्यान का रसमय श्रवण किया है उसे अन्य कथानकों में किसी प्रकार का रस नहीं मिलता, ठीक उसी प्रकार, जैसे कोकिल की मधुर कूक के आगे कौए की बोली नितान्त रूखी प्रतीत होती है[3]। महाभारत की प्रशंसा में व्यास ने स्वयं इसे समस्त कविजनों के लिए उपजीव्य बतलाया है। इस ग्रन्थ के अभ्यास से कवियों की बृद्धि में स्फूर्ति उत्पन्न होती है- व्यास जी का यह कथन अक्षरश: सत्य है। बाद के कविजनों ने सचमुच महाभारत से बहुत कुछ लिया है:-

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कवि-बुद्धय:।
पन्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रय: ।।
इदं कविवरै: सर्वेराख्यानमुपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वर:।

महाभारत के पात्रों में एक विचित्र सजीवता भरी हुई है। सब अपने-अपने ढंग के निराले पात्र हैं; परन्तु धर्मराज में जो धार्मिकता दिखाई पड़ती है वह एक अद्भुत वस्तु है। महाभारत सदा से धर्मशास्त्र के रूप में ही गृहीत होता आया है। वस्तुत: वह है भी धर्म का ही प्रतिपादक ग्रन्थ। व्यास ने अपना सन्देश मनुष्यों के लिए सुन्दर श्लोक में निबद्ध कर दिया है[1]। यदि मनुष्य सच्चा सुख का अभिलाषी है तो उसका परम कर्तव्य धर्म का सेवन ही है।

महाभारत का वैशिष्टय

महर्षि वेदव्यास ने भारतीय अर्थनीति, राजनीति तथा अध्यात्म-शास्त्र के सिद्धान्तों का सारांश इतनी सुन्दरता से इस ग्रन्थरत्न में प्रस्तुत किया है कि यह वास्तव में भारत के धर्म तथा तत्वज्ञान का विश्वकोष है। धर्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण है और इसीलिए व्यासजी ने अधर्म से देश का नाश तथा धर्म से राष्ट्र के अभ्युत्थान की बात बड़े ही सुन्दर आख्यानों के द्वारा हमें सिखलाई है। 'भारत-सावित्री' (जो महाभारत की भव्य शिक्षा का सार-संकलन माना जाता है) में व्यास की स्पष्ट उक्ति है कि धर्म का परित्याग किसी भी दशा में, भय से या लोभ से कभी नहीं करना चाहिए। धर्म शाश्वत है चिरस्थायी है-

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्म त्यजेज्जीवितस्यापि हेतों:।
धर्मो नित्य: सुख-दु:खे त्वनित्य:।

जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्य:।।

व्यास कर्मवादी आचार्य हैं। कर्म ही मनुष्य का पक्का लक्षण है, कर्म से पराड़मुख मानव मानव की पदवी से सदा वंचित रहता है (अश्वमेध0 43/27)-

प्रकाश-लक्षणा देवा मनुष्या: कर्मलक्षणा: ।

इसीलिए' यह भव्य भारतभूमि कर्मभूमि है। फल भोगने का स्थान तो स्वर्ग है, जो इस भूमि के छोड़ने के अनन्तर प्राप्त होता है। इस बिशाल ब्रह्माण्ड में मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, जिसके कल्याण के लिए पदार्थो की सृष्टि होती है तथा समाज की व्यवस्था की जाती है। आज के समाजशास्त्रियों का यह सिद्धान्त कि मनुष्य ही इस विश्व का केन्द्र है व्यास के इस कथन पर आश्रित है (शान्ति0180/12)-

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि ।
नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किन्चित् ।।

मानवता का उन्नयक तत्व पुरूषार्थ ही है। व्यास के शब्दों में यह सिद्धान्त 'पाणिवाद' के नाम से विख्यात है। जगत् में जिन लोगों के पास 'हाथ' है- जो कर्म में दक्ष तथा उत्साही हैं- उनके सब अर्थ सिद्ध होते हैं। संसार में पाणिलाभ से बढकर लाभ ही कोई दूसरा नहीं है। मानव-जीवन की कृतकार्यता हाथ रखने तथा हस्त-संचालन मे ही तो है। हाथ रहते भी हाथ पर हाथ रखकर जीवन बिताना पशुत्व का व्यंजक चिह्न है। इसमें मानव की सिद्धार्थता नहीं है(शान्ति0 180/11,12) –

अहो सिद्धार्थता तेषां सन्तीह पाणय:।
अतीव स्पृहये येषां सन्तीह पाणय: ।।
न पाणिलाभदधिको लाभ: कश्चन विद्यते।

राष्ट्रभावना

व्यासजी की राष्ट्रभावना बड़ी ही उदात्त, विशुद्ध तथा ओजस्विनी है। राजा राष्ट्र का केन्द्र होताहै। तथा स्वेच्छाचारी राजाओं के दोषों से भी विहीन होता है। वह होता है प्रजा का सर्वभावेन हितचिन्तक तथा मंगलसाधक। भारतीय धर्म ही राजमूलक होता है, अर्थात् धर्म की व्यवस्था तथा संचालन का उत्तरदायित्व राजा के ही ऊपर एकमात्र रहता है। यदि राजा प्रजा का पालन नहीं करे,तो प्रजा ही एक दूसरे को न खा डालेगी, प्रत्युत वेदत्रयी का भी अस्तित्व लुप्त हो जायेगाऔर विश्व को धारण करने वाला धर्म ही रसातल में डूब जायेगा। राजधर्म के बिगड़ने पर राज्य तथा राष्ट्र का सर्वनाश हो जाताहै। राजनीतिक नेता के लिए महाभारत एक विलक्षण आदर्श उपस्थित करता है, जो आज भी उतने ही सुन्दर रूप से अनुकरणीय तथा ग्राह्य है। भारत कृषि-प्रधान राष्ट्र है। अत: व्यास जी का आग्रह है कि जो नेता स्वयं अपने हाथों कृषि नहीं करता,खेत नहीं जोतता-बोता, उसे नेता बनकर राष्ट्र की समिति में जाने का अधिकार नहीं होता।

न न: समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत्कृषिस् । (उद्योग0 36/31)

ठीक ही है, किसानों का नेता किसान ही हो सकता है। कृषि से अनभिज्ञ, कुर्सीतोड़, बकवादी नेता किसानों का कौन –सा मंगल कर सकता है ?

अध्यात्म तत्व

व्यासजी अध्यात्मशास्त्र की सूक्ष्म बारीकियों में न पड़कर हमें सुखद तथा नियमित जीवन बिताने की शिक्षा देने पर आग्रह करते हैं। मानव का आध्यात्मिक कल्याण इन्द्रिय-निग्रह से ही होता है। मनुष्य इन्द्रियों का दास बनकर पशुभाव को प्राप्त होता है और इन्द्रियों का स्वामी बनकर अपने जीवन को सफल बनाने में समर्थ होता है। एक स्थान पर व्यास की यह सारगर्भित उक्ति है कि वेद का उपनिषद् अर्थात् रहस्य है- सत्य। सत्य का भी उपनिषत् है-- दम और इसी दम-- इन्द्रिय-दमन का-रहस्य है मोक्षा।समग्र अध्यात्म-शास्त्र का यही निचौड़ है (शान्ति0 299/13)-

वेदोस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषद् मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्।।

'करनी बड़ी है कथन से' - व्यासजी की यही मान्य शिक्षा है मानवों के लिए महाभारत में किसी बोध्य ऋषि के द्वारा कही गई यह प्राचीन गाथा इसी तथ्य पर जोर देती है (शान्ति0 178/6) –**उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कन्चन।**

भारतीय संस्कृति आर्जव-ऋजुभाव- स्पष्ट कथन तथा सीधे आचरण को ही मानव-जीवन में नितान्त महत्व देती है। वह जिह्म मार्ग- टेढ़ा रास्ता- 'मनस्यन्यत वचस्यन्यत्' को मृत्यु का रूप बतलाती है तथा प्राणियों को उसके मानने से सदा दूर भागने का उपदेश देती है(शान्ति0 11/4)-

सर्व जिह्मं मृत्युपपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।
एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति।

काल के चक्र से कोई बच नहीं सकता। पाण्डवों की विषय तथा समृद्ध दशाओं के आलोचक की दृष्टि में काल की महिमा अपरिमेय है। काल ही कभी बलवान बनता है और कभी दुर्बल । वही जगत् को अपनी इच्छा से ग्रसता है। इसी चक्र के भीतर यह समग्र विश्व अपनी सत्ता धारण किये हुए है। वह देवनिर्मित मार्ग है जिसे लाख चेष्टा करने पर भी कोई पलट नहीं सकता। मानव जीवन का श्रेयस्कर मार्ग है धर्म का आश्रय लेकर आत्मविजय करना। व्यास जी ने आत्म-साक्षात्कार के लिए बडी सुन्दर उपमा दी है। जिस प्रकार मूंज से सींक को अलग किया जाता है,उसी प्रकार पंचकोशों में अन्तर्निहित चैतन्यरूप आत्मा को भी साधक पृथक् कर साक्षात्कार करता है। आनन्दवर्धन की तो यह स्पष्ट सम्मति है कि महाभारत का मुख्य रस शान्त रस है। नाना विकट प्रपंचों में न लिप्त होकर मानव आत्मवस्वरूप का परिचय पाकर मोक्ष का सम्पादन करे। महाभारत की यही अमूल्य शिक्षा है।

रामायण-महाभारत की तुलना

रामायण और महाभारत की तुलना करने से अनेकआवश्यक तथ्यों का पता चलता है। मुख्य तुलना दो विषयों में की जा सकती है। प्रथम तो उनके वर्णनीय विषय को लेकर और दूसरी उनके रचना-काल को लेकर। रामायण आदिकाव्य माना जाता है और महाभारत इतिहास गिना जाता है। इस पारस्परिक भेद का यह अभिप्राय है कि रामायण के काव्यगत चमत्कार महत्व की वस्तु है। महाभारत में प्राचीनकाल के अनेक प्रसिद्ध राजाओं के इतिवृत्त का वर्णन करना ही ग्रन्थकार का उद्देश्य है। इसीलिए रामायण में राम-रावण की घटना ही सर्वभावेन मुख्य है। अन्य छोटे-मोटे कथानक भी हैं, परन्तु वे प्रधान वृत्त को पुष्ट करने के लिए ही रचित हैं। उधर महाभारत में प्रधान घटना कौरवों तथा पाण्डवों का युद्ध है, पर इसके साथ-साथ प्राचीन काल की अनेक कथाएँ अवान्तर रूप से दी हुई, जो मुख्य घटना से कम महत्व नहीं रखती। दोनों का भौगोलिक विस्तार भिन्न-भिन्न है। रामायण में जिस भारतवर्ष की चर्चा है उसकी दक्षिणी सीमा विन्ध्य और दण्डक है, पूर्वी सीमा विदेह है तथा पश्चिमी सीमा सुराष्ट्र है; परन्तु महाभारत के समय आर्यावर्त का विशेष विस्तार दीख पड़ता है।

पूर्वी सीमा गंगासागर का संगम है, दक्षिण में चोल तथा मालाबार प्रान्तों की सत्ता है। इतना ही नहीं, लंका के भी अधिपति उपहार लेकर लेकर स्वयं उस यज्ञ में उपस्थित होते हैं। फलत: भारतवर्ष का भौगोलिक विस्तार उस युग में रामायण की अपेक्षा अत्यधिक है। दोनों के स्वरूप में भी पर्याप्त अन्तर है। रामायण में एक ही कवि की कोमल लेखनी ने अपना चमत्कार दिखलाया है। कविता में समरसता, शब्द और अर्थ का मंजुल सामन्जस्य है, जिससे यह स्पष्ट है कि इसके रचना का श्रेय किसी एक ही व्यक्ति को है; परन्तु महाभारत के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह तो अनेक शताब्दियों के साहित्यिक प्रयासों का फल है। धीरे-धीरे अपने अल्पकलेवर से बढता हुआ वह लक्षश्लोकात्मक विशालकाय ग्रन्थ के रूप में आ गया है। रामायण के लेखक की चर्चा कहीं नही है, प्रत्युत लव तथा कुश के द्वाराउसके गाये जाने के तथ्य से हम परिचित है 1, परन्तु महाभारत लिपिबद्ध किया गया ग्रन्थरत्न है,जिसके लिपिबद्ध करने का श्रेय स्वयं गणेशजी को प्राप्त है। व्यास जी बोलते जाते थे और गणेशजी उसे लिखते जाते थे।

रामायण और महाभारत में किसकी रचना पहले हुई ? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। गत शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डाक्टर वेबर ने सर्वप्रथम यह कहना प्रारम्भ किया कि रामायण की अपेक्षा महाभारत की रचना पहले हुई। रामायण में सुन्दर पदविन्यास तथा सुबोध रचना को वे अर्वाचीनता मानते थे। भारत के भी कतिपयविद्वानों ने इसी मत की घोषणा की, परन्तु भारतीय परम्परा उक्त मत के अत्यन्त विरूद्ध है। वाल्मीकि आदिकवि और महाभारत के रचयिता व्यास उनके पश्चाद्वर्ती द्वितीय कवि हैं। युग के हिसाब से भी अन्तर पड़ता है। वाल्मीकि त्रेतायुग में होने वाले रामचन्द्र के समकालिक हैं और व्यास द्वापरयुग में उत्पन्न होनेवाले पाण्डवों के समसामयिक हैं। इतना ही नहीं, दोनों ग्रन्थों के

अनुशीलन से स्पष्ट पता चलता है कि कालक्रम में वाल्मीकि-रामायण महाभारत से पहले की रचना है। इसके पोषक प्रमाण मुख्यत: नीचे दिये जाते है:--

(1) महाभारत के पात्रों के चरित्र में तथा घटनाओं में व्यवहारिकता का पुट है। जुआ खेलना, खेल में हार जाना, राज्य का न मिलना और उसके लिए युद्ध करना आदि घटनायें व्यवहार तथा विश्वास के क्षेत्र से बाहर नहीं है; पर रामायण में ऐसी घटनाएँ हैं जिन पर साधारण मनुष्य अपनाविश्वास नहीं जमा पाता। सन्तान के लिए पुत्रेष्टि याग करना रीछ और बानरों की सहायता से लड़ना, समुन्द्र के ऊपर पत्थर का विराट पुल बॉधना, रावण का दश सिर होना आदि घटनाएँ मानव-संस्कृति की उस प्राथमिक दशा की ओर करती हैं जब आश्चर्यजनक घटनाओं में विश्वास करना कोई अस्वाभाविक बात न थी।

(2) रामायण में आर्य-सभ्यता अपने विशुद्ध रूप में चित्रित की गई है। उसमें म्लेच्छों का, जो सम्भवत: भिन्न वर्ग तथा संस्कृति के अनुयायी थे, तनिक भी सम्पर्क नही दीख पड़ता, परन्तु महाभारत में म्लेच्छों का सम्पर्क पर्याप्त रूप से विद्यमान है। दुर्योधन की आज्ञा से जिस पुरोचन नामक मन्त्री ने लाख (लाक्षा) का घर बनाया था, वह म्लेच्छ ही था। महाभारत के युद्ध में दोनों ओर से लड़ने वाले अनेक म्लेछ राजाओं के भी नाम मिलते हैं। इतना ही नहीं, विद्वान लोग म्लेच्छो की भाषा से भी परिचत थे। विदुर ने इसी म्लेच्छ-भाषा में युधिष्ठिर को लाख के घर की घटना की सूचना पहले ही सभा में दी थी। उक्त भाषा का प्रयोग इसलिए किया गया कि अन्य सभासद् इसकों समझ न सकें।

(3) भौगोलिक दृष्टि से विचार करने पर भी महाभारत पीछे लिखा गया मालूम होता है। रामायण की रचना के समय में दक्षिण भारत में अनार्य जंगली जातियों का ही निवास था। आर्यो की सभ्यता विन्ध्य पर्वत तक ही सीमित थी, परन्तु महाभारत के समय में दक्षिण भारत राजनीतिक दृष्टि से व्यवस्थित सुशासित तथा सभ्य दीख पड़ता है। भीष्मपर्व में दक्षिण भारत का यह राजनीतिक परिवर्तन सूचित करता है कि महाभारत की रचना रामायण से पीछे हुई।

(4) महाभारत युद्ध में युद्धकला की विशेष उन्नति दिखाई पडती है। द्रौपदी के स्वयंबर में सीता-स्वयंवर के समान केवल एक धनुष को तोड़ देना ही वीरत्व का मापदण्ड नहीं है, प्रत्युत एक विशिष्ट प्रकार से लक्ष्य भेद करना वीरता की कसौटी है। लंकायुद्ध में योद्धागण परस्पर केवल पत्थरों और वृक्षों से प्रहार करते हैं, परन्तु महाभारत युद्ध में सैनिक लोग विशिष्ट सेनापति की देख-रेख में लड़ते हैं। व्युह की रचना इस युद्धकी महती विशेषता है, जिसमें अल्पसंख्यक सैनिक बहुसंख्यक सेना के आक्रमण को रोकने में समर्थ होता हैं। युद्धकला का यह महाभारत –कालीन विकास इस बात को प्रमाणित कर रहा है कि महाभारत बाद की रचना है।

(5) दोनों की सामाजिक दशा में विशेष अन्तर है रामायण का समाज आदर्शवाद कर प्रतिष्ठित है। पिता कुटुम्ब का नेता तथा पोषक है। राम आदर्श पुत्र है, भरत भ्रातृत्व के गुणों के आगार हैं, सुग्रीव मित्रता की कसौटी हैं। ऊपर महाभारत की सामाजिक दशा में

आदर्शवाद के लिए स्थान नहीं है। भरत के समान भीम अपने पितृतुल्य जेठे भाई के आदेश का पालन करना अपना कर्तव्य नहीं मानते। यदि धर्मराज संधि करने के इच्छुक हैं, तो वे उनका घोर विरोध(अश्वत्थामा द्वारा) करने पर तुले हैं। विजयकी सिद्धि के लिए चोरी करना या असत्य भाषण किसी प्रकारका पाप नहीं माना जाता था (अश्वत्थामा हतौ नरो वा कुंजरो वा)।

(6) रामायण में नैतिक भावना अपने ऊँचे आदर्श पर प्रतिष्ठित है, परन्तु महाभारत में यह भावना ह्रास पाकर नीचे खिसकने लगी है। मैथिली तथा द्रौपदी के चरित्र की तुलना इसे स्पष्ट करती है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान सीता को अपनी पीठ पर बैठा कर राम के पास चलने का प्रस्ताव करते हैं, परन्तु सीता पर-पुरूष के शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती हैं। अत: वह इसे तिरस्कार कर देती हैं। रावणवध के अनन्तर सीता कठिन अग्नि-परीक्षा में तप्त होकर अपने पावन चरित्र को सिद्ध करती हैं। महाभारत की द्रौपदी काम्यक वन में जयद्रथ के द्वारा हरण की जाती हैं, परन्तु उसका पुनर्ग्रहण विना किसी रोक-टोक के धीरे से कर लिया जाता है।

(7) रामायण में महाभारत की घटनाओं तथा पात्रों का उल्लेख तक नही है, परन्तु महाभारत रामायण की कथा तथा पात्रों से पूरी तरह परिचित है। वनपर्व के तीर्थ-यात्रा प्रसंग में श्रृ ङ्गवेरपुर' (प्रयाग जिले का सिंगरामऊ, वन पर्व85/65) तथा गोप्रतार' (फैजाबाद में सरयू का गुप्तार घाट , वनपर्व 85/70) तीर्थ में गिने गये हैं, क्योंकि पहले स्थान पर राम ने गंगा पार किया और दूसरे पर वे अपनी प्रजाओं के साथ भूलोक से स्वर्ग में चले गये। वनपर्व के अठारह अध्यायों में (अ0 274-291) रामोपाख्यान पर्व है, जिसमें रामचन्द्र की कथा संक्षेप से वर्णित है। इस उपाख्यान में वाल्मीकीय रामायण के श्लोक भी ज्यों के त्यों रखे गये हैं। उपमाएँ तथा कल्पनाएँ भी वाल्मीकि से ली गई है।

रामायण के श्लोकों की समता केवल रामोपाख्यान में ही उपलब्ध नहीं होती, प्रत्युत महाभारत के अन्य पर्वो में भी यह समता तथा निर्देश नितान्त सुस्पष्ट हैं। उदाहरणार्थ – माया सीता के मारते समय इन्द्रजीत ने हनुमानजी से जो वचन कहे थे, वे ही वचन द्रोणपर्व में भी अक्षरश: प्राप्त होते हैं।

न हन्तव्या: स्त्रिय:इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।
पीडाकरममत्रिणां यत्तु कर्तव्यमेव तत्।। (युद्ध0 81-28)

महाभारत के द्रोण पर्व में इसका उल्लेख वाल्मीकि के नाम से है-

अति चायं पुरा गीत: श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्या: स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।।
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत्।।

इन प्रमाणों के अनुशीलन से किसी भी निश्पक्ष आलोचक को भारतीय परम्परा की सत्यता पर अविश्वास नहीं हो सकता कि रामायण कालक्रम से महाभारत से पूर्व की रचना है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये –

1.द्वैपायन किसे कहा जाता है।

क. वाल्मीकि ख. **व्यास** ग. कृष्ण घ. बलराम

2. शतसाहस्री संहिता किसे कहते है।

क. रामायण ख. **महाभारत** ग. सनतकुमार संहिता घ. पुराण

3. महाभारत का प्राचीन नाम है।

क. **जय** ख. महाभारत ग. संहिता घ. कोई नही

4. भारत के साथ महाभारत का नाम किस ग्रन्थ में मिलता है।

क. गौतम धर्मसूत्र ख. पारस्कर गृह्यसूत्र ग. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** घ. कोई नहीं

5. महाभारत में कितने श्लोक है।

क. **1 लाख** ख. 2 लाख ग. 3 लाख घ. 4 लाख

6. महाभारत के उपाख्यानों का सम्बन्ध सर्वाधिक किस वंश से है।

क. **भृगु** ख. अंगिरा ग. वशिष्ठ घ. अत्रि

7. यूनानी राजदूत मेगास्थनीज किसके कार्यकाल में आया था।

क. समुद्रगुप्त ख. विष्णुगुपत ग. **चन्द्रगुप्त** मौर्य घ. रामगुप्त

8. महाभारत के खण्डों को क्या कहा जाता है।

क. अध्याय ख. **पर्व** ग. रत्न घ. मरीचि

2.5 सारांश

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आपको ज्ञात हुआ कि रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रन्थों में जिस प्रकार फूट निकलता है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का इतिहास –वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मग्रन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। रामायण और महाभारत दोनों में बहुत कुछ अन्तर है। फिर भी रामायण में वर्णित तथ्यों के समानान्तर उनके चर्चायें महाभारत में कई पर्वों में पायी जाती है। महाभारत के अनेक पर्वों में रामायणकालीन घटनाओं की वस्तु स्थिति का परिचय प्राप्त है। यह ग्रन्थ जय भारत और महाभारत के नाम से क्रमश: पूर्णता को प्राप्त हुआ। इसमें कुल श्लोकों की संख्या 100000 मानी गयी है। इसकी पुष्पिका में व्यास ने धर्मार्थ काम मोक्ष आदि का वर्णन किया है।

2.6 शब्दावली

1. स्वर्गारोहण – स्वर्ग पर पहुँचना।
2. शरशय्या - बाणों से बनाये हुये शयन स्थान को कहा जाता है।
3. मत्स्य - मछली
4. अनन्तर - बाद में
5. शतसाहस्री – शत का अर्थ होता है सौ तथा सहस्र का अर्थ है एक हजार। अंकानां वामतो गति के अनुसार सौ हजार होकर एक लाख अर्थ कहलाता है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख. **व्यास** 2. ख. महाभारत 3. क. **जय** 4. ग. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** 5. क. **1 लाख** 6. क. भृगु 7. ग. **चन्द्रगुप्त** मौर्य 8. ख. पर्व

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाभारत के पर्वों का नामोल्लेख कर उनके विषय में संक्षिप्त लेखन करें।
2. व्यास का परिचय देते हुये व्यासोपाधि पर विस्तृत चर्चा कीजिये।
3. महाभारत के अंगीरस पर एक निबन्ध लिखिये।

इकाई 3 . कालिदास- परिचय, कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 कालिदास का परिचय
3.4 कृतित्व
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के इतिहास वर्णन क्रम से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने रामायण एवं महाभारत जैसे विशालकाय साहित्यिक ग्रन्थों का संक्षिप्त अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में परवर्ती कवियों की गणना श्रृंखला में प्रथम स्थान पर गिने जाने वाले कवि कालिदास का परिचय एवं उनके कृतियों का विस्तृत किन्तु संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के कविकुलगुरू के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये नाटक महाकाव्य तथा ज्योतिष परम्परा में भी निष्णात माने गयें है। इन्होंने कुल सात ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें तीन महाकाव्य, तीन नाटक और एक ऋतुसंहार नाम का ग्रन्थ रचा था। इसके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित ज्योतिविदाभरणम् नाम का इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन रचनाओं में जो वैशिष्ट्य है उसी के कारण वर्तमान में भी कालिदास की उतनी ही प्रतिष्ठा है जितनी पूर्व में थी।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप कालिदास रचित ग्रन्थों के संक्षिप्त वर्णन के आधार पर उनकी नाटकीय तथा अन्य साहित्यिक समस्त शैलियों, वर्णन प्रकारों का समुचित प्रयोजन बता सकेंगे। साथ ही यह भी समझा सकेंगे कि मूल रूप से कालिदास किस रीति के समर्थक कवि थे

3.2 उद्देश्य

इस इकाई में वर्णित कालिदास का परिचय एवं उनके ग्रन्थों की विशेषताओं का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे कि –

- कालिदास और दीपशिखा कालिदास में क्या भेद है।
- कालिदास का परिचय और समय क्या है।
- मुख्य रूप से कालिदास को किस राजा से सम्बन्धित माना गया है।
- कालिदास के महाकाव्यों की क्या विशेषतायें है।
- नाटकों में कालिदास के नाटक श्रेष्ठ क्यों है।
- उपमा के लिये कालिदास क्यों प्रसिद्ध है।

3.3 कालिदास का परिचय

कालिदास

कालिदास भारतीय तथा पश्चात्य दृष्टियों में संस्कृत के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। नाट्यकला की सुन्दरता निरखिये, काव्य की वर्णनछटा देखिये, गीतिकाव्य के सरस हृदयोद्गारों को पढिये, कालिदास की प्रतिभा सर्वातिशायिनी है। उनके काव्यों की जितनी ख्याति निश्चित है, उनकी जीवनी तथा काल-निरूपण उतना ही अनिश्चित है। कालिदास की जन्मभूमि के विषय में बंगाल तथा कश्मीर के नाम लिये जाते है परन्तु यह अभी तक

अनिर्णीत ही है। कवि ने उज्जयिनी के लिए विशेष पक्षपात दिखलाया है, जिससे यही इनकी जन्मभूमि प्रतीत होती है। मेघदूत (1/29) में यक्ष रास्ता टेढा होने पर भी 'श्रीविशाला' विशाला (उज्जयिनी) को देखने के लिये मेघ से आग्रह करता है। उज्जयिनी के विशाल महलों और रमणियों के कुटिल-कटाक्षों को देखने से यदि वह वन्चित रह गया तो उसका जीवन ही निष्फल है। कालिदास ने अवन्ती प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का सूक्ष्म वर्णन मेघदूत में किया है- वहॉ की छोटी-छोटी नदियों का भी नाम – निर्देश किया है तथा वर्णन दिया है। उज्जयिनी के प्रति उनके विशेष पक्षपात तथा सूक्ष्म भौगोलिक परिचय के आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास वहीं के रहने वाले थे।

कालिदास नि:सन्देह शैव थे। मेरी दृष्टि में वे उज्जयिनी के विख्यात ज्योतिर्लिङ्ग 'महाकाल' के उपासक थे। मेघदूत में महाकाल की उपासनाके प्रति उनका आग्रह इसका आधार माना जा सकता है। महाकालकी शोभा का वर्णन कर यक्ष मेघ से कहता है कि उज्जयिनी में तुम किसी समय चहुँचों, परन्तु सूर्य के अस्त होने तक तुम्हें वहॉ ठहराना होगा। प्रदोष-पूजा के अवसर पर तुम अपना स्निग्ध गम्भीर घोष करना जो महाकाल की पूजा में नगाड़े का काम करेगाऔर तुम्हें अशेष पुण्यों का भाजन बना देगा (मेघ0 श्लोक 35)। इतनाही नहीं, कालिदास मन्दिर में पूजार्थ नियत की गई देवदासियों से परिचय रखते हें। यह प्रथा दक्षिण के मन्दिरों में आज भी प्रचलित है, यद्यपि उत्तर भारत के मन्दिरों में यह विशेष रूप से नही दीख पड़ती। उज्जयिनी उदयन तथा वासवदत्ता के उदात्त प्रेम की क्रीडास्थली थी। फलत: कालिदास ने इस कथा से सम्बद्ध छोटी-छोटी धटनाओं तथा उनके नियत स्थानों का भी उल्लेख कर नगरी के प्रति पूर्ण पक्षपातप्रदर्शित क्रिया है, जो उसे कवि की जन्मभूमि होने का गौरव प्रदान करने में सचेष्ट है।

स्थितिकाल- भारतीय जन-श्रुति के आधारपर कालिदासराजा विक्रमादित्य के नव-रत्नों के मुखिया थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी विक्रम के साथ रहने की बात सूचित होती है। विश्वविख्यात शकुन्तला का अभिनय किसी राजा की – सम्भवत: विक्रम कि – 'अभिरूपभुयिष्ठा' परिषद् में ही हुआ था। 'विक्रमोर्वशीय' में पुरूरवा के नामक होने पर भी विक्रम का नामोल्लेख नाटक के नाम में है तथा 'अनुत्सेक: खलु विक्रमालङ्कार' आदि वाक्य इस सिद्धान्त की पुष्टिकर रहे है कि कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था। 'रामचरित' महाकाव्य के 'ख्यातिकामपि कालिदासकवयो नीता: शकारतिना' आदि पद्यो से भी इसी सम्बन्ध की पुष्टि हो रही है। अत: एव जब तक इसके विरूद्ध कोई प्रमाण न मिले, तब तक यह मानना अनुचित नहीं होगा कि कालिदास राजा विक्रम की सभा के रत्न थे। कालिदास ने शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र को अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक का नायक बनाया है। अत: वे उसके (विक्रम-पूर्व द्वितीय शतक के) अनन्तर होगे। इधर सप्तम् शताब्दी में हर्षवर्धन के सभा –कवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में कालिदास की कविता की प्रशस्त प्रशंसाकी है। अत: कवि का समय विक्रमपूर्व द्वितीय शतक से लेकर विक्रम की सप्तम् शतक के बीच में कहीं होना चाहिए। कालिदास के समय विषय में प्रधानतया

तीन मत है-

पहला मत- कालिदास को षष्ठ शतक का बतलाता है।

दूसरा मत- गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति मानता है।

तीसरा मत- विक्रम सं0 के आरम्भ में इनका समय बतलाता है।

षष्ठशतक में कालिदास - भारतीय इतिहास में विक्रम उपाधिवाले चार राजाओं का उल्लेख पाया जाता है, जिनके समसामयिक होने से कालिदास का भी समय भिन्न-भिन्न सदियों में माना गया है। डॉक्टर हार्नली का मत है कि यशोधर्मन् ने, जिसने कहरूर की लड़ाई में हूणवंश के प्रतापी राजा मिहिरकुल को बालादित्य नरसिंह गुप्त की सहायता से परास्त किया था, 'विक्रमादित्य' की उपाधि भी ग्रहण की थी। अपनी इस महत्वपूर्ण विजय के उपलक्ष्य में उसने नवीन संवत् चलाया, जो विक्रम के नाम से व्यवहृत हुआ, परन्तु इसे 600 वर्ष पूर्व , अर्थात् 58 ईस्वी की विजय-घटना की यादगार में उसने अपने नवीन संवत् के 600 वर्ष अर्थात् 58 ईस्वी पूर्व से स्थापित होने की बात प्रचारितकी विक्रम संवत् की यह नवीन कल्पना डॉक्टर फर्गुसन ने की थी । हार्नली ने इसका उपयोग कालिदास के समय-निरूपण के लिए किया। उसने दिखलाया है कि रघु का दिग्विजय यशोधर्मन् की राज्यसीमा से बिल्कुल मिलता-जुलता है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री [2] ने अनेक कौतुकपूर्ण प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालिदास भारवि के अनन्तर छठी सदी में विद्यमान थे।

इस मत का खण्डन –परन्तु कालिदास को इतना पीछे मानना उचित नहीं प्रतीत होता है। हूणों को पराजित करने पर भी यशोधर्मन् 'शकाराति' - शकों का शत्रु नही कहा जा सकता। न उसके शिलालेखों से नवीन संवत् के स्थापना की घटना सच्ची प्रतीत होती है। विक्रम संवत् की स्थापना छठी सदी में यशोधर्मन् के द्वारा मानना ज्ञात इतिहास पर घोर अत्याचार करना है; क्योंकि 'मालव संवत्' के नाम से यह संवत् अति प्राचीन काल में भी प्रसिद्ध था। 473 ई0 के कुमारगुप्त की प्रशस्ति के कर्ता वत्सभट्टि कि रचना में ऋतुसंहार के कितने ही पद्यों की झलक दीख पड़ती है। ऐसी दशा में कालिदास को पॉचवीं सदी के अनन्तर मानना अनुचित है। अत: इस मत को प्रामाणिक मानकर कितने ही भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानों ने गुप्त नरेशों के उन्नत समय में कालिदास की स्थिति बतलाई है।

गुप्तकाल में कालिदास- गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति माननेवाले विद्वानों में भी कुछ –कुछ भेद दीख पड़ता है। पूना के प्रोफेसर के0बी0 पाठक की सम्मति में कालिदास स्कन्दगुप्त 'विक्रमादित्य' के समकालीन थे, परन्तु डॉक्टर रामकृष्ण भण्डारक, साहित्याचार्य पं0 रामावतार शर्मा तथा अधिकांश पश्चिमीविद्वान् गुप्तों में सबसे अधिक प्रभावशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदासका आश्रयदाता मानते हैं।

(क) पाठक ने काश्मीरी टीकाकार वल्लभदेव के निम्नलिखित श्लोक के पाठ को प्रामाणिक मानकर पूर्वोक्त सिद्धान्त निश्चित किया[2] (रघु0 4/67)

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेश्टनै:।

दुधुवुर्वाजिन: स्कन्धॉल्लग्नकुङ्कमकेसनान्।।

इस पद्य के 'सिन्धु' शब्द के स्थान पर वल्लभदेव ने 'वंक्ष् पाठ माना है। 'वंक्षू' शब्द पाठक की सम्मति में OXUS(आक्सस) शब्द का संस्कृतीकरण है। अत: इस पाठ को प्रामाणिक मानने से यह कहना पड़ता है कि रघु ने हूंणो को आक्सस नदी (जो पामीर से निकलकर अरब सागर में गिरती है) के किनारे उनके भारत आगमन के पहले ही हराया था। यह घटना 455 ई0 के पूर्व की हो सकती है; क्योंकि उस वर्ष स्कन्दगुप्त के प्रबल प्रताप के सामने हार मान भग्न-मनोरथ होकर हूंणों को लौटना पड़ा था। अत: रघुवंश को कालिदास की प्रथम रचना मानकर पाठक ने उन्हें स्कन्दगुप्त का समकालीन माना है। विजयचन्द्र मजुमदार ने कुछ अन्य प्रमाण देकर इन्हें कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त दोनों के समय में मानाहै।

(ख) पश्चिमी विद्वान् शकों को भारत से निकाल बाहर करने वाले, विक्रमादित्य उपाधि धारण करने वाले, चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में (जब भारत में चारों ओर शान्ति विराजमान थी और जो भारतीय कलाकौशल के पुनरून्नति का काल माना जाता है) कालिदास को मानते हैं। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु का दिग्विजय समुद्रगुप्त की विजय से सर्वथा मिलता-जुलता है। रघुवंश में वर्णित शान्ति[3] का समुचित काल चन्द्रगुप्त का ही समय था। इसके सिवाय इन्दुमती –स्वयंवर में उपस्थित मगध राजा के लिए जो उपमा या विशेषण प्रयुक्त किये गये है उनसे भी 'चन्द्रगुप्त' नाम की ध्वनि निकलती है, परन्तु गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति बताना ठीक नहीं, क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही प्रथम विक्रमादित्य नहीं थे। जब इनसे भी प्राचीन मालवा में राज्य करने वाले विक्रम का पता इतिहास से चलता है, तब कालिदास गुप्तकाल में कैसे माने जा सकते है ?

प्रथम शती में कालिदास- (क) ऐतिहासिक खोज से ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में शकों को परास्त करने वाले, विद्वानों को विपुल दान देने वाले उज्जयिनी- नरेश राजा विक्रमादित्य के अस्तित्व का पता चलताहै। राजा हाल की 'गाथासप्तशती' में (रचनाकाल प्रथम शताब्दी) 'विक्रमादित्य' नामक एक प्रतापी तथा उदार शासक का निर्देश है, जिसने शत्रुओं पर विजय पाने के उपलक्ष्य में भृत्यों को लाखों का उपहार दियाथा। जैन ग्रन्थों से इस बात की पर्याप्त पुष्टि होती है। मेरूतुङ्गाचार्य विरचित 'पद्यावली' से पता चलता है कि उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों से उज्जयिनी का राज्य लौटा लिया था। यह घटना महावीर-निर्वाणके470 वें वर्ष में (527-470=57 ई0 पूर्व) हुई थी। इसकी पुष्टि प्रबन्धकोश तथा शत्रुन्जयमहात्म्य से भी होती है।

प्राचीन काल में 'मालव' नामक गणों का विशेष प्रभुत्व था। ईस्वी पूर्व तृतीय शतक में इसने 'क्षुद्रक' गण के साथ सिकन्दर का सामना कियाथा, पर विशेष सहायता न मिलने से पराजित हो गया था। यही मालव जाति ग्रीक लोगों के सतत आक्रमण से पीडित होकर राजपूताने की ओर आई और मालवा में ईस्वी पूर्व प्रथम द्वितीय शताब्दी में अपना प्रभुत्व जमाया। यह गणराज्य था और विक्रमादित्य इसी गणतन्त्र के मुखिया थे। शकों के

आक्रमण को विफल बनाकर विक्रम ने 'शकारि' की उपाधि धारण की और अपने मालवगण को प्रतिष्ठित किया। इसलिए इस संवत् का 'मालवगण-स्थिति' नाम पड़ा था। गणराज्य में व्यक्ति की अपेक्षा समाज का विशेष महत्व होता है। अत: यह संवत् गणमुख्य के नाम पर ही अभिहित न होकर गण के नाम पर 'मालव-संवत्' कहलाता था। अत: ई0 पू0 प्रथम शतक में विक्रम नाम-धारी राजा या गणमुखिया का परिचय इतिहास से भली-भाँति लगता है। इन्हीं की सभा में कालिदास की स्थिति मानना सर्वथा न्यायसंगत है।

निष्कर्ष – अपने आश्रयदाता 'विक्रम' की सूचना कालिदास ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर दी है। विक्रमोर्वशीय त्रोटक के अभिधान में नायक के स्थान पर 'विक्रम' शब्द का प्रयोग विक्रम के साथ कालिदास का घनिष्ठ सम्बन्ध सूचित करता है। अभिज्ञानप्रस्तावना में रसभाव-विशेष –दीक्षा-गुरू विक्रमादित्य साहसाङ्क नाम्ना निर्दिष्ट किये गये है तथा भरत-वाक्य में 'गणशतपरिवर्तैरेवमन्योन्यकृत्यै:' में राजनीतिक अर्थ में व्यवहृत 'गण' शब्द – गणराष्ट्र' का सूचक स्वीकृत किया गया है। प्राय: अभी तक विक्रमादित्य एकतान्त्रिक राजा ही समझे जाते रहे हैं, परन्तु ऊपर निर्दिष्ट हस्तलेख के प्रामाण्य पर वे गणराष्ट्र (मालव गणराष्ट्र) के गणमुख्य प्रतीत होते हैं। विक्रमादित्य उनका व्यक्तिगत अभिधान था (कथासरित्सागर का पोषक साक्ष्य है) तथा 'साहसाङ्क' उनकी उपाधि थी। उन्होने शकों को उनके प्रथम बढ़ाव में पराजित कर इस क्रान्तिकारी घटनाके उपलक्ष्य में 'मालवगण-स्थिति' नामक संवत् का प्रवर्तन किया, जो आगे चलकर 'विक्रमसंवत्' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गणराष्ट्र में व्यक्तिविशेष का प्राधान्य नहीं रहता। इसीलिए यह गण के नाम से प्रसिद्ध था। चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा समस्त गणराष्ट्र उच्छिन्न कर दिये गये; फलत: अष्टम -नवम शती में सारे देश में निरंकुश एकतन्त्र की स्थापना हो जाने पर गणराष्ट्र की कल्पना ही विलीन हो गई। तभी गणमुख्य का नाम इससे सम्बद्ध कर दिया गया है और यह संवत् 'विक्रम' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

विक्रमादित्य के गुप्त सम्राट् होने के विरूद्ध निम्नलिखित कठोर आपत्तियॉ हैं-

(1) गुप्त सम्राटों का अपना वंशगत संवत् है, उनके किसी उत्कीर्ण लेख में मालव अथवा विक्रम संवत् का उल्लेख नहीं है। जब उन्होने ही विक्रम संवत् का प्रयोग नहीं किया, तब जनता उनके गौरव के अस्त होने पर उनके नाम से इसे 'विक्रम संवत् ' क्यों कहने लगेगी?

(2) गुप्त सम्राट पाटलिपुत्रनाथ थे, किन्तु विक्रमादित्य उज्जयिनीनाथ थे, अनुश्रुतियों के आधार पर ही नहीं प्रत्युत रघुवंश (6/26) के आधार पर भी। यहॉ इन्दुमती-स्वयंवर में अवन्तिनाथ को 'विक्रमादित्य' होने का गूढ संकेत विद्यमान है।

(3) उज्जयिनी के विक्रम का व्यक्तिगत अभिधान ही 'विक्रमादित्य' था , उपाधि नहीं। कथासरित्सागर में लिखा है कि उनके पिता ने जन्म -दिन को ही शिवजी के आदेशानुसार उनका नाम 'विक्रमादित्य' रखा, अभिषेक के समय की यह उपाधि नहीं है। इसके विरूद्ध किसी गुप्त सम्राट् का नाम विक्रमादित्य नहीं था। चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त के विरूद्ध क्रमश: 'विक्रमादित्य' तथा 'क्रमादित्य' (कहीं-कहीं विक्रमादित्य भी) थे। समुद्रगुप्त

की यह उपाधि नहीं थी। कुमारगुप्त की उपाधि थी ' महेन्द्रादित्य', कोई नाम नहीं था। उपाधि होने से पहिले यह आवश्यक है कि उस नाम का कोई पराक्रमी लोकप्रसिद्ध व्यक्ति रहा हो जिसके नाम का अनुकरण पिछले युग के लोग करते है। गुप्त राजाओं की 'विक्रमादित्य' उपाधि अपनी पूर्व किसी लोकख्यात व्यक्ति की सत्ता की परिचायिका है । अत: विक्रमादित्य की स्थिति प्रथम शती में गुप्तों से पूर्व मानना नितान्त समुचित है। इसी विक्रम की सभा के रत्न कालिदास थे।

(ख) बौद्ध कवि अश्वघोष का समय निश्चित है। कुषाण -नरेश कनिष्क के समकालीन होने से उनका समय ई0 सन् प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनके तथा कालिदास के काव्यों में अत्यधिक साम्य है। कथानक की सृष्टि, वर्णन की शैली, अलंकारों का प्रयोग, छन्दों का चुनाव –आदि अनेक विषयों में कालिदास का प्रभाव अश्वघोष पर पड़ा है । अश्वघोष प्रधानत: सर्वास्तिवादी दार्शनिकथे। काव्य की ओर उनकी अभिरूचि का होना तथा उसे धर्म प्रचार का साधन मानना काव्यकला के उत्कर्ष का द्योतक है (सौन्दर्यनन्द 18/63) । और यह उत्कर्ष कालिदास के प्रभाव का ही फल है। बुद्ध चरित में अश्वघोष में कालिदास के बहुत से श्लोकों का अनुकरण किया है। रघुवंश के सातवें सर्ग में (श्लोक 5-15) कालिदास ने स्वयंवर से लौटने पर अज को देखने के लिए आने वाली उत्सुक स्त्रियोंका बड़ा ही अभिराम वर्णन किया है। अश्वघोष ने बुद्धचरित (तृतीय सर्ग, 13-24 पद्य) में ठीक ऐसे ही प्रसंग का वर्णन किया है। कुमारसम्भव मे भी ये ही पद्य मिलते हैं। यदि कालिदास ने इसे अश्वघोष के अनुकरण पर लिखा होता, तो वे दो बार इसका प्रदर्शन कर अपना ऋण नितान्त अभिव्यक्त नहीं करते, उसे छिपाने का प्रयत्न करते । कालिदास की भाव-सुन्दरता अश्वघोष के द्वारा सुरक्षित न रह सकी। तुलना करने से कालिदास का समय अश्वघोष से प्राचीन प्रतीत होता है। अत: कालिदास का समय ईस्वी पूर्व प्रथम शतक में ही मानना युक्तियुक्त है।

(ग) शाकुन्तल में सूचित सामाजिक तथा आर्थिक दशा का अनुशीलन सूचित करता है कि कालिदास बौद्ध धर्म से प्रभावित उस युग के कवि थे जब हिन्दू देवी -देवताओं के विषय में श्रद्धाविहीन विचार प्रचलित थे। कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तलम् की नान्दी में भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों का वर्णन किया है। इस नान्दी में 'प्रात्यक्षभि:' शब्द का प्रयोग कर कवि ने तत्कालिन देवता –विषयक अविश्वास को दूर करने का प्रयत्न किया है। जिस शिव की अष्टमूर्तियों का हमें प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है- जिनका साक्षात्कार हमें अपनी ऑखों से हो रहा है, उन देवता के विषय में अश्रद्धा कैसे टिक सकती है? अविश्वास कैसे रह सकता है? इसी प्रकार षष्ठ अंक में कालिदास ने कर्तव्य-कर्म होने के कारण यज्ञयागादि का विधान ब्राह्मण के लिए आवश्यक बतलाया है। बौद्धों ने हिंसापरक होने के कारण यज्ञो की भरपेट निन्दा की, परन्तु शकुन्तला में एक पात्र कहता है कि क्या यज्ञों में पशु मारने वाले क्षेत्रिय का हृदय दयालु नहीं होता? कुल-परम्परागत धर्म का परित्याग क्या कभी श्लाघनीय है? अतएव यज्ञों का अनुष्ठान सर्वदा श्रेयस्कर है; परन्तु उसके हिंसापरक होने पर भी

याज्ञिक ब्राह्मणों का हृदय कोमल होता है-

सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत् कर्म विवर्जनीयकम्।
पशुमारण-कर्मदारूण: अनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रिय: ।।

यहाँ कवि ने बौद्ध धर्म के कारण यज्ञों के विषय में होने वाली निन्दा या अश्रद्धा को दूर करने का उद्योग किया है। अत: कालिदास का जन्म उस समय में हुआ था, जब बौद्ध धर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ती जा रही थी तथा ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय हो रहा था। यह समय ब्राह्मणवंशी शुंगनरेशो (द्वितीय शतक विक्रम पूर्व) के कुछ ही पीछे होना चाहिये। अत: विक्रम संवत् के प्रथम शतक में कालिदास को मानना सर्वथा न्यायसंगत प्रतीत होता है।

(घ) कालिदास को प्रथम शताब्दी में रखने के लिए अन्य भी प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं-

(1) कालिदास ने रघुवंश के षष्ठ सर्ग (श्लोक 36) में 'अवन्तिनाथ' का वर्णन करते समय 'विक्रमादित्य' विरूद का संकेत किया है। कथासरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य मालवगण के संस्थापक, काव्यकला के प्रेमी, शैव थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी उनके शैव होने का संकेत मिलता है। फलत: उनके विक्रमादित्य के सभापण्डितहोने की अधिक सम्भावना है, न कि वैष्णव मतावलम्बी परमभागवत गुप्तनरेशों की सभा में।

(2) रघुवंश के षष्ठ सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर के प्रसङ्ग में पांडय नरेश का वर्णन किया गया है (श्लोक 59-64)। चतुर्थ शती में पाण्डवों का राज्य समाप्त हो गया था, परन्तु प्रथम शती में उनका राज्य विद्यमान था। कालिदास ने पाण्डव नरेश की 'उरगपुर' राजधानी बतलाया है, जो 'उरियाउर' का संस्कृत नाम है। पाण्डव नरेशों की यही राजधानी थी।

3.4 कृतित्व

काव्यग्रन्थ

कालिदास की सच्ची रचनाओं का निर्णय करना आलोचकों के लिए एक दुष्कर कार्य है, क्योंकि कालिदास की काव्य-जगत् में ख्याति होने पर अवान्तरकालीन बहुत से कवियों ने 'कालिदास' का प्रसिद्ध अभिधान धारण कर अपने व्यक्तित्व को छिपा रखा। कम से कम राजशेखर (10 शतक) ने तीन कालिदासों की सत्ता का पूर्ण संकेत किया है। एक तो परम्परा की अविच्छिन्नता और दूसरे अनेक कालिदासों की सत्ता- दोनों ने मिलकर इस समस्या को जटिल तथा अमीमांस्य बना रखा है।

ऋतुसंहार

'ऋतुसंहार' कालिदास की प्रथम काव्यकृति है। विद्वानों की दृष्टि में बालकवि कालिदास ने काव्यकला का आरम्भ इसी ऋतु-वर्णन-परक लघुकाव्य से किया। छ: सर्गो में विभक्त यह काव्य ग्रीष्म से आरम्भ कर वसन्त तक छहों ऋतुओं का बड़ा ही स्वाभावि, अकृत्रिम तथा सरल वर्णन प्रस्तुत करता है, परन्तु इसे कालिदास की कमनीय शैली या वाग्वैदग्धी का परिचय मिलता है, न इसमें बाल-रचना की पुष्टि में ही कोई प्रमाण मिलता है।

भारतीय दृष्टि से ऋतुओं का वर्णन रूढिगत तथा सर्वथा सामान्जस्यपूर्ण है। अलंकार ग्रन्थों में उद्धरण का अभाव भी उक्त सन्देह की पुष्टि-सा करता प्रतीत होता है।

कुमारसम्भव - कालिदास की सच्ची नि:सन्दिग्ध रचना है। इसमें कवि ने कुमार कार्तिकेय के जन्म के वर्णन का संकल्प किया था, परन्तु यह महाकाव्य अधूरा ही हैं। इसके वर्तमान 17 सर्गो में से आदि के सात सर्ग तो कालिदास की लेखनी के चमत्कार हैं ही। अष्टम सर्ग भी उनका ही नि:संशय निर्माण है। आलड़्कारिकों तथा सुक्तिसंग्रहों ने इन्हीं सर्गो में से पद्यों को उद्धृत किया है। कालिदासीय कविता के प्रवीण पारखी मल्लिनाथ ने इतने ही सर्गो पर अपनी 'संजीवनी' लिखी। इन आदिमअष्ट सर्गो में विषय की दृष्टि से पूर्ण ऐक्य है। कविता का चमत्कार सहृदयों के लिए नितान्त हृदयावर्जक है। 'जगत:पितरौ' शिव-पार्वती जैसे दिव्य दाम्पत्य के रूप तथा स्नेह का वर्णन नितान्त औचित्यपूर्ण तथा ओजस्वी है। केवल अष्टम सर्ग का रतिवर्णन आलड़्कारिकों के तीव्र कटाक्ष का पात्र बना है। पंचम सर्ग में पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन जितना ओजपूर्ण, उदात्त तथा संश्लिष्ट है उतना ही तृतीय सर्ग में शिवजी की समाधिका वर्णन भी है। 9से लेकर 17 सर्ग किसी साधारण कवि के द्वारा लिखित प्रक्षेपमात्र है।

मेघदूत – यह कालिदास की अनुपम प्रतिभा का विलास है। वियोगविधुरा कान्ता के पास यक्ष का मेघ के द्वारा प्रणय-सन्देश भेजना मौलिक कल्पना है। सम्भव है यह हनुमान् को दूत बनाकर भेजने की रामायणीय कथा अथवा हंसदूत की महाभारतीय कथा के द्वारा संकेतित किया गया है, परन्तु इसका सांविधानक तथा विषयोपन्यास कवि की मौलिक सूझ के परिणाम हैं। इसकी लोकप्रियता तथा व्यापकता का निदर्शनविपुल टीका-सम्पत्ति (लगभग 50 टीकाओं) से तो लगता ही है; साथ ही साथ तिब्बती तथा सिंघली भाषा में इसके अनुवाद से यह विशेषत: पुष्ट होती है। 'मेघदूत' को आदर्श मानकर संस्कृत में निबद्ध एक विपुल काव्यमाला है, जो 'सन्देश-काव्य' के नाम से विख्यात है। पूर्वमेघ में कवि ने रामगिरि से अलका तक मार्ग के वर्णनावसर पर समस्त भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा का अभिराम उपन्यास किया है। यह बाह्यप्रकृति के सौन्दर्यय तथा कामनीयता का उज्ज्वल प्रदर्शन है तो उत्तरमेघ मानव-हृदय के सौन्दर्य तथा अभिरामता का विमल चित्रण है यक्ष का प्रेम-सन्देश, उस, के कोमल हृदय के स्वाभाविक स्नेह का तथा नैसर्गिक सहानुभूति का एक मनोरम प्रतीक है और इस उदात्त प्रेम का अभिव्यंजक, काव्य सुषमा तथा भावसौष्ठव से मण्डित यह ग्रन्थ रस का अक्षय स्रोत है जिसकी भावधारा सूखने की अपेक्षा प्रतिदिन आनन्दातिरेक से वृद्धिगतही होती जा रही है।

रघुवंश - भारतीय आलोचक रघुवंश को कालिदास का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ मानते है और इसीलिए कालिदास के लिए ही 'रघुकार' (रघुवशं का रचयिता) अभिधान का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न काल में निर्मित 40 टीकाओं के अस्तित्व से भी भली-भॉति मिल सकता है। रघु के जन्म की पूर्व पीठिका से ही इस काव्य का आरम्भ होता है। दिलीप के गोचारण से रघु का जन्म होता है (द्वितीय

तथा तृतीय सर्ग) , जो अपने अदम्य पराक्रम से पूरे भारतवर्ष के ऊपर दिग्विजय करते हैं (चतुर्थ सर्ग) और अपनी अद्भुत दानशीलता दिखलाकर लोगों को चकित कर देते है (पंचम सर्ग)। इसके अनन्तर तीन सर्गो में इन्दुमती का स्वयंवर, अन्य समवेत राजाओं को परास्त कर रघुपत्र अज का इन्दुमती से विवाह तथा कोमल माला के गिरने से इन्दुमती का मरण तथा अज का करूण विलाप क्रमश: वर्णित हैं। दसवें सर्ग से लेकर 15 वें सर्ग तक रामचरित का विस्तृत वर्णन है। यहॉ कालिदास ने जमकर रामचन्द्र के चरित का वैशिष्टय बड़ी ही सुन्दरता से प्रदर्शित किया है। त्रयोदश सर्ग में पुष्पकारूढ राम के द्वारा भारतवर्ष के स्थलों का रूचिर वर्णन कालिदास की प्रतिभा का विलास है। चतुर्दश सर्ग सीता के चरित की सुषमा से आलोकित है । राम के द्वारा पंरित्यक्ता गर्भ- भरालसा जनकनन्दिनी के प्रणय-सन्देह में जो आत्मगौरव, जो स्नेह भरा हुआ है वह पतिव्रताके चरित का उत्कर्ष है । अन्तिम कतिपय सर्गो में कालिदास नाना राजाओं के चरित को सरसरी तौर से निरखते चले गये हैं,परन्तु अन्तिम 19 वें सर्ग में कामुक अग्निवर्ण का चित्रण बड़ी ही मार्मिकता के साथ कवि ने किया है। देखने में रघुवंश अधूरा-सा दीखता है, परन्तु कालिदास ने यहॉ प्रभुशक्ति की कल्पना में अपने विचारों को पुर्णरूपेण अभिव्यक्त कर दिया है। प्रकृति-रंजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृतिहिंसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है- यह उपदेश बड़े ही अच्छे ढंग से रघुवंश के अनुशीलन से प्रकट हो रहा है।

समीक्षण

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रृंगार है। माधुर्य का निवेश, प्रसाद की स्निग्धता , पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव , अलंकारों का मंजुल प्रयोग – कमनीय काव्य के समस्त लक्षण कालिदास की कविता में अपना अस्तित्व धारण किये हुए हैं। कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं, जिनके पात्र भारतीयता की भव्य मूर्ति हैं। जीवन की विविध परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में विशेष रूप से होगी, जनता का वही सच्चा रूप उनके काव्यों में झॉकता है तथा उनके नाटकों में अपना अभिनय दिखाता है। कालिदास की कविता का प्रधान गुण है वर्ण्य-विषय तथा वर्णन-प्रकार में मंजुल सामन्जस्य । कालिदास चुने हुए थोड़े शब्दों में जिन भावों की अभिव्यक्ति कर रहे हैं उन्हें दूसरा कवि विस्तार से लिखकर भी प्रकट नहीं कर सकता। वह जिसे छू देते हैं वह सोना बन जाता है। औचित्य के तो वे प्रवीण मर्मज्ञ हैं। जिन भावों का जिन शब्दों के द्वारा प्रकटन कलात्मक तथा रूचिर होगा, वे उन भावों को उन्ही शब्दों में प्रकट कर अपनी भावुकता का परिचय देते हैं। कालिदास के काव्यों में हृदय –पक्ष का प्राधान्य है। कवि मानव हृदय की परिवर्तनशील वृत्तियों को समझने तथा उन्हें अभिव्यक्त करने में अद्भुत चातुर्य रखता है। संसार का अनुभव उसे गहरा तथा जर्मन महाकवि गेटे ने एक स्वर से कालिदास के भावों की उदारता तथा

महनीयता की प्रशंसा की है। कालिदास प्रतिभासम्पन्न स्वतन्त्र कवि हैं, जिन्होंने अपने
काव्यों की शैली का रूप-निरूपण स्वयं किया। रसमयी पद्धति अथवा 'सुकुमार मार्ग' के कवि ने अपने भावों की तीव्रता तथा उदात्तता के संचार के लिए अलंकारों का भी प्रयोग बड़े ही औचित्य से किया। 'उपमा कालिदासस्य' का भारतीय आभाणक वस्तुत: यथार्थ प्रतीत होता है। उनकी उपमायें लोक तथा प्रकृति के मार्मिक स्थलों से संगृहीत की गयी हैं तथा विषय को उज्जवल करने और काव्यसुषमा की वृद्धि में नितान्त समर्थ हैं। अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् से चुने जाने के कारण इन उपमाओं में एक विलक्षण चमत्कार है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. कालिदास किस रीति के प्रयोक्ता है।

क. गौणी ख. पांचाली ग. वैदर्भी घ. लाटी

2. कालिदास ने कितने महाकाव्यों की रचना की।

क. 4 ख. 3 ग. **5** घ. 7

3. कालिदास ने कितने नाटकों की रचना की।

क. **3** ख. 5 ग. **7** घ. 8

4. ऋतुसंहार किसकी रचना है।

क. माघ ख. भास ग. कालिदास घ. भारवि

5. कालिदास का समय प्रथम शताब्दी कौन सा ग्रन्थ प्रमाणित करता है।

क. गाथासप्तशती ख. कथासरित्सागर ग. वृहत्कथामंजरी घ. कोई नहीं

6. कनिष्क किस वंश का शासक था।

क. गुप्त ख. चोल ग. कुषाण घ. भद्र

7. कुमारसम्भव महाकाव्य में कितने सर्ग हैं।

क. 4 ख. 13 ग. 17 घ. 19

8. कालिदास के मेघदूत में किसे दूत बनाया गया है।

क. यक्ष ख. मेघ ग. सेवक घ. कोई नहीं

9. दिलीप की गो सेवा का वर्णन किस ग्रन्थ में है।

क. रघुवंश ख. कुमारसम्भव ग. शाकुन्तलम घ. गीतगोविन्द

10. रघुवंश महाकाव्य में कितने सर्ग है –

क. 17 ख. 18 ग. 19 घ. 20

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि कालिदास अपने पाण्डित्य के कारण ही नहीं बल्कि वर्णन की गम्भीरता के कारण कवियों के बीच में सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। परम्परा में

यह मान्य है कि महाकवि ने ऋतुसंहार नामक काव्य की रचना सबसे पहले की। इसी में उनका कोमल प्राकृतिक होना प्रतिभासित होता है। इसके बाद ही उन्होंने रघुवंश, कुमारसम्भव एवं मेघदूत की रचना की। जिसमें दो महाकाव्य हैं और एक गीतिकाव्य है। ये वैदर्भी रीति के सफल प्रयोक्ता हैं। उपमा कालिदास के काव्यों एवं नाटकों का मुकुट है वस्तुत: उन्होंने दर्शन से लेकर समस्त बौद्धिक पराकाष्ठाओं के दृष्टि से अपनी रचना में सभी आकर्षण उत्पन्न किया है। फिर भी नितान्त साहित्यिक होकर वे श्रृंगार परक, प्रकृतिपरक और उपमा परक वर्णनों पर अत्यधिक विश्वस्त दिखायी देते है। उन्होंने अभिनेय वस्तु को सजीवता के साथ चित्रित करनें में कोई कोर कसार नहीं रखी है। रसमय और सुकुमार, अलंकारों के सुन्दर प्रयोग, सामासिक पदों में सरसता इत्यादि कालिदास की महनीय विशेषता है। अल्प शब्दों में विहंगम भावों की अभिव्यक्ति इनका प्रधान गुण है। अत: इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कालिदास का परिचय, समय और इनके समय निर्णय में विविध मतों का अवलोकन करते हुये महाकवि की विविध वर्णन शैली को समझा सकेंगे।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. **ग. वैदर्भी** 2. **ख. 3** क. 3 4. **ग. कालिदास** 5. क. **गाथासप्तशती** 6. **ग. कुषाण** 7. **ग. 17** 8. ख. **मेघ** 9. क. **रघुवंश** 10. **ग. 19**

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि कालिदास का जीवन परिचय लिखिये।
2. विभिन्न मतों के अनुसार कालिदास का काल निर्णय कीजिये।
3. कालिदास की रचनाओं पर एक निबन्ध लिखिये।

इकाई - 4. कालिदास की काव्य-नाट्यकला, एवम् उपमा कालिदासस्य

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 वर्ण्य विषय
4.3.1 उपमा कालिदासस्य
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के इतिहास वर्णन क्रम से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने रामायण एवं महाभारत जैसे विशालकाय साहित्यिक ग्रन्थों तथा कालिदास से ही सम्बन्धित तथ्यों का संक्षिप्त अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में परवर्ती कवियों की गणना श्रृंखला में प्रथम स्थान पर गिने जाने वाले कवि कालिदास की नाट्य कला एवं उनके उपमा प्रयोग से सम्बन्धित वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के कविकुलगुरू के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये नाटक महाकाव्य तथा ज्योतिष परम्परा में भी निष्णात माने गयें है। इन्होंने कुल सात ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें तीन महाकाव्य, तीन नाटक और एक ऋतुसंहार नाम का ग्रन्थ रचा था। इसके अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित ज्योतिविदाभरणम् नाम का इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन रचनाओं में जो वैशिष्ट्य है उसी के कारण वर्तमान में भी कालिदास की उतनी ही प्रतिष्ठा है जितनी पूर्व में थी। कालिदास महाकाव्यों के रचना में तो प्रवीण हैं ही बल्कि वे नाटकीयता में भी सर्वाधिक निपुण कवि है। उनका उपमा प्रयोग संस्कृत साहित्य में एक कीर्तिमान के रूप में स्थापित है।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप कालिदास रचित ग्रन्थों के संक्षिप्त वर्णन के आधार पर उनकी नाटकीय तथा अन्य साहित्यिक समस्त शैलियों, वर्णन प्रकारों का समुचित प्रयोजन बता सकेंगे। साथ ही यह भी समझा सकेंगे कि मूल रूप से कालिदास किस रीति के समर्थक कवि थे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई में वर्णित कालिदास की नाट्यकला एवं उनके ग्रन्थों में उपमा प्रयोग की विशेषताओं का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप यह समझा सकेंगे कि –

- कालिदास के कितने नाटक है ।
- कालिदास के नाटकों में किस प्रकार की कथा वस्तु का प्रणयन किया गया है ।
- मुख्य रूप से कालिदास किस शैली के कवि हैं ।
- कालिदास के महाकाव्यों की क्या विशेषतायें हैं।
- नाटकों में कालिदास के नाटक श्रेष्ठ क्यों है।
- उपमा के लिये कालिदास क्यों प्रसिद्ध है।

4.3 वर्ण्य विषय

4.3.1 उपमा कालिदासस्य

काव्य में अलंकार-प्रयोग के विषय में ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने एक बड़ी रहस्यमयी उक्ति◌ा प्रस्तुत की है-

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्ध: शब्दक्रियों भवेत्।

अपृथग्-यत्ननिर्वर्त्य: सोऽलङ्कारो ध्वनौ मत: ।।

रस के द्वारा आक्षिप्त होने के कारण जिसका बन्ध या निर्माण शक्य होता है और जिसकी सिद्धि में किसी प्रकार के पृथक् प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती,वही सच्चा अलंकार है- ध्वनिवादियों का यही मत है। प्रथम होती है रस की अनुभूति और तदनन्तर होती है उसकी अलंकृत अभिव्यक्ति। रसानुभूति तथा शब्दाभिव्यक्ति - दोनों एक ही प्रयास के परिणित फल हैं। कोई कलाकार जिस चित्तप्रयास द्वारा रस-विधारण करता है उसी चित्तप्रयास द्वारा अलंकारादि के माध्यम से रसप्रस्फुटन करता है; उसके लिए उसे किसी प्रकार के पृथक् प्रयास करने की जरूरत ही नहीं होती । रससंवेग द्वारा ही अलंकार के स्वत: प्रकाशन का यह सिद्धान्त ध्वनिवादियों को ही मान्य नहीं है, प्रत्युत प्रख्यात आलोचक क्रोचे भी इससे पूर्णतया सहमत हैं । चित्त की सहजानुभूति (इन्टयूशन) एवं अभिव्यन्जना (एक्सद्वप्रेशन)- इन दो वस्तुओं को वे दो प्रक्रियाओं से उत्पन्न नहीं मानते। उनका यह दृढ विश्वास है कि कला की अभिव्यन्जना की सम्भावना बीज-रूप में हृदय की रसानुभूति में ही निहित रहती है; जैसे- एक विराट वृक्ष की शाखा-प्रशाखायें ,किसलय-पल्लव, फूल-फल आदि की रेखाओं की प्रकाशन-संभावना एक छोटे से बीज में। साहित्य के रस एवं साहित्य की भाषा में अद्वय योग रहता है, अभिव्यक्त अलंकार-भाषा का यह समस्त सौन्दर्य-कटककुण्डलावदिवतु कहीं बाहर से जोड़ा हुआ नहीं रहता, प्रत्युत् वह काव्यपुरूष का स्वाभाविक देह –धर्म होता है। अभिनव गुप्त ने भी स्पष्ट ही कहा है- 'न तेषां बहिरङ्गत्वं रसाभिव्यक्तौ'। इस विषय में महाकवि कालिदास भी अद्वयवादी थे:-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगत: पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

वाक् तथा अर्थ का – काव्य की अन्तर्निहित भाववस्तु एवं उसके अभिव्यन्जक शब्द का परस्पर नित्य सम्बन्ध है, जैसे विश्वसृष्टि के आदि माता-पिता पार्वती-परमेश्वर का त्रिगुणात्मिका शक्ति ही विशुद्ध चिन्मय शिव की विश्व में अभिव्यक्ति का कारण बनती है। शिव के आश्रयविना शक्ति की लीला नहीं, शक्ति के विना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं; वह शवमात्र होताहै। साहित्य के क्षेत्र में भी भावरूप महेश्वर एवं शब्दरूपा पार्वती- दोनों ही एक दूसरे के आश्रित हैं । महाकवि कालिदास की उपमा (या अलंकार) के प्रयोग के अवसर पर इस तथ्य का अनुशीलन नितान्त आवश्यक है कि रसानुभति की समग्रता को वर्ण, चित्र तथा संगीत में जो भाषा जितना अधिक मूर्त कर सकेगी, वह भाषा उतनी ही सुन्दर एवं मधुर होगी।

कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं । समाधि में निरत भूतभावन शंकर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया है उसका सौन्दर्य नितान्त अवलोकनीय है (कुमारसम्भव 3/48)-

अवृष्टिसंरभमिवाम्बुवाहम् अपामिवाधारमनुत्तरङ्गम् ।
अन्तश्चराणां मरूतां निरोधाद् निवापनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ।।

योगेश्वर महादेव शरीरस्थ समस्त वायुओं को निबद्ध कर पर्यङ्कबन्ध में स्थिर अचंचल भाव से बैठे हैं, जैसे वृष्टि के संरम्भ से हीन अम्बुवाह मेघ हो (जल को धारण जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरंगहीन अचंचल हो; 'अपामिवाधार' शब्द की यही ध्वनि है) तथा निवातनिष्कम्प प्रदीप हो। यहॉ तीनों प्राकृतिक उपमानों के द्वारा कालिदास योगिराज की अचंचल स्थिरता की अभिव्यन्जना कर उनके गौरव की एक रेखा खींचते हुये प्रतीत होते हैं। रघुवंश (3/2) में कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा का बड़ा सुन्दर चित्र उपमा के द्वारा खींचा है-

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ।।

आसन्नप्रसवा सुदक्षिण मानों प्रभातकल्पा रजनी हो। रजनी दिन को प्रकाश देने वाले सूर्य का प्रसव करती है, वैसे ही रानी वंशकर्ता उज्जवलमूर्ति रघु को प्रसव करने जा रही है। सूर्यरूपी पुत्र को गर्भ में धारण करनेवाली आसन्नप्रसवा विराट् रजनी की महिमामयी मूर्ति होती है, सुदक्षिणा की मूर्ति में भी वह गौरव प्रस्फुटित हो रहा है। शरीर की कृशता के कारण हीरे , जवाहिरों के भूषण स्वयं खिसक पड़े हैं; जैसे रजनी में टिमटिमाते तारे स्वयं खिसक जाते हैं और दो चार ही बचे रहते हैं। लाध्र के समान ईषत्-पीला मुख पीले पड़ जानेवाले चन्द्रमा के समान प्रकाशहीन हो गया है। गर्भिणी के स्वभाविक चित्रण के साथ ही प्रभातप्राय निशा का कितना समुचित वर्णन हमारे नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है।

कालिदास की उपमाओं की रसात्मिकता तथा रसपेशलता नितान्त मर्मस्पर्शी है। औचित्य तथा सन्दर्भ को शोभन बनाने की कला उनमें अपूर्व है। तपस्या के लिए आभूषणों को छोड़कर केवल वल्कल धारण करने वाली पार्वती चन्द्र तथा ताराओं से मण्डित होनेवाली अरूणोदय से युक्त रजनी के समान बतलाई गई है (कुमार0 5/44)। स्तनों के भार से किंचित् झुकी हुई नवीन लाल पल्लवों से मण्डित संचारिणी लता के समान प्रतीत होती है-

पर्याप्त-पुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव।

स्वयंवर में उपस्थित भूपालों को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ जाती है, तब वे राजमार्ग पर दीपशिखा के द्वारा छोड़े गये महलों के समान प्रतीत होते हैं। यहॉ राजाओं की विषण्णता तथा उदासी की अभिव्यक्ति इस उपमा के द्वाराबड़ी सुन्दरता से की गई है-

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र-मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपाल: ।।

इसी उपमा-प्रयोग के सौन्दर्य के कारण यह महाकवि'दीपशिखा कालिदास' नाम से कविगोष्ठी में प्रसिद्ध है। कालिदासीय उपमा की यह भूयसी विशिष्टता है कि वह 'स्थानीयरन्जना' (लोकल कलरिंग) से रंजित है और इससे श्रोता के चक्षु: पटल के सामने समग्र चित्र को प्रस्तुत कर देती है। परास्त किये जाने पर पुन: प्रतिष्ठित किये गये वंगीय नरेश

रघु के चरण-कमल के ऊपर नम्र होकर उन्हें फलों से समृद्ध बनाते हैं, जिस प्रकार उस देश के धान के पौधे (रघु0 4/37)। कलिंग-नरेश के मस्तक पर तीक्ष्ण प्रताप के रखने वाले रघु की समता गंभीरवेदी हाथी के मस्तक पर तीक्ष्ण अंकुश रखने वाले महाव्रत से की गई है (रघु04/39)। प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) के नरेश रघु के आगमन पर उसी प्रकार झुक जाते हैं जिस प्रकार हाथियों के बाँधने के कारण कालागुरू के पेड़ झुक जाते हैं (रघु0 4/81) इन समस्त उपमाओं में 'स्थानीय रंजन' का आश्चर्यजनक चमत्कार है।

प्रकृति से गृहीत उपमाओं में एक विलक्षण आनन्द है। राक्षसके चंगुल से बचने पर बदहोश उर्वशी धीरे-धीरे होश में आ रही है। इसकी समता के लिए कालिदास चन्द्रमा के उदय होने पर अन्धकार से छोड़ी जाती हुई (मुच्यमाना) रजनी,रात्रिकाल में धूमराशि से विरहित होने वाली अग्नि की ज्वाला , बरसात में तट के गिरने के कारण कलुषित होकर धीरे-धीरे प्रसन्न-सलिला होने वाली गंगा के साथ देकर पाठकों के सामने तीन सुन्दर दृश्य को एक साथ उपस्थित कर देते हैं। ये तीनों उपमायें औचित्यमण्डित होने से नितान्त रसाभिव्यन्जक हैं (विक्रमोर्वशीय1/9) –

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि-
नैंशस्यार्चिर्हुतभुज इव छिन्नभूयिष्ठधूमा।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा
गंगा रोध:पतनकलुषा गृह्णतीव प्रसादम्॥

पात्र-चित्रण

कालिदास के पात्र जीवनी शक्ति से सम्पन्न जीते-जागते प्राणी हैं। उनकी शकुन्तला प्रकृति की कन्या,आश्रम की निसर्ग बालिका है, जिसके जीवन को बाह्य प्रकृति ने अपने प्रभाव से कोमल तथा स्निग्ध बनाया है। हिमालय की पुत्री पार्वती तपस्या तथा पातिव्रत का अपूर्व प्रतीक है, जिसके कठोर तपश्चरण के आगे ऋषिजन भी अपना माथा टेकते है। धीरता की मूर्तिधारिणी, चपल प्रेम की प्रतिमा मालविका, उन्मत्त प्रेम की अधिकारिणी उर्वशी, पारस्परिक ईर्ष्या तथा प्रणयमान की प्रतिनिधि इरावती –संस्कृत-साहित्य के अविस्मरणीय स्त्री-पात्र हैं। आदर्श पात्रों के सर्जन में रघुवंश अद्वितीय है। देवता ब्रह्मण में भक्ति, गुरूवाक्य में अटल विश्वास, मातृरूपिणी पयस्विनी की परिचर्या, अतिथि की इष्टपूर्ति के लिए धरिणीधर राजा की व्याकुलता, लोकरंजन के निमित्त तथा अपने कुल को निष्कलंक रखने के लिए नरपति के द्वारा अपनी प्राणोपमा धर्मपत्नी का निर्वासन-कालिदासीय आदर्श सृष्टि के कतिपय दृष्टान्त हैं। कालिदास रमणी-रूप के चित्रण में ही समर्थ नहीं है; प्रत्युत नारी के स्वाभिमान तथा उदात्त रूप के प्रदर्शन में भी कृतकार्य है।

रधुवंश के चतुर्दश सर्ग(61-67 श्लोक) में चित्रित, राजाराम के द्वारा परित्यक्त, जनक-नन्दिनी जानकी का चित्र तथा उनका राम को भेजा गया संदेश कितना भावपूर्ण, गम्भीर तथा मर्मस्पर्शी है। राम को 'राजा' शब्द के द्वारा अभिहित करना विशुद्ध तथा पवित्र चरित्र धर्मपत्नी के परित्याग के अनौचित्य का मार्मिक अभिव्यन्जक है (रघु0 14/21)-

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा व ह्वौ विशुद्धामपि यत् समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासी: श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य ।।

सीता के चरित्र की उदारताका परिचय इसी घटना से लग सकता है कि इतनी विषम परिस्थिति में पड़ने पर भी वह राम के लिए एक भी कुशब्द का प्रयोग नहीं करती, बल्कि अपने ही भाग्य को कोसती हैं तथा अपनी ही निन्दा बारम्बार करती हैं। पुरूष पात्रों का चित्रण भी उतनी ही स्वाभाविक तथा भावपूर्ण है। गुरू की आज्ञा से नन्दिनी का सेवक दिलीप चरित्र में जितना सुन्दर है, वरतन्तु की इच्छापूर्ति करने वाला वीर रघु उतना ही श्लाघनीय है। रामचन्द्र का चरित्र इस महाकवि ने बड़ी कोमल तूलिका से चित्रित किया है । राम प्रजारंजक हैं और साथ ही साथ मानव भी हैं। वै देही की निन्दा सुनकर राम के हृदय के विदरण की समता आग में तपे हुए अयोघन द्वारा आहत लोहे के साथ देकर कवि ने राम के हृदय की कठोरता तथा कोमलता दोनों की मार्मिक अभिव्क्ति एक साथ देकर कवि ने राम के हृदय की कठोरता तथा कोमलता दोनों की मार्मिक अभिव्यक्ति एक साथ की है (रघु0 14/33)।

राम का हृदय लोहे के समान कठोर, अथ च तप्त होने पर कोमल है। अकीर्त्ति की उपमा अयोघन (लोहे का घन) के साथ देकर कवि उसकी एकान्त कठोरता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहा है। राम का स्वाभिमानी हृदय कहीं व्यक्त होता है (14/41), तो कहीं उनकी मानवता राजभाव के ऊपर झलकती है (14/84)। लक्ष्मण के लौटने पर सीता का सन्देश सुनाने पर राम की ऑखों में ऑसु छलकने लगते हैं, यह राजभाव के ऊपर मानवता की विजय है (रघु0 14/84)—

बभूव राम: सहसा सवाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्य-चन्द:।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्त: ।।

प्रकृति-वर्णन

कालिदास प्रकृति देवी के प्रवीण पुरोहित थे। उनकी सूक्ष्मदृष्टि ने प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को सावधानता से हृदयगम किया था। उनके प्राकृतिक वर्णन इतने सजीव हैं कि वर्णित वस्तु हमारे नेत्रों के सामने नाच उठती है। बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करना तथा उसका मार्मिक अंश ग्रहण करना कालिदास की महती विशेषता है। मनुष्य तथा प्रकृति-दोनों का मंजुल सम्पर्क तथा अद्भुत एकरसता दिखाकर कवि ने प्रकृति के भीतर स्फुरित होने वाले हृदय को पहचाना है। भारतीय प्राकृतिक वर्णनों में एक विचित्रता है। पाश्चात्य कवियों के वर्णन प्राय: आवरणहीन होते हैं, परन्तु संस्कृत कवियों के वर्णन अलंकृत होते हैं- ये महाकवि प्रकृति को सुन्दर अलंकारों से सजाकर पाठकों के सामने लाते हैं। कालिदास के वर्णन नितान्त सूक्ष्म, सुन्दर तथा संश्लिष्ट रूप में होते है।

मेघदूत भारतीय कवि की अद्भुत प्रतिभा के द्वारा चित्रित भारतश्री का एक नितान्त सरस चित्रण है। 'ऋतुहार' में समस्त ऋतुएँ अपने विशिष्ट रूप में प्रस्तुत होकर पाठकों का मनोरंजन करती हैं। रघुवंश के प्रथम सर्ग (49-53 श्लोक) में तपोवन का तथा त्रयोदश में त्रिवेणी का (54-57 श्लोक) सुन्दर वर्णन कल्पना के साथ निरीक्षण शक्ति का मंजुल

सामन्जस्य है। कालिदास की निरीक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म तथा पैनी है। उनका प्राकृतिक-वर्णन वैज्ञानिक तथा प्रतिभामण्डित है। इसकेरमणीय उदाहरण सर्वत्र दीख पड़ते हैं। पर्वत के झरनों पर जब दिन के समय सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब उनमें इन्द्रधनुष चमकने लगता है, परन्तु सन्ध्या के समय सूर्य के पश्चिम ओर लटक जाने पर उनमें इन्द्रधनुष नहीं दिखलाई पड़ते। इस वैज्ञानिक तथ्य तथा निरीक्ष-चातुरी का प्रत्यक्ष वर्णन कालिदास ने इस पद्य में किया है (कुमार08/31)—

सीकर-व्यतिकरं मरीचिभिर्दुरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्क्तरास्वत पितुर्व्रजन्त्यमी॥

किन्तु झरनों में इन्द्र धनुष के न दिखलाई पड़ने पर भी तालाबों के जल में लटकते हुए सूर्य की समतल कान्ति पड़ने से ऐसा जान पड़ता है मानो उनके ऊपर सोने का पुल बना हो (कुमार0 8/34)—

पश्य पश्चिम-दिगन्तलग्बिना निर्मितं मितकथे विवस्वता।
लब्धया प्रतिमया सरोम्भसां तापनीयमिव सेतु-बन्धनम्॥

ये उक्तियॉ रूढि का अनुसरण करने वाले कवि की नही हो सकती, वरन् ये उक्तियॉ उस कवि की हैं जो मुग्ध दृष्टि से प्रकृति की शोभा देखते हुए सब कुछ भूल जाता है। इस तथ्य का प्रत्यक्ष दृष्टान्त हिमालय का वर्णन है। संस्कृत कवियों में कालिदास को हिमालय सबसे अधिक प्यारा था और गाढ़ परिचय होने से उनके वर्णन नितान्त तथ्य- मण्डित, वैज्ञानिक तथा शोभन हैं। वृष्टि से उद्वेलित ऋषिजनोंका धूपवाले शिखर का आश्रय लेना, हाथियों के द्वारा विघटित सरल द्रुमों(चीड़ के पेड़) से बहनेवाले दूध का हवा के झोंके से सर्वत्र फैलना, जलवृष्टि का करका के रूप में परिवर्तन होना-आदि हिमालय प्रदेश की भौतिक विशेषताएँ कवि की सूक्ष्म अवलोकन-शक्ति के जागरूक दृष्टान्त हैं।

कालिदास के प्रकृति –वर्णन में अनेक वैशिष्टय हैं - कवि मान-सौन्दर्य की तीव्रता तथा यथार्थता के अभिव्यंजन के निमित्त प्रकृति का आश्रय लेता है, तो कहीं वह प्रकृति के ऊपर मानव भावों तथा व्यापारों का ललित आरोप करता है। कहीं वह प्रकृति और मानव के बीच परस्पर गाढ़ मैत्री, सहज सहानुभूति तथा रमणीय रागात्मक वृत्ति का सम्बन्ध जोड़ता है, तो कहीं प्रकृति को भगवान् की ललित लीला का निकेतन मानकर आनन्द से विभोर हो जाता है। नि:सन्देह कालिदास प्रकृति के अन्त: स्थल के सूक्ष्म पारखी महाकवि हैं, जिनकी दृष्टि प्रकृति के सौम्य-रूप , माधुर्यमय प्रवृत्ति तथा स्निग्ध सौन्दर्य के ऊपर रीझती है तथा उग्रतं और भीषणता से सदा पराड़मुख रहती है।

कालिदास की राष्ट्रमंगल भावना

भारतवर्ष एक अखण्ड राष्ट्र है। इस विशाल विस्तृत देश के नाना प्रान्तों में भाषा तथा स्थानीय वेश-भूषा की इतनी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है कि वाह्यदृष्टि से देखने वालों को विश्वास नहीं होता कि देश में समरसता का साम्राज्य है, अखण्डता का बोलबाला है; परन्तु बाहरी आवरण को हटाकर निरखनेवालों की दृष्टि में इसकी

सांस्कृतिक एकता तथा अभिन्नता का परिचय पद-पद पर मिलता है। कालिदास भारतीय संस्कृतिक के हृदय थे। उनकी कविता में हमारी सभ्यता झलकती है; उनके नाटकों में हमारी संस्कृति विश्व के रंगमंच पर अपना भव्य रूप दिखलाती है। उनकी वाणी राष्ट्रीय भाव तथा भावना से ओतप्रोत है। इतिहास साक्षी है, इसी महाकवि ने आज से डेढ सौ वर्ष पहले, जब भारत पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में आया, तब इस देश के सरस हृदय,कोमल वाणी तथा उदात्त भावनाका प्रथम परिचय पाश्चात्य संसार को दिया। आज भी हम इस महाकवि की वाणी से स्फूर्ति तथा प्रेरणा पाकर अपने समाज को सुधार सकते हैं तथा अपना वैयक्तिक कल्याण सम्पन्न कर सकते हैं।

कालिदास ने अखण्ड भारतीय राष्ट्र की स्तुति अभिज्ञान-शाकुन्तल की नांदी में की है। कविवर ने शंकर की अष्टमूर्तियों का उल्लेख किया है। कुमारसम्भव (6/26) में भी इन्ही मूर्तियों का विस्तार कर जगत् के रक्षण-कार्य का स्पष्ट संकेत है। महादेव की आठ मूर्तियॉ ये हैं – सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृवी ,जल, अग्नि , वायु तथा आकाश। ये समस्त मूर्तियॉ प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। अत: इन प्रत्यक्ष मूर्तियों को धारण करने वाले इस जगत् के चेतन नियामक की सत्ता में किसी को सन्देह करने का अवकाश नहीं है। कालिदास वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रतिनिधि ठहरे। 'प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश:' – इन शब्दों में वैदिक कवि ने निरीश्वरवादी बौद्धों को कड़ी चुनौती दी है। भगवान् की प्रत्यक्ष दृश्य-मूर्तियों में अविश्वास रखना किसी भी चक्षुष्मान् को शोभा नही देता। इतना ही नहीं, इस श्लोक में भारत की एकता तथा अखण्डता की ओर भी संकेत किया गया है। शिव की इन मूर्तियों के तीर्थ इस देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता है। चन्द्रमूर्ति की प्रतिष्ठा दो तीर्थो में है- एक है भारत के पश्चिम में काठियावाड़ का सोमनाथ- मन्दिर और दूसरा है भारत के पूरब में बंगाल का चन्द्रनाथ क्षेत्र। सोमनाथ का प्रसिद्ध तीर्थ प्रभासक्षेत्र में है और चन्द्रनाथ का मन्दिर चटगॉव से लगभग चालीस मील उत्तर पूर्व में एक पर्वत पर स्थित है। नेपाल के पशुपतिनाथ यजमान मूर्ति के तीर्थ हैं। पन्च तत्वों की सुचक मूर्तियों के क्षेत्र दक्षिण –भारत में विद्यमानहैं। क्षितिलिंग शिवकांची में एकाम्रेश्वरनाम के रूप में हैं। जललिंग जम्बुकेश्वर के शिव-मन्दिर में मिलता है। तेलोलिंग अरूणाचल पर है, वायुलिंग कालहस्नीश्वर के नाम से विख्यात है, जो दक्षिण के तिरूपति बालाजीके कुछ ही उत्तर में है। आकाशलिंग चिदम्बर के मन्दिरमें है। 'चिदम्बर' का अर्थ ही है 'चिदाकाश'। इसी से मूल-मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है , आकाश स्वयं मूर्तिहीन जो ठहरा।

इस प्रकार भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की ये आठों मूर्तियॉ भारत के सबसे उत्तरीय भाग नेपाल से लेकर दक्षिण चिदम्बर तक तथा काठियावाड़ से लेकर बंगाल तक फैली हुई हैं और उनकी उपासना का अर्थ है समग्र भारतवर्ष की आध्यात्मिक एकता की उपासना। महाकवि ने राष्ट्रीय एकता की ओर इस श्लोक में गूढ़ रूप से संकेत किया है।

राष्ट्र का मंगल किस प्रकार सिद्ध हो सकता है ? क्षात्रबल तथा ब्राह्मतेज के परस्पर सहयोग से ही किसी देश का वास्तव में कल्याण हो सकता है। ब्राह्मण देश के मस्तिष्क है, उन्हीं के विचार तथा मार्ग पर समग्र देश आगे बढ़ता है। सम्राट् त्रैवृष्ण त्यरूण और महर्षि वृश-जान के वैदिक आख्यान का यही रहस्य है। कालिदास ने इस तत्व का स्पष्टीकरण बड़े सुन्दर शब्दों में किया है (रघुवंश 8/4)

स बभूव दुरासद: परैर्गुरूणाथर्ववविदा कृतक्रिया।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्मयदस्त्रतेजसा।।

अथर्ववेद के जाननेवाले गुरू वसिष्ठ के द्वारा संस्कार कर दिये जाने पर वह अज शत्रुओं के लिये दुर्द्धर्ष हो गया। ठीक ही है, अस्त्र –तेज से युक्त ब्रह्म-तेज आग और हवा के संयोग के समान प्रदीप्त हो उठता है।

भारतीय राजाओं का जीवन परोपकार की एक दीर्घ परम्परा होता है। कालिदास ने महाराज अज के वर्णन में कहा है कि उसका धन ही केवल दूसरों के उपहार के लिए नहीं था, प्रत्युत् उसके समस्त सद्गुण दूसरों का कल्याण –सम्पादन करते थे; उसका बल पीड़ितो के भय तथा दु:ख का निवारण करता था और इसका शास्त्राध्यन विद्वानों के सत्कार एवं आदर करने में लगाया गया था(रघु0 8/3) —

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहु श्रुतम्।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना।।

राजा की सार्थकता प्रजापालन से है। 'राजा प्रकृतिरन्जनात्'- हमारी राजनीति का आदर्श तत्व है। प्रकृति का अनुरन्जन ही हमारे शासकों का प्रधान लक्ष्य होता था। और प्रजा का कर्तव्य था राजा की भक्ति के साथ अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा। समाज वर्णाश्रम धर्म पर प्रतिष्ठित होकर ही श्रेय:साधन कर सकता है, कालिदास की यह स्पष्ट सम्मति प्रतीत होतीहै। भारत का वास्तव कल्याण दो ही वस्तुओं से हो सकता है- त्याग से और तपोवन से। जिस दिन त्याग का महत्व कम हो जाएगा तथा तपोवन के प्रति हमारी आस्था नष्ट हो जायगी, उसी दिन न हम भारतीय रहेंगे और न हमारी सभ्यता भारतीय रहेगी। आर्य संस्कृति की मूल –प्रतिष्ठा इन्हीं दो पीठों पर है। भारतीय राष्ट्र के संरक्षक रघु के जन्म का कारण नगर से बहुत दूर, वसिष्ठ के पावन आश्रम में निवास तथा गोचारण है। रघु का उदय गोमाता के वरदान का उज्जवल प्रभाव है। इसी प्रकार दुष्यन्त-पुत्र भारत का जन्म और पोषण हेमकूट पर्वत पर मारीचाश्रम में हेाता है। भारतीय राष्ट्र के संचालन नेता पावन तपोवन और पवित्र त्याग के वायुमण्डल में पले है और बड़े हुए हैं। हमारे राजाओं ने जिस दिन कालिदास के इस सन्देश को भुला दिया, उस दिन उनका अध:पतन आरम्भ हो गया।

रघु की तेजस्विता तथा अग्निवर्ण की स्त्रैणता का कितना सजीव चित्र कालिदास ने खींचा है। रघु था त्याग का उज्जवल अवतार और अग्निवर्ण था स्वार्थ - परायणता की सजीव मूर्ति। रघु की वीरता तथा उदारता भारतीय नरेश का आदर्श है और रघु हिन्दू राजा

का प्रतीक हैं, तो अग्निवर्ण पतित-पातकी भूपालों का प्रतिनिधि है। राजभक्त प्रजा प्रात:काल अपने राजा का मुख देखकर सुप्रभात मनाने आती थी; परन्तु अग्नि-वर्ण मन्त्रियों के लाखों सिफारिस करने पर यदि कभी दर्शन देता था तो खिड़की से लटकाकर अपने केवल पैर का। प्रजा मुख देखने के लिये आती थी, पर पैर का दर्शन पाकर लौटती थी। वाह री विडम्बना ! (रघु0 19/7)-

गौरवाद्यदपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृतिकांक्षितं ददौ।
तद् गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम्।।

अग्निवर्ण पार्थिव भोगविलास का दास था। उसे फल भी अच्छा ही मिला-राष्ट्र तथा देश का सत्यानाश । अग्निवर्ण के दुश्चरित्र का कुफल कवि ने बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में अभिव्यक्त किया है। इस चित्र को देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

कालिदास की दृष्टि में : गीता का आदर्श

वैदिक धर्म तथा दर्शन ने इस जगत् के उदय, संचालन तथा विनाश के निमित्त विश्व के अन्तर में एक विशाल दैवी शक्ति को अंगीकार किया है। विना उस शक्तिमान् की इच्छा के जगत् का छोटा से छोटा कार्य भी संपादित नहीं हो सकता। कालिदास ने उस शक्तिमान् को 'शिव' के रूप में ग्रहण किया है। 'शिव' जगत् के मंगलकारक तत्व का सामान्य अभिधान है। विश्व का प्रत्येक कण उनकी सत्ता की सूचना देता है। वैदिक धर्म अन्य धर्मो की अपेक्षा उदात्त है और कालिदासके ग्रन्थों में इसका उदात्ततम रूप दृष्टिगोचरहोता है। कालिदास शंकर के उपासक होकर भी विष्णु तथा ब्रह्मा में उसी प्रकार श्रद्धा और आदर रखते हैं। वे क्षुद्, संकीर्णसाम्प्रदायिकता से कोसों दूर थे। भगवान् की मूर्ति एक ही है जो गुणों की विषमता के कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर का रूप धारण करती है। तत्व वस्तुत: एक ही है; त्रिविध रूप उपाधिजन्य है। इन त्रिदेवों में ज्येष्ठ और कनिष्ठ का भाव सामान्य है। कभी हरि शंकर के आदि में विद्यमान रहते हैं, तो कभी हर हरि के आदि में और कभी ब्रह्मा हरि और हर दोनों के आदि में स्थित हैं। ऐसी दशा में किसी एक देवता को बड़ा मानना तथा दूसरों को छोटा बतलाना नितान्त अनुचित एवं तर्कहीन है। कालिदास का कथन संशयहीन है (कुमारसम्भव 7/44) –

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
विष्णोर्हरस्तस्य हरि:कदाचिद् वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ।।

आकाश से गिरनेवाला वर्षाकालीन जल एकरस ही होता है, परन्तु जिन स्थानों पर वह गिरता है उन स्थानों की विशेषता के कारण नाना रसों को प्राप्त करता है। ब्रह्म-तत्व भी ठीक इसी प्रकार समरस है। उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है। परन्तु सत्व, रज तथा तम के सम्पर्क में आकर नाना कार्यो के निर्वाह के निमित्त वह विष्णु, ब्रह्मा तथा शंकर नाम धारण करता है (रघु0 10/17)। ब्रह्मतत्व अमेय है –उसके मान का पता नहीं चलता। कालिदास ने इसी लिये ब्रह्म की समता समुद्रसे की है। समुद्र दश दिशाओं को व्याप्त किये हुए है और भिन्न-भिन्न समय में नाना अवस्थाओं को प्राप्त

कर विद्यमान रहता है। अत: उसके रूप तथा प्रमाण का पता नहीं चलता। भगवान् विष्णु ने भी नाना स्थावर-जङ्.गम का रूप धारण कर अपनी महिमा से समग्र विश्व को व्याप्त कर रखा है। इनके भी रूप का पता हमारी बुद्धि से नहीं चलता। कि उनका स्वरूप किस प्रकार

का है (ईदृक्तया) तथा वह कितना बड़ा है (इयत्तया)(रघु013/5)-

ता तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ।।

भगवान् नित्य परिपूर्ण हैं। अत: उनके लिए कोई भी वस्तु अनवाप्त (अप्राप्त) तथा प्राप्तव्य नहीं है। जो व्यक्ति पूर्ण नहीं होता वह नाना प्रकार की वस्तुओं की कामना किया करता है, परन्तु जो स्वयं 'सर्वसम:' ''सर्वरस:' है उसके लिए किसी वस्तु की कामना की अपेक्षा ही नहीं रहती। ऐसी दशा में जन्म-कर्म का क्या कारण है ? क्या कारण है कि भगवान् इस भूतल पर जन्म ग्रहण करते हैं तथा नाना प्रकार के कर्मो का सम्पादन करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर कालिदास के शब्दों में 'लोकानुग्रह' है। कल्याण के निमित्त उनकी समग्र प्रवृत्तियॉं परार्थ ही होती है (रघु0 10/31)—

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते।
लोकनुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणो:।।

कालिदास इस श्लोक के भाव तथा शब्द दोनों के लिए ऋणी है (गीता 3/12)—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानावाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।

कालिदास के धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों पर गीता का प्रचुरप्रभाव दृष्टिगत होता है। गीता का 'कर्मयोग' कालिदास को सर्वथा मान्य है। इस संसार से आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये कालिदास द्वारा निर्दिष्ट मार्ग यह है (रघु0 10/27)—

त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पित-कर्मणाम्।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूय:-संनिवृत्तये ।।

इस सारगर्भित श्लोक को हम कालिदास के दर्शन की 'चतु:सूत्री' मान सकते है। इसके चारों चरण नवीन तत्व की व्याख्या करते हैं। भगवान् की प्राप्ति के तीन साधन हैं—(1) भगवान् में चित्त को लगाना , (2) भगवान् को सब कर्मो को समर्पण करना, (3) संसार के सब विषयों से राग से रहित होना। चित्तावेश का प्रधान उपाय है- योग का अभ्यास। योग-विधि के द्वारा चित्त को एकाग्र कर भगवान् में लगाया जा सकता है। कालिदास 'योग' के बड़े भारी पक्षपाती हैं। उनका कहना है (कुमार0 6/77)—

योगिनो यं विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तरवर्तिनम्।
अनावृत्ति-भयं यस्य पदमाहुर्मनीषिण:।।

रघुवंश के अष्टम सर्ग के आरम्भ में रघु को योग-विधि के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का वृत्तान्त प्रामाणिक रूप से वर्णितहै। समग्र कर्मो को भगवान् को समर्पण करना चाहिये। कर्मो में

फलरूपी विषदन्त हैं जिसे तोड़ना नितान्त आवश्यक है। समस्त कर्म बन्धन रूप है। जब कर्मो का फल भगवान् को समर्पण किया जाता है तब वे बन्धनरूप नहीं होते, प्रत्युत वे मोक्ष के सहायक बन जाते हैं। भगवतगीता की यह सूक्ति इसी अर्थ की पोषिका है – रागादि तभी तक स्तेन (चोर) हैं, जो चित्त को चुराकर इधर-उधर अस्त -व्यस्त किया करते हैं; गृह तभी तक कारागार है- बन्धनभूत है, मोह तभी तक पैर का बन्धन है, जब तक हे कृष्ण ! तुम्हारे सेवक हम नहीं बन जाते भगवान् के भक्त सेवक बनते ही यह दशा बदल जाती है। उसी प्रकार कर्म बन्धन जरूर हैं, परन्तु ज्यों ही उनका फल भगवान् के चरणों में अर्पित कर दिया जाता है, त्यों ही उनका दोष दूर हो जाता है। बन्धन होने की अपेक्षा वे मोक्ष में सहायक होते हैं। श्रीमद्भागवत का महनीय श्लोक यह है-

तावद् रागादय: स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जाना: ।।

तीसरी बात है रागहीनता, वैराग्य। संसार के विषयों में प्रेम-भाव नितान्त बन्धन है। वैराग्य अत्यन्त आवश्यक है। 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध:' – पतञ्जलि ने चित्तनिरोध के उपायों में वैराग्य को विशेष महत्व दिया है।

इन उपायों से भगवान् की प्राप्ति होती है, जिससे सद्य: मोक्ष का उदय होता है। वह महत्वपूर्ण श्लोक गीता के निम्नलिखित श्लोक (17-65) पर अवलम्बित है-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि में ।।

कालिदास पक्के अद्वैतवादी थे। शास्त्र तथा आगमों ने सिद्धि के भिन्न-भिन्न मार्ग बतलाये हैं। परन्तु इन मार्गो का चरम लक्ष्य भगवान् ही हैं। जिस प्रकार गंगाजी के प्रवाह भिन्न-भिन्न मार्गो से प्रवाहित होते हैं, परन्तु अपने अन्तिम स्थान समुद्र में ही वे गिरते हैं तथा अपना जीवन सफल बनाते हैं (रघु0 10/26)-

बहुधाप्यगमैर्भिन्ना: पन्थान: सिद्धिहेतव:।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ।।

भारतीय धर्म तथा दर्शनका अन्तिम लक्ष्य है- भिन्नता में अभिन्नता की अनुभूति, नाना में एकता का साक्षात्कार। कालिदास ने अपने श्लोक में इसी उदात्त भावना को स्थान दिया है। इस श्लोक के भाव को जितना ही कार्य में परिणत किया जायगा उतना ही मंगल होगा और पारस्परिक विरोध तथा संघर्ष का अन्त होगा।

कालिदास : शिवसन्देश

राष्ट्रमंगल तथा विश्वकल्याण का मन्जुल सामरस्य कालिदास के काव्यों में दृष्टिगत होता है। इस महाकवि की वाणी में जिस प्रकार आदिकवि वाल्मीकि की रसयवी धारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार उपनिषदों तथा गीता का अध्यात्म भी मंजुलरूप में अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। भारतीय ऋषियों के द्वारा प्रचारित चिरन्तन तथ्यों को मनोभिराम शब्दों में भारतीय जनता के हृदय में उतारने का काम कालिदास की कविता ने

सुचारू रूप से किया। कविता का प्रणयन मानव-हृदयकी शाश्वत प्रवृत्तियों तथा भावों का आलम्बन करके किया गया है। यही कारण है कि इसके भीतर ऐसी उदात्त भावना विद्यमान है जो भारतीयों को ही नहीं, प्रत्युत् मानवमात्र को सदा प्रेरणा तथा स्फूर्ति देती रहेगी। इस भारतीय कवि की वाणी में इतना रस भरा हुआ है, इतना जोश भरा हुआ है कि दो सहस्र वर्षो के दीर्घ काल ने भी उसमें किसी प्रकार का फीकापन नहीं उत्पन्न किया। उसकी मधुरिमा आज भी उसी प्रकार भावुकों के हृदय को रसमय करती है जिस प्रकार उसने अपनी उत्पत्ति के प्रथम क्षण में किया था। वैदिक धर्म तथा संस्कृति का भव्य रूप इन काव्यों में मधुर शब्दों में उपदिष्ट हैं। आज के युग में कालिदास का सन्देश बड़ा ही भव्य तथा ग्राह्यहै। मानवजीवन में नैराश्यवाद के लिये स्थान नहीं है। जो लोग इसे मायिक बतला कर नि:सार तथा व्यर्थ मानते है उनका कथन किसी प्रकार प्रामाणिक नहीं है। जो जीवन हम बिता रहे है तथा जिससे हम अपना अभ्युदय प्राप्त कर सकते हैं उसे सारहीन क्यों मानें ? कालिदास का कहना है कि देहधारियों के लिये मरण ही प्रकृति है। जीवन तो विकृति-मात्र है। जन्तु श्वास लेता हुआ यदि एक क्षण के लिये भी जीवित है तो यह उसके लिये लाभ है (रघु0 8/87)—

मरणं प्रकृति: शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधै।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ।।

इस जीवन को महान् लाभ मानना चाहिये तथा इसे सफल बनाने के लिए अर्थ, धर्म तथा काम का सामन्जस्य उपस्थित करना चाहिये। इस त्रिवर्ग में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है (त्रिवर्गसार: प्रतिभाति भामिनि- कुमार0 5/38), परन्तु अर्थ और काम अपनी स्वतन्त्रता और सत्ता बनाये रखने के लिए धर्म से विरोध करते है। धर्म को दबाकर अर्थ अपनी प्रबलता चाहता है। और धर्म को ध्वस्त कर काम भी अपना प्रभाव जमाना चाहता है। भगवान् श्रीकृष्ण के शब्द में –धर्म को ध्वसत कर काम भी अपना प्रभाव जमाना चाहता है। भगवान् श्रीकृष्ण के शब्द में 'धर्म से अविरूद्ध काम' भगवान् की ही विभूति है। कालिदास ने अपने काव्यों तथा नाटकों में 'धर्माविरूद्ध: कामोऽस्मि लोकेषु भरतवर्षभ' इस गीतावाक्य की सत्यता अनेक प्रकार से प्रमाणिता की है।

मदनदहन का रहस्य यही है। मदन चाहता था कि पार्वती के सुन्दर रूप का आश्रय लेकर समाधिनिरत शंकर के हृदय पर चोट करें। प्रकृति में वसन्त का आगमन होता है। लता वृक्ष पर झूल-झूल कर अपना प्रेम जताने लगती है। एक ही कुसुमपात्र में भ्रमरी अपने सहचर के साथ मधु पान करती हुई मत्त हो जाती है। व्याधि के समान मदन संसार को त्रस्त करने लगता है। वह अपनी आकांक्षा बढाता है और शंकर पर आक्रमण कर बैठता है। जगत् के कल्याण, आत्यन्तिक मंगल का ही तो नाम 'शंकर' है। विश्व का कल्याण मदन की उपासना में नहीं है, प्रत्युत उसके धर्मविरोधी रूप के दबाने में है। काम अपनी प्रभुता चाहता है। विश्व-कल्याण पर अपना मोहन बाण छोड़ता है। शंकर अपना तृतीय नेत्र खोलते हैं। तृतीय नेत्र 'ज्ञाननेत्र' है, जो प्रत्येक मनुष्य के भ्रूमध्य में विद्यमान है, परन्तु सुप्त

होने से हमे उसके अस्तित्व का पता चलता। शंकर का वह नेत्र जाग्रत है। इसी ज्ञान की ज्वाला में मदन का दहन होता है। धर्म से विरोधवाला काम भस्म की राशि बन जाता है। शंकर को वश में करने के लिये पार्वती तपस्या करती है जो धर्मसिद्धिका प्रधान साधन है। विना अपना शरीर तपाये तथा विना हृदय-स्थित दुर्वासना को जलाये धर्म की भावना जाग्रत नहीं होती। कालिदास ने काम का जलना दिखाकर यही चिरन्तन तथ्य प्रकट किया। पार्वती ने घोर तपस्या कर अपना अभीष्ट प्राप्त किया। इस प्रकार कालिदास की दृष्टि में काम तथा धर्म के परस्पर संघर्ष में हमें काम को दबा कर उसे धर्मानुकूल बनाना ही पड़ेगा। जगत् का कल्याण इसी साधना में सिद्ध होता है।

व्यक्ति तथा समाज का गहरा सम्बन्ध है। व्यक्ति की उन्नति वांछनीय वस्तु है, परन्तु इसकी वास्तविक स्थिति समाज की उन्नति पर अवलम्बित है। व्यक्तियों के समुदाय का ही नाम 'समाज' है। कालिदास वैयक्तिक उन्नति के पक्षपाती हैं। उनका समाज श्रुतिस्मृति के आधार पर निर्मितसमाज है। वह त्याग के लिये धन इकट्ठा करता है। सत्य के लिये परिमित भाषण करता है। यश के लिये विजय की अभिलाषा रखता है, प्राणियों तथा राष्ट्रों को पददलित करने के लिये नहीं। गृहस्थी में निरत होता है सन्तान उत्पन्न करने के लिये , कामवासना की पूर्ति के लिये नहीं। कालिदास द्वारा चित्रित नरपति भारतीय समाज का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं। वे शैशव में विद्या का अभ्यास करते हैं, यौवन में विषय के अभिलाषी है; वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण कर सारे प्रपंच से मुँह मोड़ कर निवृत्ति-मार्ग के अनुयायी बनते हैं तथा अन्त में योग द्वारा अपना शरीर छोड़कर परम पद में लीन हो जाते हैं। यह आदर्श भारतीय समाज की अपनी विशेषता है(रघु0 1/7-8)—

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषुणां प्रजायै गृहमेधिनाम॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम॥

यज्ञ - उपनिषदों में धर्म के तीन स्कन्ध प्रतिपादित हैं- यज्ञ, अध्ययन और दान। इनके अतिरिक्त 'तप:' की महिमा से भारतीय धार्मिक साहित्य भरा पड़ा है। कालिदास ने इन स्कन्धों का विवेचन स्थान-स्थान पर बड़ी ही मनोरम भाषा में किया है। यज्ञ का महत्व वे स्वीकार करते हैं। पुरोहित यज्ञ के रहस्यों का ज्ञाता होता है। राजा दिलीप यह बात भली-भाँति जानते हैं कि वसिष्ठ जी के यथाविधि सम्पादित होम द्वारा जल की वृष्टि होती है, जो अकाल से सुखने वाले शस्य को हरा-भरा बनाती है(रघु0 1/62)—

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवतिशस्यानामवग्रहविशोषिणाम्।

नटराज तथा देवराज- दोनों का काम परस्पर संयोग से मानवों की रक्षा करना है। नरराज पृथ्वी को दुह कर उससे सुन्दर वस्तुएँ प्राप्त कर यज्ञ का सम्पादन करता है और देवराज इसके

बदले में शस्य उत्पन्न होने के लिये आकाशसे दुहकर पुष्कल वृष्टि करता है। इस प्रकार ये दोनों शासक अपनी सम्पत्ति का विनिमय कर उभर लोक का कल्याण करते है(रघु0 1/26)

दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवम्।
सम्पद्विनिमयोनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्॥

यज्ञपूत जल के द्वारा अनेक अलौकिक पदार्थो की सिद्धि हमारे महाकवि को मान्य है। उसे वसिष्ठ जी ने मन्त्रपूत जल से अभिमन्त्रित कर दिया है और उसमें आकाश, नदी, पहाड़ आदि विकट तथा विषम मार्गो पर चलने की अपूर्व क्षमता है। इस प्रकार कालिदास की दृष्टि में सामाजिक कल्याण के साधनों मे यज्ञ का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

दान-दान की गौरवगाथा गाते हुए हमारे महाकवि कभी श्रान्त नहीं होते । समाज आदान-प्रदान की भित्ति पर अवलम्बित है। धनी-मानी व्यक्ति का संचित धन केवल उन्हीं की आवश्यकता अथवा व्यसन पूरा करने के लिये नहीं है, प्रत्युत उसका सदुपयोग उन निर्धनों की उदर-ज्वाला शान्त करने में भी ।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

1. वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये
   ..... वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥
2. या सृष्टि: स्रष्टु राद्या वहति विधिहुतं ..... ।
3. उपमा कालिदासस्य .....
   दण्डिन: पद लालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणा: ॥

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये –

1. शाकुन्तलम का नायक कौन है।
क.नल ख. दुष्यन्त ग. उदयन घ.कोई नही
2. शाकुन्तलम का नायक किस कोटि का है।
क.धीरोदात्त ख. धीरोद्धत ग. धीरललित घ.कोई नही
3. दुष्यन्त किस वंश का राजा था।
क. पुरू ख. सूर्य ग. चन्द्र घ.अग्नि

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि साहित्य की भाषा में अद्वय योग रहता है, अभिव्यक्त अलंकार-भाषा का यह समस्त सौन्दर्य-कटककुण्डलावदिवतु कहीं बाहर से जोड़ा हुआ नहीं रहता, प्रत्युत वह काव्यपुरूष का स्वाभाविक देह –धर्म होता है। अभिनव गुप्त ने भी स्पष्ट ही कहा है- 'न तेषां बहिरंगत्वं रसाभिव्यक्तौ'। इस विषय में महाकवि कालिदास भी अद्वयवादी थे:-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत: पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

वाक् तथा अर्थ का – काव्य की अन्तर्निहित भाववस्तु एवं उसके अभिव्यन्जक शब्द का परस्पर नित्य सम्बन्ध है, जैसे विश्वसृष्टि के आदि माता-पिता पार्वती-परमेश्वर का त्रिगुणात्मिका शक्ति ही विशुद्ध चिन्मय शिव की विश्व में अभिव्यक्ति का कारण बनती है। शिव के आश्रयविना शक्ति की लीला नहीं, शक्ति के विना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं; वह शवमात्र होता है। साहित्य के क्षेत्र में भी भावरूप महेश्वर एवं शब्दरूपा पार्वती-दोनों ही एक दूसरे के आश्रित हैं। महाकवि कालिदास की उपमा (या अलंकार) के प्रयोग के अवसर पर इस तथ्य का अनुशीलन नितान्त आवश्यक है कि रसानुभति की समग्रता को वर्ण, चित्र तथा संगीत में जो भाषा जितना अधिक मूर्त कर सकेगी, वह भाषा उतनी ही सुन्दर एवं मधुर होगी। कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि में निरत भूतभावन शंकर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया है उसका सौन्दर्य नितान्त अनुपम है। इस प्रकार इस इकाई में वर्णन किये गये तथ्यों के आधार पर आप कालिदास के प्रकृति चित्रण, पात्र चित्रण, चरित्र चित्रण से लेकर भाषा शैली से सम्बद्ध अनेक बातों का अध्ययन कर सम्यक् रूप से कालिदास की नाट्यकला का वर्णन कर सकेंगे।

4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान की पूर्ति–

1. जगत: पितरौ
2. या हवि: या चहोत्रि
3. भारवे अर्थ गौरवम्

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. **ख. दुष्यन्त** 2. **क.धीरोदात्त** 3. **क. पुरू**

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि कालिदास की नाट्य कला पर एक निबन्ध लिखिये ।
2. कालिदास के उपमा प्रयोग काव्य का विस्तृत वर्णन कीजिये।
3. प्रकृति चित्रण की दृष्टि से कालिदास की वर्णन शैली पर निबन्ध लिखिये ।

इकाई 5. महाकवि माघ का जीवन परिचय, समय एवं कृतियों का महत्व

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 माघ का जीवन परिचय एवं समय
5.3.1 कृतियों का महत्व
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के इतिहास वर्णन क्रम से सम्बन्धित यह पॉचवी इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने रामायण एवं महाभारत जैसे विशालकाय साहित्यिक ग्रन्थों तथा कालिदास से ही सम्बन्धित तथ्यों का संक्षिप्त अध्ययन किया है।

प्रस्तुत इकाई में परवर्ती कवियों की गणना श्रृंखला में उपमा तथा गौरव एवं पदलालित्य जैसे तीनों गुणों को एक साथ धारण करने वाले कवि माघ के व्यक्तित्व एवं उनके कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के प्रतिष्ठित कवि हैं। जिस प्रकार कालिदास उपमा के लिये प्रसिद्ध है, भारवि अपने अर्थगौरव वर्णन के लिये प्रसिद्ध है, दण्डी अपने रचनाओं में लालित्य प्रयोग के लिये प्रसिद्ध है। उसी प्रकार माघ उपर्युक्त तीनों गुणों के लिये समन्वित रूप से प्रसिद्ध है। इनके विषय में कहा जाता है कि - नवसर्ग गतेमाघे नव शब्दो न विद्यते। शिशुपाल वध महाकाव्य इनकी रचना है जो वृहत्त्रयी में परिगणित है।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप माघ रचित ग्रन्थों के संक्षिप्त वर्णन के आधार पर उनकी भाषा शैली, काव्य कला तथा संस्कृत साहित्य में उनका स्थान एवं अन्य साहित्यिक समस्त शैलियों, वर्णन प्रकारों का समुचित प्रयोजन बता सकेंगे। साथ ही यह भी समझा सकेंगे कि मूल रूप से माघ किस रीति के समर्थक कवि थे।

5.2 उद्देश्य

महाकवि माघ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे कि –

- माघ का संस्कृत साहित्य में स्थान क्या है ।
- माघ की भाषा शैली क्या है ।
- माघ किस कवि से प्रभावित है ।
- शिशुपालवध में प्रधान रूप से किसका वर्णन है।
- इस महाकाव्य में कितने सर्गों में कथावस्तु का वर्णन है ।
- शिशुपाल वध का नायक – नायिका तथा अंगीरस कौन है।

5.3 माघ का परिचय एवं समय

शिशुपालवध के कर्ता का नाम 'माघ' है। डॉक्टर याकोवी का मत है कि जिस प्रकार 'भारवि' ने अपनी प्रतिभा की प्रखरता सूचित करने के लिए 'भा-रवि' (सूर्य का तेज) नाम रखा, उसी भॉति शिशुपालवध के अज्ञातनामा रचयिता ने अपनी कविता से भारवि को ध्वस्त करने के लिए 'माघ' का नाम धारण किया, क्योंकि माघमास में सूर्य की किरणे ठंडी पड़ जाती हैं। परन्तु यह कल्पना बिल्कुल निराधार जान पड़ती है शिशुपालवध के कर्ता का व्यक्तिगत नाम ही 'माघ' है, उपाधि नहीं। माघ की जीवन घटनाओं का पता 'भोजप्रबन्ध' तथा ''प्रबन्ध-चिन्तामणि' से लगता है। दोनों पुस्तकों में प्राय: एक –सी

कहानी दी गयी है। माघ के जीवन की रूपरेखा को हम जान सकते हैं।

जीवनी- माघ के दादा सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के, जो गुजरात के किसी प्रदेश का शासक था, प्रधान मन्त्री थे। अत: माघ कवि का जन्म एक प्रतिष्ठित धनाढय ब्राह्मणकुल में हुआ था। इनके पिता 'दत्तक' बडे. विद्वान् तथा दानी थे । गरीबों की सहायता में इन्होंने अपने धन का अधिकांश भाग लगा दिया। माघ का जन्म भीन-माल में हुआ था। यह गुजरात का एक प्रधान नगर था, जो बहुत दिनों तक राजधानी तथा विद्या का मुख्य केन्द्र था। प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने 625 ई0 के आस-पास अपने 'ब्रह्म्गुप्तसिद्धान्त' को यही बनाया। इन्होंने अपने को 'भीनमल्लाचार्य लिखा है। हुवेनसांग ने भी इसकी समृद्धि का वर्णन किया है । पिता की दानशीलता का प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा। ये भी खूब दानी निकले। राजा भोज से इनकी बड़ी मित्रता थी । राजा भोज का इन्होने अपने घर पर बड़े आवभगत से सत्कार किया। धीरे-धीरे अधिक दान देने से निर्धन हो गये। यह धारा का प्रसिद्ध राजा भोज नहीं हो सकता। इतिहास इसे असंभव सिद्ध कर रहा है। अत एव कुछ लोग 'भोजप्रबन्ध' की कथा पर विश्वास नहीं करते, परन्तु इतिहास में कम से कम दो भोज अवश्य थे। एक तो प्रसिद्ध धारानरेश भोज (1010-50 ई0) थे और दूसरे भोज सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुए। सम्भवत: इसी दूसरे राजा के समय में माघ हुए थे। 'भोजप्रबन्ध' ने दोनों भोजों की कथाओं में हड़बड़ी मचा डाली हैं।

माघ अपने मित्र भोज के पास आश्रय के लिए आये, 'भोज-प्रबन्ध' में लिखा है कि इनकी पत्नी राजा के पास 'कुमुदवनमपश्रिश्रीमदम्भोजखण्डमद्' आदि पद्यको, जो माघ – काव्यके प्रभात-वर्णन (11सर्ग) में मिलता है, ले गयी ।इस पद्य को सुनकर राजाने प्रभूत धन दिया। उसे लेकर माघ-पत्नी ने रास्ते में दरिद्रों को बांट दिया। माघ के पास पहुँचने पर उसकी पत्नी के पास एक कोड़ी भी न बची रही, परन्तु याचकों का ताँता बँधा ही रहा। कोई उपाय न देखकर दानी माघ ने अपने प्राणछोड़ दिये। प्रात:-काल भोज ने माघ का यथोचित अग्नि संस्कार दिया और बहुत दु:ख मनाया। माघ की पत्नी भी सती हो गयी।

माघ के जीवन की यही घटना ज्ञात है। यह सच्ची है या नहीं ,परन्तु इतना तो हम नि:सन्देह कह सकते है कि माघ परम्परानुसार एक प्रतिष्ठित धनाढय ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। जीवन के सुख की समग्र सामग्री इनके पास थी। पिता ने इन्हे शिक्षा दी थी। पिता के समान ही ये दानी तथा उपकारी थे। सम्भवत: भोज के यहाँ इनका बडा मान था।

समय- माघ के समय-निरूपण के लिए एक संदेह –हीन प्रमाण उपलब्ध हुआ है। आनन्दवर्धन ने शिशुपालवध के दो पद्यों को ध्वन्यालोक में उदाहरण के लिए उद्धृत किया है- रम्या इति प्राप्तवती: पताका: (3/53) तथा त्रासाकुल: परिपतन् (5/26)। फलत: माघ आनन्दवर्धन (नवम शती का पूर्वार्ध) से प्राचीन हैं। एक शिलालेख से इसका यथार्थ ज्ञान होता है। डॉ0 कीलहार्न को राजपुताने के 'वसन्तगढ' नामक किसी स्थान से 'वर्मलात' राजा का एक शिलालेख मिला है। शिलालेख का समय संवत्682, अर्थात् 625 ई0 है शिशुपालवधकी हस्तलिखित प्रतियों में सुप्रभदेव के आश्रयदाता का नाम भिन्न-भिन्न मिलता है। धर्ममान, वर्मनाम, धर्मलात,

वर्मलात आदि अनेक पाठ भेद पाये जाते हैं। भीनमाल के आसपास के प्रदेश में इस शिलालेख की उपलब्धि से डॉक्टर किलहार्न 'वर्मलात' को असली पाठ मानकर इस राजा तथा सुप्रभदेव के आश्रयदाता को यथार्थत: अभिन्न मानते हैं। अत: सुप्रभदेव का समय 625 ई0 से लेकर700 ई0 के पास है। अत एव इनके पौत्र माघ का समय भी लगभग 650 ई0 से लेकर700 ई0 तक होगा,अर्थात् माघ का आविर्भाव काल सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध मानना उचित है।

ग्रन्थ—

माघ का केवल एक ही महाकाव्य 'शिशुपालवध' है। श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपाल के वध का सांगोपांग वर्णनहै। यही 'शिशुपालवध' महाकाव्य का वर्ण्य विषय है। इसका प्रेरणास्रोतमुख्यतया श्रीमद्भागवत है, गौण रूप से महाभारत।वैष्णव माघ के ऊपर भागवत अपना प्रभाव जमाये था। फलत: उसी के आधार पर कथा का विन्यास है। सर्गो की संख्या 20 तथा श्लोको की 1650 (एक हजार छ: सौ पचास)। द्वारका में श्रीकृष्ण के पास नारद पधारकर दुष्टों के वध के लिए प्रेरणा देते हैं (1सर्ग) युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें जाने के लिए बलराम तथा उद्धव द्वारा मन्त्रणा द्वारा निश्चय किया जाता है (2सं0) श्रीकृष्ण दलबल के साथ इन्द्रप्रस्थ की यात्रा करते है (3सं0) तदनन्तर महाकाव्य के पूरक विषयों का वर्णन आरम्भ होता है। रैवतक का (4 सं0), कृष्ण के रैवतक-निवास का (5 सं0) , ऋतुओं का (6स0) ,वनविहार का (7स0), जलक्रीड़ा का (8स0) ,सूर्यास्त तथा चन्द्रोदयका (9स0) , मधुपान और सुरतका (10सं0), पाण्डवों से मिलन तथा सभा प्रवेश का (13 स0), राजसूययाग तथा दान का (14सं0),शिशुपाल द्वारा विद्रोहका(15 स0), दूतों की उक्त-प्रत्युक्ति का (16 सं0), सभासदों के क्षोभ तथा युद्धार्थ कवचधारण का (17 स0),युद्धका (18 तथा 19 स0) तथा श्रीकृष्ण और शिशुपाल के साथ द्वन्द्व युद्ध का वर्णन 20 सर्ग में निष्पन्न होता है। इस विषयसूची पर आपातत:दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि लघुकाय वृत्त को परिवृंहित कर महाकाव्यत्व के निर्वाह के लिए माघ ने आठ सर्गो की योजना (4 सर्ग-11 सर्ग) अपनी प्रतिभा के बल पर की है। अलंकृत महाकाव्य की यह आदर्श कल्पना महाकवि माघ का संस्कृत साहित्य को अविस्मरणीय योगदान है, जिसका अनुसरण तथा परिबृंहण कर हमारा काव्यसाहित्य समृद्ध, सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हुआ है।

माघ और भारवि

माघ के महाकवि होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। माघ ने साम्प्रदायिक प्रेम से उत्तेजित होकर अपने पूर्ववर्ती 'भारवि' से बढ़ जाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। भारवि शैव थे, जिनका काव्य शिव के वरदान के विषय में है; माघ वैष्णव थे, जिन्होंने विष्णु-विषयक कहाकाव्य की रचना की। वह स्वयं अपने ग्रन्थ को 'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्र-विषयक महाकाव्य की रचना की। वह स्वयं अपने ग्रन्थ को 'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारू' कहते हैं। भारवि की कीर्ति को ध्वस्त करने में माघ ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा। 'किरातार्जुनीय' को अपना आदर्श मानकर भी माघ ने अपने काव्य में बहुत कुछ अलौकिकता पैदा कर दी है। किरात के समान ही माघ-काव्य भी मंगलार्थक 'श्री' शब्द से आरम्भ होता है। किरात के आरम्भ में 'श्रिय:कुरूणामधिपस्य

पालनी' है, उसी प्रकार माघ के प्रारम्भ में 'श्रिय:पति: श्रीमति शासितुं जगत्' है। भारवि ने किरात में प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है। माघ ने इसी तरह अपने काव्य के सर्गान्त पद्योमें 'श्री' का प्रयोग किया है।

शिशुपालवध तथा किरातार्जुनीय के वर्ण-कर्म में समानता है। दोनों महाकाव्यों के प्रथम सर्ग में सन्देश-कथन है। दूसरे सर्ग में राजनीति-कथन है। अनन्तर दोनों में यात्रा का वर्णन है। ऋतु-वर्णन भी दोनों में है- किरात के चतुर्थ सर्ग में तथा माघ के षष्ठ सर्ग में। पर्वत का वर्णन भी एक समान है- किरात के पॉचवें सर्ग में हिमालय का तथा माघ के चौथे सर्ग में रैवतक पर्वत का। अनन्तर दोनों में संध्याकाल, अंधकार, चन्द्रोदय, सुन्दरियों की जलकेलि- आदि विषयों के वर्णन कई सर्गो में दिये गये है। किरात के तेरहवें तथा चौदहवें सर्ग में अर्जुनतथा किरातरूपधारी शिव में बाण के लिये वाद-विवाद हुआ है, माघ के सोलहवें सर्ग में ऐसा ही विवाद शिशुपाल के दूत तथा सात्यकि के बीच हुआ है। किरात के पंद्रहवें तथा माघ के उन्नीसवें सर्ग में चित्रबंधों में युद्ध-वर्णन है। इस प्रकारसमता होने पर भी रसिक जन माघ के सामने भारवि को हीन समझते है- **तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय:।**

'माघे सन्ति त्रयो गुणा:।' उपमा, अर्थ-गौरव तथा पदलालित्य- इन तीनों गुणों का सुभग दर्शन ही में माघ की कमनीय कविता में होता है। बहुत से आलोचक पूर्वोक्त वाक्य को किसी माघ-भक्त पण्डित का अविचारितरमणीय हृदयोद्गार भले ही बतावें परन्तु वास्तव में पूर्वोक्त आभाणक में सत्यता है। माघ में कालिदास जैसी उपमाऐं भले न मिलें, फिर भी इनमें न सुन्दर उपमाओं का अभाव है, न अर्थगौरव की कमी। पदों का ललित विन्यास तो नि:सन्देह प्रशंसनीय है। माघ की 'पदशय्या' इतनी अच्छी है कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता।

माघ की विद्वत्ता

माघ केवल सरस कवि ही नहीं थे, प्रत्युत एक प्रकाण्ड सर्वशास्त्र–तत्वज्ञ विद्वान् भी थे। भारवि में राजनीति-पटुता अवश्य दीख पडती है, श्रीहर्ष में दार्शनिकउद्भटता अवश्य उपलब्ध होती है, परन्तु माघ में सर्वशास्त्रों का जो परिनिष्ठितज्ञान दृष्टिगोचर होता है वह उन दोनों कवियों में विरल है। उनमें भी पाण्डित्य है, परन्तु वह केवल एकाङ्गी है। परन्तु माघ का पाण्डित्य सर्वगामी है। माघ का श्रुति-विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है। प्रात:काल के समय इन्होने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन किया है। हवनकर्म में आवश्यक सामधेनी ऋचाओं का उल्लेख है (11/41)। वैदिक स्वरों की विशेषता भी आपको भली-भॉति मालूम थी। स्वरभेद से अर्थभेद हो जाया करता है इस नियम का उल्लेख मिलता है (14/24)। एक पद में होनेवाला उदात्त स्वर अन्य स्वरोंको अनुदात्त बना डालता है- एक स्वर के उदात्त होने से अन्य स्वर 'निधात' हो जाते हैं। इस स्वर-विषयक प्रसिद्ध नियम का प्रतिपादन माघ ने शिशुपाल के वर्णन में बडी सुन्दर रीति से किया है - निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्त: स्वरानिव (2/95)। चौदहवें सर्ग में युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञ का बडा ही विस्तृत तथा सुन्दर वर्णन किया हुआ मिलता है। दर्शनों का भी विशिष्ट ज्ञानमाघ में दिखाई पडता है। सांख्य के तत्वों का निदर्शन अनेक स्थलों पर पाया

जाता है। प्रथमसर्ग में नारद ने श्रीकृष्णचन्द्र की जो स्तुति की है (1/23) वह सांख्य के अनुकूल है। योगशास्त्र की प्रवीणता भी देखने में आती है।'मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय' आदि (4/45) पद्य में चित्तपरिकर्म, सबीजयो,सत्वपुरूषान्यथाख्याति योगशास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं। आस्तिक दर्शनों को कौन कहे ? नास्तिक दर्शनों में भी माघ का ज्ञान उच्चकोटि का था। माघ बौद्धदर्शनों से भी भली-भॉति परिचित थे (2/28)। उसके सूक्ष्म विभेदों के भी ज्ञाता थे। वे राजनीति के भी अच्छे जानकार थे। बलराम तथा उद्धव के द्वारा राजनीति की खूबियॉं दिखलायी गयी हैं। माघ ने नाटयशास्त्र के विभिन्न अंगों की उपमा बडी सुन्दरता से दी है। माघ एक प्रवीणवैयाकरण थे। उन्होने व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थों का भी उल्लेख उन्होने किया है। माघ सांख्योग के पारखी कवि हैं, तो श्रीहर्ष अद्वैत वेदान्त के मर्मज्ञ कवयिता है। माघ का ज्ञान ललित कलाओं में भी ऊँची कक्षा का था। वे संगीतशास्त्र के सूक्ष्म विवेचक थे (माघ 11/1)। जगह-जगह पर संगीत-शास्त्र के मूल तत्वों का निदर्शन कराया गया है। अलंकार-शास्त्र में माघ की प्रवीणता की प्रशंसा करना व्यर्थ है। वह तो कवि का अपना क्षेत्र है। माघ ने राजनीति के गूढ़ तत्वों का वर्णन किया है।

अभ्यास प्रश्न

1. शिशुपाल का वध किसने किया।

क. कृष्ण ख. रूक्मि ग. द्रुपद घ. बलराम

2. शिशुपाल वध किसकी रचना है।

क. माघ ख. भारवि ग. श्रीहर्ष घ. कोई नहीं

3. माघ के दादा का क्या नाम था।

क. सुप्रभदेव वर्मलात ख. प्रभदेव ग. सुकर्म घ. कीर्तिमान

4. 'ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त' किसकी रचना है।

क. ब्रह्मगुप्त ख. भास्कराचार्य ग. कमलाकर भट्ट घ. वराहमिहिर

5. ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त की रचना कब हुई।

क. 650 ई0 ख**. 625 ई0** ग. 635 ई0 घ. कीर्तिमान

6. माघ का जन्म कहॉ हुआ था।

क. महाराष्ट्र ख. मध्यप्रदेश ग. गुजरात घ.कोई नहीं

7. भारवि शब्द से तात्पर्य है –

क. चन्द्र की छाया ख. सूर्य की छाया ग. वृक्ष की छाया घ. किसी वस्तु की छाया

8. माघे सन्ति .....।

क. चतुर्गुणा ख. त्रयो गुणा: ग. पंच गुणा घ. षड् गुणा:

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको ज्ञात हुआ है कि माघ के महाकवि होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। माघ ने साम्प्रदायिक प्रेम से उत्तेजित होकर अपने पूर्ववर्ती 'भारवि' से बढ़ जाने

के लिए बड़ा प्रयत्न किया। भारवि शैव थे, जिनका काव्य शिव के वरदान के विषय में है; माघ वैष्णव थे, जिन्होंने विष्णु-विषयक महाकाव्य की रचना की । वह स्वयं अपने ग्रन्थ को 'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारू' कहते हैं। भारवि की कीर्ति को ध्वस्त करने में माघ ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा। 'किरातार्जुनीय' को अपना आदर्श मानकर भी माघ ने अपने काव्य में बहुत कुछ अलौकिकता पैदा कर दी है। किरात के समान ही माघ-काव्य भी मंगलार्थक 'श्री' शब्द से आरम्भ होता है। किरात के आरम्भ में 'श्रिय:कुरूणामधिपस्य पालनीं' है, उसी प्रकार माघ के प्रारम्भ में 'श्रिय:पति: श्रीमति शासितुं जगत् है। भारवि ने किरात में प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है। माघ ने इसी तरह अपने काव्य के सर्गान्त पद्योमें 'श्री' का प्रयोग किया है । शिशुपालवध तथा किरातार्जुनीय के वर्ण-कर्म में समानता है । दोनों महाकाव्यों के प्रथम सर्ग में सन्देश-कथन है। दूसरे सर्ग में राजनीति - कथन है। अनन्तर दोनों में यात्रा का वर्णन है। ऋतु-वर्णन भी दोनों में है- किरात के चतुर्थ सर्ग में तथा माघ के षष्ठ सर्ग में। पर्वत का वर्णन भी एक समान है- किरात के पॉचवें सर्ग में हिमालय का तथा माघ के चौथे सर्ग में रैवतक पर्वत का । अत: आप इस पाठ्यक्रम के समस्त खण्ड का अध्ययन करते हुये इस अन्तिम इकाई के अध्ययन के बाद वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ एवं भारवि आदि समस्त कवियों के काव्य कला कौशल को बताने में सक्षम हो सकेंगे।

5.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. **कृष्ण** 2. **माघ** 3. **सुप्रभदेव वर्मलात** 4. **क. ब्रह्मगुप्त** 5. ख**. 625 ई0** 6. ग. **गुजरात** 7. ख. सूर्य की छाया 8. ख. त्रयो गुणा:

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

5.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. माघ और भारवि की कला में अन्तर स्पष्ट कीजिये ।
2. माघ का जीवन परिचय एवं समय लिखिये ।

खण्ड- दो (Section-B)
संस्कृत साहित्य का इतिहास : भाग-2

इकाई 1. भारवि का व्यक्तित्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारवि का व्यक्तित्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1. 8 उपयोगी पुस्तकें
1. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व के खण्ड में आपने आदिकवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास एवं माघ का अध्ययन किया। साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड दो की यह पहली इकाई है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में भारवि का भी महत्व पूर्ण स्थान है। इनका एक मात्र ग्रन्थ किरातार्जुनीयम् प्रसिद्ध है। भारवि एक परम शैव सम्प्रदाय के थे। यह प्रमाण किरातार्जुनीयम् के शैव महात्म्य प्रतिपादक कथानक अवन्ति सुन्दरी कथा से स्पष्ट प्रतीत होता है। भारवि की अमर कीर्ति का आधार उनके प्रसिद्ध महाकाव्य किरातार्जुनीयम् पर आधारित है। इस महाकाव्य का मूल स्त्रोत महाभारत के वन पर्व से लिया गया है। इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिए अर्जुन की तपस्या को आधार बनाकर भारवि के 18 सर्गो में इस महाकाव्य का सृजन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप महाकवि भारवि के विषय में विस्तार से बता सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् भारवि रचित किरातार्जुनीयम् के महत्त्व पूर्ण बातों का अध्ययन करगें-

- भारवि के व्यक्तित्व के विषय में आप अध्ययन करेगें
- भारवि के कृतियों के विषय में आप अध्ययन करेगें
- भारवि के समय के विषय में आप अध्ययन करेगें
- महाकाव्य का नायक के विषय में परिचित होगें
- किरातार्जुनीयम् में 18 सर्ग हैं। इसके के विषय में परिचित होगें

1.3 भारवि का व्यक्तित्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय

महाकवि भारवि का परिचय- कालिदास और अश्वघोष के बाद तृतीय उल्लेखनीय महाकवि भारवि हैं , पर इनका काव्य मार्ग जिसे काव्य क्षेत्र में विचित्र मार्ग भी कहा जाता है , कालिदास से भिन्न है और यही इस मार्ग के प्रवर्तक महाकवि हैं। अतः स्पष्ट है कि कालिदास पश्चात्वर्ती काव्यकारों में महाकवि भारवि सर्वश्रेष्ठ प्रथम कवि हैं , इनके उत्तरकालीन माघ , भवभूति , श्री हर्ष आदि कवियों ने इनके ही विचित्र मार्ग का अनुसरण किया है। इस युग के काव्यों में कलापक्ष का परम साध्य बन गया है। संस्कृत महाकाव्यों में रचना कौशल और भावाभिव्यंजना की दृष्टि से वृहत्रयी और लघुत्रयी प्रसिद्ध है। प्रथम में किरातार्जुनीयम्, शिशुपाल वध तथा नैषधीयचरितम् नामक महाकाव्य है और कालिदास के तीनकाव्य रघुवंश , कुमारसंभव और मेघदूत ' लघुत्रयी में माने जाते हैं। इस प्रकार वृहत्त्रयी में भारवि सर्वश्रेष्ठ प्रथम कवि है। भारवि ने प्रचलित भाव पक्ष प्रधान काव्य धारा को एक नया मोड़ देकर उसमें कलापक्ष को अधिक महत्त्व प्रदान किया , अतः इसके काव्यों में जहाँ एक ओर पदों के अर्थो का गाम्भीर्य है , वहाँ दूसरी ओर विविध मनोरम अलंकारों की शोभा का चमत्कार है। अर्थगरिमा , सुन्दर

पदविन्यास और अलंकारों की सजावट ही भारवि का सबसे बड़ा काव्य-कौशल है। भारवि अपने समय के राजनीति के प्रकाण्ड पंडित थे और विविध शास्त्रों के अध्येता कवि थे।

भारवि का समय

संस्कृत साहित्य के महत्त्वपूर्ण काव्यकारों में भारवि का विशिष्ट स्थान है। इनके जीवनचरित के विषय में इनका एकमात्र ग्रन्थ ' किरातार्जुनीयम् ' एकदम मौन है। इनके समय आदि का ज्ञान हमें बहिरंग से प्राप्त होता है। भारवि के काव्य में कालिदास की रचनाओं का बहुत अनुकरण है -- ऐसा विद्वानों का अभिप्राय है अतः भारवि का कालिदास के बाद होना निश्चित है। माघ (600 ई.) पर भारवि की स्पष्ट छाप है। गद्य सम्राट महाकवि बाण (सप्तम शती का पूर्वार्द्ध) अपने हर्षचरित में भारवि के नाम का उल्लेख नहीं करते। अतः अनुमान होता है कि उनके काल तक भारवि का यश विशेष विस्तृत नहीं हुआ था। सर्वप्रथम भारवि नाम ऐहोल (634 ई.) के शिलालेख मे मिलता है। यह शिलालेख दक्षिण में बीजापुर जिले के ऐहोल नामक ग्राम के एक जैन मन्दिर में मिला है। शिलालेख की प्रशस्ति दक्षिण के चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी द्वितीय के आश्रित रविकीर्ति नामक किसी जैन कवि के द्वारा अपने आश्रयदाता के विषय में लिखी गई है। प्रशस्ति की समाप्ति पर रविकीर्ति अपने आपको कविता निर्माण की कला में कालिदास तथा भारवि के समान यशस्वी बतलाता है।

काशिका वृति में जिसकी रचना वामन और जयादित्य द्वारा 650 ई. के लगभग की गई थी , भारवि की ' किरातार्जुनीयम् ' से एक उदाहरण दिया गया है , इससे प्रतीत होता है कि भारवि अब तक एक के रुप में प्रसिद्ध हो चुके थे , अतः भारवि की स्थिति सातवीं शताब्दी के पूर्व मानी जा सकती है। गंगनरेश दुर्विनीत के शिलालेख से यह सिद्ध होता है कि दुर्विनीत ने ' किरातार्जुनीयम् ' के पन्द्रहवें सर्ग पर टीका लिखी थी। पन्द्रहवाँ सर्ग चित्रकाव्य है। अतः क्लिष्ट है। इसलिए उस पर टीका लिखना वैदुष्य का काम है। राजा दुर्विनीत का काल वि. सं. 538 (ई. 481) है। दुर्विनीत के इस उल्लेख से भारवि का समय पंचम शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। दुर्विनीत के इन शिलालेखों से यह सिद्ध होता है कि पंचम शताब्दी के अन्तिम चरण तक भारवि की कीर्ति प्रभा दक्षिण भारत में पूर्णतः प्रकाशित हो चुकी थी ।अवन्तिसुन्दरी कथा के आधार पर यह सिद्ध होता है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले और पुलकेशीद्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन के सभा-पण्डित थे। विष्णुवर्धन का शासन काल 615 ई. के आसपास होना चाहिए। किन्तु 'अवन्ति सुन्दरी ' के कथन एवं साक्ष्य की अपेक्षा शिलालेखों का प्रामाण्य अधिक आदरास्पद एवं विश्वसनीय है।

1. येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कवतिश्रितकालिदास भारविकीर्तिः ॥
2. सदावतारकारेण देवभारतीनिबद्धवडकथेन किरातार्जुनीयपंचदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन।

भारवि का स्थान और जीवन-वृत्त

भारवि के समय की भाँति इनका जीवन वृतान्त भी अभी तक कहीं भी उपलब्ध नहीं हुआ है। इनके महाकाव्य से इस विषय में तनिक भी सहायता नहीं मिलती है। पूरे ग्रन्थ में कवि ने अपने विषय में कहीं भी परिचयात्मक संकेत कुछ भी नहीं लिखा है। परन्तु सबसे पहले दक्षिण के एक शिलालेख में इनका नामोल्लेख पाया जाता है। अनुमान यही होता है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले थे। इस अनुमान की हाल ही में यथेष्ट पुष्टि हुई है। अभी कुछ वर्ष बीते आचार्य दण्डी विरचित गद्यात्मक अवन्तिसुन्दरी कथा तथा उसी का पद्यात्मक अवन्तिसुन्दरी कथासार नामक सारांश उपलब्ध हुए हैं , जिनसे भारवि के विषय में भी बहुत कुछ बातें ज्ञात हुई हैं। सौभाग्यवश दण्डी ने कथा के आरम्भ में अपने पूर्वजों का वृतान्त विस्तार के साथ दिया है जिसमें लिखा है कि दण्डी के चतुर्थ पूर्वपुरुष, जिनका नाम दामोदर था, नासिक के समीपस्थ अपनी जन्म भूमि को छोड़कर दक्षिण प्रान्त में चले गये। अवन्ति सुन्दरी कथा के सम्पादक पण्डित रामकृष्ण कवि ने इन्हीं दामोदर के साथ भारवि की एकता मानी है अर्थात् उनकी सम्मति में भारवि ही आचार्य दण्डी के चतुर्थ पुरुष (प्रपितामह) थे, परन्तु जिस पद्य के आधार पर यह अभिन्नता मानी जाती है उसके पाठ अशुद्ध होने के कारण इस सिद्वान्त को अब बदलना पड़ा है। भारवि दण्डी के प्रपितामह नहीं थे प्रत्युत प्रपितामह के मित्र थे , क्योंकि भारवि की सहायता से ही दामोदर राजा विष्णुवर्धन की सभा में प्रविश्ट हुए। जो कुछ हो , इतना तो निश्चित है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले थे और चालुक्यवंशी नरेश विष्णुवर्धन के सभापण्डित थे। कुछ विद्वानों ने भारवि को त्रावणकोर प्रदेश का निवासी सिद्व किया है। भारवि का जीवन वृतान्त भी अन्धकारमय है केवल कुछ किवदन्तियाँ ही उनके संबंध में संस्कृत कवियों से सुनी जाती हैं। एक किंवदन्ति उनको धारा नगरी का निवासी तथा राजा भोज का समकालीन बतलाती है। पिता का नाम श्रीधर तथा माता का नाम सुशीला बतलाया गया है। रसिकवती कन्या से उनका विवाह हुआ था जो कि भडौच के निवासी चन्दकीर्ति की पुत्री थी। यद्यपि भारवि के पिता भी उच्चकोटि के विद्वान् थे , पर भारवि उनसे भी बढ़कर थे। सुनते हैं कि इनके पिता अपने पुत्र के वैदुष्य से परिचित होने पर भी सभा में इनका इसलिए तिरस्कार किया करते थे जिससे वे पाण्डित्य बढ़ाने में , शास्त्राभ्यास करने में और दत्तचित् हों ,परन्तु पण्डित समाज में अपनी निन्दा , जिस पर पिता के द्वारा की गई ; सुनकर भारवि मन ही मन जल भुन गए और पिता को मार डालने का निश्चय किया। एक रात मारने के लिए तलवार लेकर गए भी,परन्तु जब माता के सामने पिता के निन्दा के कारण को छिपकर सुना , तब बेचारे बड़े मर्माहत हुए , पिता के सामने गये और सरल हृदय की सच्ची बातें कह सुनाई। पितृघातरुपी घोर मानस के लिए पिता से प्रायश्चित भी पूछा ,पिता ने ससुराल में जाकर सेवावृत्ति स्वीकार करने को कहा। बेचारे ससुराल में और अपने ससुर की गायें नित चराया करते थे। इनकी धर्मपत्नी भी वहीं थी। कार्यवश पत्नी ने इनसे पैसे माँगे , परन्तु उस समय भारवि के पास पैसे कहाँ ? झट से इन्होंने अपना वह प्रसिद्ध पद्य पत्नी को किसी गुणग्राही साहूकार के पास गिरवी रखने के लिए दिया वह नीतिमय पद्य था।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परमपदां पदम्।

वृणुते हि विमृश्यकारिणां गुणलुब्धा: स्वयमेव सम्पद: ।।

पद्य के मर्म को समझने वाले किसी महाजन ने बहुत सा द्रव्य देकर इस पद्य को खरीद लिया और अपने शयनागार के सामने तख्ती पर इसे लिखकर लटका दिया। कार्यवश वह विदेश गया, वहाँ उसे कई वर्षो तक ठहरना पड़ा। जब लौटकर रात को घर आया , तब उसने अपनी पत्नी के पास ही किसी वयस्क पुरुष को सोते हुए पाया। पत्नी के कुव्यवहार से मर्माहत हो उसने सोते समय ही दोनों को मार डालने की ठानी परन्तु घर में घुसने के समय उसका माथा सहसा विद्धीत न क्रियाम् . वाली तख्ती से टकराया। उसने श्लोक पढ़ा- सहसा करने से रुक गया , पत्नी को जगाया। तब उसके आश्चर्य की सीमा न रही , जब उसने वयस्क पुरुष को अपना वहीं प्यारा इकलौता पुत्र पाया। कल्पित अनिष्ट की आशंका से उसका अंग सिहर गया उसने भारवि को बुलवाया , बड़ा सम्मान किया और पत्नी तथा पुत्र की जीवन रक्षा वाले श्लोक के रचयिता के सामने अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। भारवि परम शैव थे। यह तथ्य किरातार्जुनीय के शैव माहात्म्य प्रतिपादक , कथानक तथा अवन्तिसुन्दरी कथा के उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है। यह भी बात ज्ञात होती है कि निरन्तर राजसाहचर्य के कारण यह राजनीति के बड़े भारी पण्डित बन गए थे। राजशेखर ने लिखा है कि कालिदास तथा भतृमेष्ठ की तरह उज्जयिनी में भारवि की भी परीक्षा ली गई थी। जिसमें उत्तीर्ण होने पर इनके यश की वृद्धि हुई थी।

1. श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा

इह कालिदासमेष्ठावत्रामररुपसूरभारवय: ।

हरिश्चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ।।

दीपशिखा कालिदास की भाँति भारवि की भी ' आतपत्र भारवि ' संबा थी। काव्य रसिकों ने जिस उक्ति के उपर मुग्ध होकर इन्हें इस विरुद से विभूषित किया था , वह इस प्रकार है --

उत्फुल्लस्थलनलिनी वनादमुष्माउदधूत सरसिजसम्भव: पराग: ।

वात्याभिर्वियति विवर्तित: समन्तादाधन्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ।। किरात 5/39 ।।

स्थल कमलिनी के वन के विकसित हैं। उनसे पीत पराग झर रहे हैं। हवा झोंके से बह रही है। इससे पराग उड़कर आकाश में फैला जा रहा है। इस प्रकार कमल का पराग सुवर्ण-निर्मित छत्र की शोभा धारण कर रहा है। आकाश में फैला हुआ पराग सुवर्ण के बन छत्र की तरह जान पड़ता है।

श्लोक का भाव बिल्कुल अनुपम है, एकदम नवीन है। काव्य प्रेमियों को कवि का भाव इतना पसन्द आया कि उन्होंने भारवि को ' आतपत्र भारवि ' ही कहना प्रारम्भ कर दिया।

किरातार्जुनीयम् काव्य का कथानक

भारवि की अमरकीर्ति का आधार उनके सुप्रसिद्ध महाकाव्य " किरातार्जुनीय " पर अवलम्बित है। इस काव्य का मूल स्त्रोत महाभारत के वन पर्व से लिया गया है। इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिए की गयी अर्जुन की तपस्या को आधार बनाकर कवि ने 18 सर्गों में इस महाकाव्य का सृजन किया है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है --

प्रथम सर्ग - द्यूत क्रीड़ा में हारने के पश्चात् युधिष्ठिर अपने अनुजों के साथ द्वैतवन में रहने लगे,

किन्तु यहाँ भी वे दुर्योधन की ओर से चिन्तित हैं। अतः वे दुर्योधन की प्रजापालन सम्बन्धी नीति को जानने के लिए एक वनेचर दूत को नियुक्त करते हैं। ब्रह्मचारी बना हुआ वह वनेचर दूत लौटकर दुर्योधन के शासन की पूर्ण जानकारी युधिष्ठिर को देता है और साथ ही यह संकेत करता है कि दुर्योधन द्यूत में जीती हुई पृथ्वी को नीति से भी जीत लेने के प्रयत्न में है। अभीष्ट जानकारी देने के पश्चात् वह चला जाता है। द्रौपदी युधिष्ठिर को उनके पूर्व भुक्त ऐश्वर्य एवं पराक्रम का स्मरण कराती है। साथ ही शत्रुओं के प्रति असामयिक उदासीन एवं क्षमाशील रहने से होने वाली अनुजों की दयनीय दशा की ओर ध्यान आकर्षित करती हुई युधिष्ठिर को उत्तेजित करती है तथा उसकी शान्तिपूर्ण नीति की भर्त्सना करती है।

द्वितीय सर्ग - द्रौपदी के विचारों का समर्थन करते हुए भीम कहते हैं कि हे प्रजानाथ आपके अनुजों की पराक्रमशाली भुजाएँ फिर कब सफल होंगी ? उनके पराक्रम को कौन सह सकता हैं ? किन्तु युधिष्ठिर भी उनके उत्तेजित वचनों को सयुक्तिक नीतिमय उपेदेशों से शान्त कर देते हैं। इसी सर्ग में भगवान व्यास का आगमन होता है।

तृतीय सर्ग - युधिष्ठिर के व्यास जी से आगमन का कारण पूछने पर व्यासजी ने पाण्डवों के विजय लाभ का ध्यान रखते हुए उत्तर दिया - पराक्रम से ही आपको पृथ्वी पर अधिकार करना होगा ।आपके शत्रु आपसे अधिक बलशाली हैं। अतः शत्रु से बढ़ने के लिए आपको उपाय करना आवश्यक है।जिस मन्त्र विद्या से अर्जुन तपस्या करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे और भीम प्रभूति वीरों का नाश करने में समर्थ होंगे। वह मंत्र विद्या प्रदान करने के लिए मैं आज उपस्थित हुआ हूँ। बाद में अर्जुन को उक्त मंत्र विद्या प्रदान कर दिव्यास्त्र प्राप्ति के लिए , इन्द्र की तपस्या करने के लिए कहते हैं। साथ ही मार्ग निर्देशन करने के लिए एक यक्ष को आदेश देकर अन्तर्हित हो जाते हैं। व्यास के भेजे यक्ष के साथ अर्जुन तपस्या करने के हेतु इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचता है। यक्ष अर्जुन को तप और तप में होने वाले विघ्नों के बारे में कहता है और आशीर्वाद देकर चला जाता है। वनेचरों के मुख से अर्जुन की कठोर तपस्या का वृतान्त सुनकर इन्द्र भयभीत होता है और उसके तप में विघ्न डालने के लिए अप्सराओं को भेजता है , परन्तु जितेन्द्रिय अर्जुन के प्रति उन अप्सराओं के सभी प्रयत्न विफल हो जाते हैं। अर्जुन के तपानुष्ठान देखने के लिए मुनिवेश धारण कर इन्द्र उपस्थित होता है। अनेक युक्ति प्रयुक्ति से समझाने पर भी अर्जुन के तपानुष्ठान न छोड़ने पर प्रसन्नता से इन्द्ररुप में प्रकट होकर अर्जुन को शिव की तपस्या करने का उपदेश देता है। अर्जुन पुनः तपस्या प्रारम्भ करता है। एक मायावी दैत्य अर्जुन को मारने के लिए वराहरुप धारण करता है। इस तथ्य को जानकर शंकर अर्जुन की रक्षा करने के हेतु किरात का मायावी रुप धारण करते हैं। भगवान शंकर वराह को लक्ष्य कर बाण चलाते हैं और अर्जुन भी उसी समय बाण चलाता है परिणामतः दोनों के बाणों के लगने से वह सूकर कटे वृक्ष की तरह गिरकर पंचतत्त्व को प्राप्त होता हैं बाद में अर्जुन अपने बाण को लेना चाहता है। और इस पर किरात तथा अर्जुन का वाद-विवाद चलता है। यह विवाद पंचदश सर्ग में युद्ध का रुप धारण करता है। युद्ध में प्रथम शिव और अर्जुन अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करते है। पश्चात् दोनों बाहुयुद्ध पर तैयार होते हैं। अर्जुन की वीरता तथा एकनिष्ठता से शंकर प्रकट होते

हैं और फलतः अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति होती है। ' जाओ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो ' इस प्रकार शंकर के द्वारा आशीर्वाद प्राप्त कर, अर्जुन जो उनके चरण कमलों में नत था ,देवताओं द्वारा प्रशंसित होते हुए , उसने महान् विजयलक्ष्मी के साथ अपने घर पहुँचकर अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को प्रणाम किया। यहीं पर काव्य समाप्त होता है। आदर्शकाव्य (महाभारत) का कथानक अत्यन्त सरल है। किन्तु भारवि के कवि ने अपनी कल्पना व पाण्डित्य से नाटकीय संवादों, रमणीय एवं कलापूर्ण वर्णनों से 4 या 5 सर्ग की कथासामग्री को विस्तारपूर्वक 18 सर्गो में फैलाया है। यहाँ तक कि कथा की गति अवरुद्ध हो जाती है और 6 सर्गो के पश्चात् कवि पुनः छूटे हुए इतिवृत्त के सूत्र को पकड़ने में समर्थ होता। यद्यपि ये प्रसंग अर्थात् शरद ऋतु इतिवृत्त के सूत्र को पकड़ने में समर्थ होता है। यद्यपि ये प्रसंग अर्थात् शरद ऋतु वर्णन (सर्ग 4),हिमालय वर्णन (सर्ग 5), इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन की तपस्या में विघ्न डालने के लिए इन्द्रप्रेषित अप्सराओं के गमन का वर्णन (सर्ग 6) , गन्धर्वों और अप्सराओं के क्रीड़ादि का वर्णन (सर्ग 7,8) ,सांयकाल आदि का वर्णन (सर्ग 9) , अर्जुन को आकर्षित करने के लिए अप्सराओं का आगमन आदि (सर्ग 10) , कथोद्भूत दिखाई न देकर लक्षणग्रंथोक्त नियमों की पूर्ति करने के लिए ऊपर से लादे हुए प्रतीत होते हैं , तथापि इनके नियोजन उद्देश्य विद्यमान हैं।

किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व

आचार्य दण्डी ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार बतलाया है --

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आषीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देश वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।
चतूर्वर्गफलायत्त चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवषैलर्तु चन्दा्रर्कोदयवर्णनैः। इत्यादि।

भारवि का काव्य सौष्ठव

महाकवि भारवि अलंकृत काव्य शैली के जन्मदाता हैं। इन्होंने संस्कृत साहित्य में किरातार्जुनीयम् ' महाकाव्य ने अपने प्रशस्त गुणों के कारण साहित्य में अपना विशिष्ट पद प्राप्त किया है। संस्कृत के महाकाव्यों की ' बृहत्त्रयी ' (किरात , शिशुपाल वध और नैषध) में इसका प्रमुख स्थान है। समस्त संस्कृत साहित्य में किरातार्जुनीय जैसा ओज प्रधान उग्रकाव्य नहीं मिलता है। उसमें कुल 18 सर्ग हैं। वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से इसका प्रारम्भ होता है। इसका कथानक महाभारत की एक प्रसिद्ध घटना के आधार पर निबद्ध हुआ है और यह चतुवर्ग की प्राप्ति में सहायक है। किरात का नायक अर्जुन धीरोदात्त है। बीच के कई सर्गों में भारवि ने महाकाव्य के लक्षण के अनुसार ऋतु, पर्वत, सूर्यास्त,जलक्रीड़ा आदि का वर्णन करके काव्य अतिशय विस्तार कर दिया है। पूरा चौथा सर्ग शरद ऋतु, पंचम हिमालय पर्वत, षष्ठ युवति प्रस्थान, अष्टम सुरांगना विहार तथा नवम सुरसुन्दरी सम्भोग के वर्णन में रचित है। किरात का प्रधान रस वीर है। इसकी अभिव्यक्ति में कवि को अभूतपूर्व सफलता मिली है। इसमें श्रृंगार तथा अन्य रस गौण रुप में वर्णित हैं। भाषा सर्वत्र अलंकृत है, इसी प्रकार भावों की अभिव्यंजना

भी है। छन्द गेय और सुन्दर है। सर्गों में विविध घटनाओं का संयोजन है। किरातार्जुनीयम का प्रारम्भ ' श्री ' शब्द से हुआ है। इसी प्रकार प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में ' लक्ष्मी ' शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः यह महाकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। किरातार्जुनीयम् पद का विग्रह इस प्रकार किया जा सकता है -- किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ तौ अधिकृत्य कृतं काव्यम् किरातार्जुनीयम् अधिकृत्य कृते ग्रन्थे सूत्र से यहाँ ' छ ' प्रत्यय हुआ है तथा ' छ ' को आयनेय0 अत्यादि सूत्र से ईय हो गया है।

अपनी रचना से एक सर्वथा नवीन एवं काव्य शैली को जन्म दिया, जिसे अलंकृत काव्य शैली कहा जाता है। इनके बाद होने वाले माघ आदि कवियों ने इनकी काव्य शैली का अनुकरण किया है। किरातार्जुनीय महाकाव्य पर काव्यशास्त्रीय दृष्टि से निम्नलिखित तत्त्वों के आधार पर विचार किया जा सकता है --

(1) महाकाव्य का नायक - इस महाकाव्य का नायक निःसन्देह अर्जुन ही है, क्योंकि इस ग्रन्थ का नाम किरातार्जुनीयम् है। जिसका विग्रह इस प्रकार है – किराताश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ तौ अधिकृत्य कृतम् काव्यम् किरातार्जुनीयम्। इस ग्रन्थ के नामकरण से ज्ञात होता है के किराता और अर्जुन इस महाकाव्य के प्रमुख पात्र हैं , लेकिन काव्य प्रयोजन पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि दिव्यास्त्र प्राप्ति रुपी फल अर्जुन को ही प्राप्त होता है। अतः अन्तिम फल प्राप्ति अर्जुन को होने से अर्जुन ही इसका मुख्य नायक है। किरातार्जुनीयम् ग्रन्थ के टीकाकार श्री चित्रभानु इस महाकाव्य का नायक युधिष्ठिर को मानते हैं और अपना मत पुष्ट करने हेतु तर्क देते हैं कि युधिष्ठिर ही प्रथम सर्ग में उपस्थित रहते हैं। मध्य मे भी कवि ने अर्जुन द्वारा युधिष्ठिर की ही प्रतिष्ठा कराई है और अन्त में भी अर्जुन दिव्यास्त्र की प्राप्ति कर उन्हीं के चरणों में नतमस्तक होते हैं। विजय भी युधिष्ठिर को ही प्राप्त होती है। अर्जुन की दिव्यास्त्र प्राप्ति युधिष्ठिर की फलप्राप्ति रुप विजय का साधन है। अतः काव्य का नायक युधिष्ठिर को ही मानना चाहिए। लेकिन इसका मत समीचीन प्रतीत नहीं होता। महाकाव्यकार भारवि का मन्तव्य भी यही सूचित करता है कि काव्य का नायक अर्जुन ही है , क्योंकि टीकाकार मल्लिनाथ जी ने स्पष्ट कहा है कि इस काव्य का नायक मध्यम पाण्डव अर्थात् अर्जुन ही है। उसी के उत्कर्ष का इसमें वर्णन है और दिव्यास्त्र प्राप्तिरुप फल भी अर्जुन को प्राप्त होता है। निष्कर्षतः अर्जुन ही इस महाकाव्य का नायक है।

प्रथम सर्ग

नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशज
स्तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः।
श्रृंगारादिरसोऽयमत्र विजयी वीरप्रधानो रसः
शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम्॥

(2) चरित्र चित्रण - पात्रों के चित्रण में भी भारवि उच्चकोटि के कवि हैं। इसका चरित्र चित्रण अतिशय प्रभापूर्ण है। अपमान की धधकती ज्वाला में जलती हुई बिखेरे केशों वाली द्रौपदी, सागर में उठे हुए तूफान की तरह प्रचण्ड पराक्रमी भीम, शान्ति एवं सौम्यता की युधिष्ठिर

,नख से शिख तक वीरता एवं स्फूर्ति से लबालब भरे हुए वीरवर अर्जुन -ये सभी प्रमुख पात्र बड़ी सजीवता के साथ कवि के द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। व्यास, गुप्तचर, दूत आदि गौण पात्र भी वास्तविक प्रतीत होते हैं। इस पुस्तक का संबंध मात्र प्रथम सर्ग से है। अतः सम्पूर्ण पात्रों के सम्पूर्ण जीवन चरित पर जो कि 18 सर्गों में विस्तृत है प्रकाश न डालकर मात्र प्रथम सर्ग में जो पात्र रुप आये हैं उनका चरित्र चित्रण इस प्रकार है।

(1) युधिष्ठिर - प्रथम सर्ग में जो आये हैं, उनमें युधिष्ठिर प्रमुख हैं। वैसे समग्र काव्य की दृष्टि से एवं टीकाकार मल्लिनाथ की दृष्टि में काव्य के नायक युधिष्ठिर नहीं अपितु मध्यम पाण्डव अर्जुन ही है, किन्तु हम प्रथम सर्ग के परिप्रेक्ष्य मे युधिष्ठिर को नायक मानते है। युधिष्ठिर के चरित्र में अनेक विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। वे स्वभाव से धीर एवं प्रकृति से गम्भीर हैं, वे किसी भी निर्णय विचार-विमर्श के पश्चात् गंभीरतापूर्वक लेते हैं, वे कुशल राजनीतिज्ञ हैं। राजनीति के तत्वों कर पूर्ण ज्ञान रखते हैं। जैसा कि हम प्रथम सर्ग में देखते हैं वे वनवास की अवधि में वेशधारी गुप्तचर को दुर्योधन का भेद लेने हेतु भेजते हैं, शत्रु से युद्धकरने के पूर्व वे उसकी सम्पूर्ण गतिविधियों को जान लेना चाहते हैं। (**श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीं॰) 1/1**

उनके गुप्तचर योग्य कर्मठ एवं विवेकशील हैं तथा स्वामीके हित को सर्वोपरि मानने वाले हैं, लेकिन युधिष्ठिर भी शिष्टाचार में निपुण हैं। वे स्वामिभक्त भृत्यों का सम्मान करते हैं। इसी कारण सम्पूर्ण वृतान्त निवेदन करने के पश्चात् वे वनेचर को पुरस्कृत करते हैं।

(इतीरयित्वा गिरमात्तसात्क्रिये॰) 1/26

युधिष्ठिर अत्यन्त प्रभावशाली हैं यद्यपि वे वन में निवास कर रहे हैं, सैन्य शक्ति व धन से रहित हैं, तथापि दुर्योधन जो राज्य सिंहासनारुढ़ हैं, धन व सैन्यशक्ति से सम्पन्न होते हुए भी सदैव उनसे आशंकित रहता है। युधिष्ठिर का नाम सुनते ही दुर्योधन व्यथित होकर नतानन हो जाता है। " **तवाभिधानात् व्यथते नतानन: " (1/24)** युधिष्ठिर का व्यक्तित्व त्यागी एवं तपस्वी के रूप में व्यक्त हुआ है। वे शान्ति नीति के समर्थक, धर्म मर्यादा के पालक, न्याय एवं उत्तम मार्ग पर चलने वाले एवं सहनशील हैं। वे प्रतिशोध की भावना से रहित हैं। यही कारण है कि वे द्रौपदी के युद्ध उत्साहवर्द्धक एवं उपालम्भपूर्ण वचनों को सहानुभूति एवं स्नेह के साथ सुनते हैं और युक्तियुक्त शब्दों में अपनी नीति समझा देते हैं और समय की प्रतीक्षा करने हेतु परामर्श देते हैं। युधिष्ठिर भाइयों में भी सम्मान्य हैं, इसी कारण उनके अतुल पराक्रमी भाई भी कष्ट सहते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। युधिष्ठिर धर्मराज हैं यही कारण है कि द्रौपदी बराबर उन्हें उद्बुद्ध करना चाहती है, उनकी शान्ति को कायरता का प्रतीक मानती हैं वह उन्हें सन्धि भंग करने हेतु प्रेरित करती है, लेकिन युधिष्ठिर अपनी मर्यादा का पालन करते हैं और न्यायोचित मार्ग का उल्लंघन नहीं करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत रचना में युधिष्ठिर के चरित्र की अन्य विशेषताओं की अपेक्षा राजनीतिक परिपक्वता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वह भीम और द्रौपदी की बात पूर्ण तन्मयता से सुनता है, उनके उचित सुझावों की प्रशंसा भी करता है , किन्तु उन्हें धैर्यपूर्वक विचार करके निर्णय लेता है। इस प्रकार युधिष्ठिर के व्यक्तित्व में हमें

राजनीतिक प्रौढ़ता, सफलता के प्रति अपेक्षित प्रयत्नशीलता, आवेश रहित, संतुलित दृष्टि और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था आदि गुण दृष्टिगोचर होते हैं।

(2) द्रौपदी - द्रौपदी इस महाकाव्य की नायिका है, अतः द्रौपदी के चरित्रांकन में कवि ने विशेष सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है । यद्यपि द्रौपदी एक वीर क्षत्राणी है तथापि कौरवकृत अपमान से मर्माहत असीम धैर्य एवं सहनशीलता की प्रतिमूर्ति है। यही कारण है कि उसके हृदय में दुर्योधन के विरुद्व प्रतिशोध की भीषण ज्वाला विद्यमान है । जब वह युधिष्ठिर के मुख से किराता द्वारा कहे गये दुर्योधन की उन्नति के समाचारों को सुनती है तो अत्यन्त व्यग्र हो उठती है और अपने आवेश को रोक नहीं पाती। अतः वह अपने लिए निरस्तनारीसमयादुराधयः कहकर भूमिका बनाकर बोलती है। वह पुरुषों के अधिकार तथा क्षत्रिय के स्वाभिमान को जानती है, अतः उनको चुनौती नहीं देती; अपितु पूर्ण विनम्रता के साथ अपनी भावनाओं को सटीक एवं ओजस्वी वाणी में अभिव्यक्त करती है -

"भवादृशेषुप्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां,
निरस्तनारी समया दुराधयः। " (1/28)

द्रौपदी कूटनीति निपुण है , अतः उसकी स्पष्ट मान्यता है कि कपटी के साथ कपट का ही आचरण किया जाना चाहिए। अन्यथा कपटी लोग अवसर पाकर सज्जन व्यक्तियों को समाप्त कर देते हैं।

" व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। " (1/30)

दौपदी स्वाभिमानी स्त्री है , वह युधिष्ठिर से स्पष्ट शब्दों में कहती है कि आपके अलावा कोई भी ऐसा राजा नहीं होगा , जो कुलवधू के तुल्य राज्यलक्ष्मी का शत्रुओं द्वारा अपहरण करवाये तथा फिर भी शान्त बैठा रहे –

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वादन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्।। " (1/31)

द्रौपदी युधिष्ठिर पर सीधा दोषारोपण करती है कि तुमने स्वयं अपने हाथों राज्य का परित्याग कर दिया है , न कि वह शत्रु ने जीता है। द्रौपदी स्वयं की पीड़ा की चर्चा न करके भीम, अर्जुन एवं युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों की दुर्योधन के कपटपूर्ण व्यवहार से हुई दुर्दशा का चित्र खींचती हुई , उन्हें उचित प्रतिकार के लिए प्रेरित करती है। वह योद्वा भाईयों की दुर्गति का कारण दुर्योधन की कायरता को मानती है। द्रौपदी राजनीति धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र आदि में अत्यन्त प्रवीण है , अतः युधिष्ठिर से एक कूटनीतिज्ञ के समान स्पष्ट शब्दों में कहती है कि राजनीति में सन्धि भंग करना कोई दोष नहीं हैं। विजयेच्छु राजा अवसर पाकर किसी भी बहाने से पूर्व में की गई सन्धि आदि को तोड़ देते हैं।

" अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा

विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि । " (1/45)

वह भाग्यजनित विपत्ति को दुःख नहीं मानती , किन्तु शत्रुकृत अपमान को सहन करना कायरता मानती है । वह महाराज युधिष्ठिर की स्थिति को मनस्विगर्हित बतलाती है । वह युधिष्ठिर से आवेश के वशीभूत होकर यहाँ तक कह देती है कि यदि आप अब भी शान्ति नीति की रट लगाए रहते हैं, क्षत्रियोचित पराक्रम प्रदर्शित नहीं कर सकते हैं तो यह राजचिन्ह रुपी धनुष को छोड़कर जटाधारी तपस्वी बन जाइये और शान्ति के साथ हवन कीजिए -

" विहाय लक्ष्मीपति लक्ष्मकार्मुकं,

जटाधरः सन् जुहूधीह पावकम् ।। " (1/ 44)

द्रौपदी युधिष्ठिर में युद्ध के प्रति उत्साह नहीं देखकर व्यथित होती है, लेकिन युधिष्ठिर की धर्मपत्नी है जीवन संगिनी है , अतः अन्त में उन्हें शुभकामना प्रदर्शित करती हुई कहती है कि प्रातःकालीन सूर्य के समान उन्हें भी राज्य लक्ष्मी पुनः प्राप्त होवे । इस प्रकार द्रौपदी ओजस्वी व्यक्तित्व की धनी तथा प्रेरणा और पराक्रम की जीवन्त मूर्ति है । द्रौपदी का व्यक्तित्व और चरित्र ही इस सर्ग का प्राण है। निस्सन्देह द्रौपदी के व्यक्तित्व के चित्रण में भारवि ने श्लाघनीय कौशल का परिचय दिया है ।

(3) वनेचर - भारवि गुप्तचर संस्था को अति महत्त्वपूर्ण मानते थे । उन्होंने गुप्तचरों को शासकों का नेत्र घोषित किया है । वे गुप्तचरों में कर्त्तव्यनिष्ठा , कार्यनिपुणता , निर्भयता एवं स्पष्टवादिता आदि गुण आवश्यक मानते हैं । उनके मतानुसार शासक अपने अमात्यों पर पूर्ण विश्वास करें वे शासकों के हित को महत्त्व देते हुए सही परामर्श दें, तभी शासनतन्त्र सुचारु रुप से चल सकता है । प्रथम सर्ग भी वनेचर रुपी गुप्तचर की उक्तियों से प्रारम्भ होता है । वह दुर्योधन की गतिविधियों का पता लगाने के लिए युधिष्ठिर द्वारा भेजा गया था । वनेचर में गुप्तचर सम्बन्धी समस्त गुण विद्यमान थे । अतएव उसने ब्रह्मचारी के वेश में हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन के सभी विचारों, उसकी योजनाओं, कार्यों और उद्देश्यों को जान लिया था और युधिष्ठिर को बतला दिया था । वनेचर स्वामिभक्त था, उसे यह ज्ञात था कि यथार्थ कटु होता है तथा दुर्योधन संबंधी योजनाएँ एवं विचार युधिष्ठिर को बताने पर उन्हें कुछ क्षणों के लिए बुरा भी लगेगा, लेकिन राजा एवं राज्य दोनों के कल्याण के लिए वह युधिष्ठिर को सत्य से अवगत कराता है, क्योंकि वह जानता था कि -

(हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः) (1/4)

वह युधिष्ठिर का सच्चा हितैषी था इसी कारण उसमे स्वामी को अंधकार में रखना उचित नहीं समझा, क्योंकि वह जानता था कि यदि वास्तविकता को बतलादिया जायगा तो महाराज युधिष्ठिर उसका यथोचित प्रतीकार करने में समर्थ हो सकते है।

न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं

प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषाहितैषिणः । (1/2)

वनेचर अति विनम्र भी है इसी कारण वह आपको अबोधविक्लव मानता है । उसके द्वारा जो दुर्बोध नीति मार्ग जाना गया वह युधिष्ठिर का ही प्रभाव मानता है अर्थात् अपने कार्य की

सफलता का श्रेय भी वह युधिष्ठिर को ही देता है। वनेचर नीतिविद् , बुद्धिमान् एवं अपने कार्य में निष्णात है इसी कारण उसने अपने कपट वेश में दुर्योधन की समस्त भावी योजनाओं का पता लगा लिया। वह युधिष्ठिर के समक्ष वृतान्त ही निवेदन नहीं करता , अपितु सच्चे सेवक की भाँति परामर्श भी देता और दुर्योधन का प्रतिकारकरने हेतु प्रेरित भी करता है। स्पष्ट वक्ता होने पर भी शिष्टता का उल्लंघन नहीं किया। सम्पूर्ण वृतान्त निवेदन करते समय उसकी भाषा, सौष्ठव एवं अर्थगरिमा से पूर्ण थी, उसका प्रत्येक वाक्य सप्रमाण था। इस प्रकार वनेचर स्वामिभक्त, स्पष्ट वक्ता, सत्यवक्ता, नीतिविद् , व कर्त्तव्यपरायण सेवक है एवं चाटुकारिता से रहित है। प्रथम सर्ग में भारवि ने वनेचर का चरित्र एवं व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली ढंग से किया है।

(4) दुर्योधन - यद्यपि दुर्योधन इस महाकाव्य में एक प्रतिनायक के रुप में है , तथापि प्रथम सर्ग में सुयोधन की शासन नीति के वर्णन के माध्यम से आदर्श राजा का चित्र प्रस्तुत किया गया है। शासक का अपने परिजनों पर पूर्ण विश्वास, सामदानादि का समुचित प्रयोग , धार्मिक कृत्यों के माध्यम से लोक सामान्य के बीच उदात्त छवि प्रस्तुत करना तथा जनकल्याणकारी कार्यो का सम्पदान जैसे गुण है, जो उसे लोकप्रिय बना देते हैं। इसी प्रसंग में कवि ने यहाँ भी बताया है कि कई बार कुटिल शासक भी जनकल्याणकारी कार्यो का जाल बिछाकर जनता को आकृष्ट कर लेते हैं। केवल सैन्य शक्ति या छलबल से प्राप्त सत्ता भी तब तक चिरस्थायी नहीं होती , जब तक कि जनता को अनुकूल नहीं बना लिया जाता इसलिए तो सुयोधन सिंहासनारुढ़ होते हुए भी कूटनीतिक कौशल से जनता के हृदय को जीतने का प्रयास करता है -

" दुरोदरच्छद्म जितां समीहते ,
नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ।। " (1/7)

भारवि की मान्यता है कि शासन की स्थिरता के लिए राज्य की तीनों शक्तियों मन्त्रशक्ति, प्रभुशक्ति तथा उत्साहशक्ति में सन्तुलन आवश्यक होता है। प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए योजना (मन्त्र शक्ति) क्षमता (प्रभुत्त्व) और उत्साहपूर्ण क्रियान्वयन (उत्साहशक्ति) की आवश्यकता होती है। इन तीनों में से किसी एक पक्ष के दुर्बल होने से अपेक्षित सफलता नहीं मिलती , इसलिए दुर्योधन सेवकों के साथ मित्रों जैसा व्यवहार करता था मित्रों के साथ बन्धुजनों जैसा तथा बन्धुजन के साथ राज्याधिकारी जैसा व्यवहारकरता था। उसके सैनिक तेजस्वी और युद्व कौशल में पूर्णतः निपुण थे। वह उनका पूर्ण सम्मान करता था अतएव वे भी प्राणार्पण से उसकी तथा उसके राज्य की रक्षा करते थे। सभी राजा उसके गुणों से प्रभावित थे। अतः उसके गुणों के प्रति अनुराग के कारण उसकी आज्ञा को माला के समान शिरोधार्य करते थे।

" गुणोनुरागेण शिरोभिरूह्यते
नराधियैर्माल्यमिवास्य शासनम् ।। " (1/21)

प्रजाओं को धन धान्य से पूर्ण बनाने के लिए उसने कृषि संबंधी सभी सुविधाएँ दे रखी थीं। सिंचाई के कृत्रिम साधन देश में उपलब्ध होने से कुरु जनपद धन धान्य से सम्पन्न था। उसके राज्य में गुणों से द्रवीभूत बनी हुई पृथ्वी स्वयं उसके लिए धन उगलती थी –

" स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी । " (1/18)

धर्म, अर्थ और काम का वह समय विभागानुसार सेवन करता था । वह जितेन्द्रिय बनकर मनु आदि स्मृति बेधित न्याय एवं दण्ड का प्रयोग करता था । वह सदा पक्षपातरहित होकर दण्ड न्याय का पालन करता था इस प्रकार न्याय के क्षेत्र में शत्रु एवं पुत्र के मध्य भी जैसा धर्म गुरु निर्देश देते थे वह न्याय करता था -

" गुरुपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा,
निहन्ति दण्डेन स धर्म विप्लवम् । " (1/13)

इस प्रकार दुर्योधन एक योग्य, न्यायी एवं कुशल प्रशासक के गुणों से सम्पन्न है ।

भाषा- शैली - महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान रत्नों में से एक हैं । उसका महाकाव्य वृहत्त्रयी का प्रथम रत्न है । भारवि की भाषा उदात्त तथा हृदय को शीघ्र प्रभावित करने वाली है । वह कोमल भावों को प्रकट करने में उतनी ही समर्थ है, जितनी उग्र भावों के प्रकाशन में । भाषा तथा शैली के विषय में भारवि ने अपने आदर्श का संकेत इस प्रख्यात पद्य में किया है -- (किरात 14/3)

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुति प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदां सरस्वती ।।

पुण्यशाली व्यक्तियों की प्रसन्न तथा गम्भीर पदों से युक्त होती है । उसके सुन्दर अक्षर पृथक् रुप रखते हैं तथा कानों को प्रसन्न करते हैं वह शत्रुओं के भी हृदयों को प्रसन्न करती है । प्रसन्न का लक्ष्य शाब्दी सुष्ठुता से है तथा गम्भीर का तात्पर्य अर्थ की गम्भीरता से है । भारवि की शैली का सही मर्म है । वह प्रसन्न होते हुए भी गंभीर है । मित्र आलोचकों को प्रसन्न करने के साथ ही दुष्ट आलोचकों को भी आवर्जित करती है । फलतः प्रसन्नगम्भीर पदा सरस्वती भारवि की भाषा तथा शैली का द्योतक सहनीय मंत्र है । भारवि की भाषा में प्रौढ़ता ओज प्रवाह शक्तिमत्ता है। उसका शब्द संचय भावानुकूल है । भावानुसार कहीं प्रसाद हैं, कहीं माधुर्य और कहीं ओज । भाषा में शैथिल्य का नितान्त अभाव है । मनोभाव, उदात्त, कल्पनाओं और गम्भीर विचारों का एक रत्नाकर ही है । अर्थ गाम्भीर्य और अर्थ गौरव की जितनी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी ही है । पद-पद पर अर्थ गौरव उसके वैदुष्य और गम्भीर चिन्तन का परिचायक है । भारवि ने प्रायः सभी रसों का अत्यन्त कुशलता के साथ प्रयोग किया है । श्रृंगार और वीर रस उसके अतिप्रिय रस हैं । इनके भेद और उपभेदों तक का लालित्यपुर्ण भाषा में प्रयोग किया है । उसका अलंकारों का प्रयोग दर्शनीय है ।

15 वें सर्ग में चित्रालंकारों की बहुरंगी छटा इन्द्रधनुष को भी निष्प्रभ कर देती है । कहीं एक ही अक्षर वाले श्लोक हैं तो कहीं दो अक्षर वाले , कहीं पादादियमक हैं तो कहीं पादान्तादियमक कहीं,गोमूत्रिका-बन्ध है तो कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक सीधा और उल्टा एक ही होता है तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्द्ध एक ही हैं। कहीं दो पद समान हैं तो कहीं चारों पद एक ही हैं । कहीं आद्यन्त यमक है तो कहीं श्रृंखला यमक। कहीं निरोष्ठयवर्ण श्लोक हैं तो कहीं अर्धभ्रमक,

कहीं द्वयर्थक और त्र्यर्थक श्लोक हैं तो कहीं चार अर्थ वाले भी श्लोक हैं । वस्तुतः भारवि संस्कृत काव्यों में रीति शैली के जन्मदाता हैं। उसके ग्रन्थ के आरम्भ में " श्री " शब्द तथा सर्गान्त श्लोंकों में " लक्ष्मी"शब्द का प्रयोग उसकी प्रमुख विशेषता है। माघ ने शिशुपालवध में इसी शैली का अनुकरण किया है। भारवि का प्रकृति चित्रण अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का चित्रण अत्यन्त मनोरम और प्रशंसनीय है। उन्होनें विविध छन्दों का प्रयोग करके अपनी छन्दोयोजना संबंधी दक्षता प्रदर्शित की है। इसलिए मल्लिनाथ ने इनके काव्य सौन्दर्य को " नारिकेलफलसंमितम " माना है। जो बाहर कठोर, किन्तु अन्दर अत्यन्त मधुर है। वेद उपनिषद् दर्शन पुराण, नीति, राजनीति, ज्योतिष, भूगोल, कृषि और कामशास्त्र आदि से संबद्ध वर्णन उसके अगाध पाण्डित्य के सूचक हैं । भारवेऽर्थगौरवम्, भारवेरिव भारवेः, प्रकृतिमधुराभारविगिरिः, आदि सूक्तियाँ वस्तुतः भारवि की गरिमा को प्रकट करती हैं । भारवि ने अर्थगौरव कल्पना और सूक्ष्म विचारों कर मधुर सम्मिश्रण किया है । उसके अपना मन्तव्य निम्नलिखित श्लोक में प्रस्तुत किया है -

स्फुटता न पदैरपाकृता
न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां
न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ।। (2/26)

पदों में स्पष्टता, अर्थगौरव युक्तता, अनुरुक्तदोष और साकांक्षता गुण का होना अनिवार्य है । भाषा के वैभव का अत्यन्त सुचारु रुप में वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि प्रसाद, माधुर्य और अर्थ गौरव से युक्त वाग्देवी पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होती है। वाग्मिता की प्रशंसा में कवि का कथन है कि " अपने मनोगत विचारों को सुन्दर भाषा मे अभिव्यक्त करने वाले व्यक्ति ही सभ्यतम होते हैं, उनमें भी विशेष दक्ष व्यक्ति ही गंभीर भावों को सरल रूप में अभिव्यक्त करने में समर्थ होते हैं । भारवि की उक्तियाँ स्वाभाविकता , व्यंग तथा पाण्डित्य से भरी पड़ी है । द्रौपदी की उक्ति में युधिष्ठिर को तीखे व्यंग्य सुनाने की क्षमता है तो भीम की युक्ति वीरता के घमण्ड से तेज और तर्रार युधिष्ठिर की कायरता पर संकेत करती द्रौपदी कहती है कि (युधिष्ठिर के सिवाय) ऐसा राजा कौन होगा जो अपनी सुन्दर पत्नी के समान गुणानुरक्त (सन्धि आदि गुणों से युक्त) कुलीन राज्यलक्ष्मी को स्वयं अनुकूल साधन से युक्त तथा कुलाभिमानी होते हुए भी दूसरो के हाथों छिनती हुई देखे । यथा -

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामत्मधूकमिव श्रियम्।। (1 /31)

अब तक के विवेचन और उद्धृत पदों से यह सिद्ध हो जाता है कि कालिदास जैसा प्रसाद गुण भारवि में नही मिलता । भारवि की शैली माघ की भाँति विकट समासान्त पदावली का आश्रय नहीं लेती, तथापि कालिदास जैसी ललित वैदर्भी भी नहीं । भारवि का अर्थ कालिदास के अर्थ की तरह अपने आप सूखी लकड़ी की तरह प्रदीप्त नहीं हो उठता । कालिदास की कविता में द्राक्षापाक है, अंगूर के दाने की तरह मुँह में रखते ही रस की पिचकारी फूट पड़ती है; जबकि -

भारवि के काव्य में नारिकेल पाक है, जहाँ नारियल को तोड़ने की सख्त मेहनत के बाद उसका रस हाथ आता है कभी-कभी तो उसे तोड़ते समय इधर-उधर जमीन पर बह भी जाता है और उसमें से बहुत थोड़ा बचा खुचा सहृदय की रसना का आस्वाद बनता है।

भारवि कालिदास की अपेक्षा पाण्डित्यप्रदर्शन के प्रति अधिक अनुरक्त हैं। वे अपने व्याकरण ज्ञान का स्थान-स्थान पर प्रदर्शन करते हैं। उन्हें कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के प्रयोग बड़े पसन्दहैं। भारवि में ही सबसे पहले काकु वक्रोक्ति का और विध्यर्थ में निषेधद्वय का प्रयोग अधिक पाया जाता है। इसके साथ ही अतीत की घटना का वर्णन करने में भारवि खास तौर पर परोक्षभूते लिट् का प्रयोग करते हैं। अन्त में हम डॉ. डे के साथ यही कहेंगे - भारवि की कला प्रायः अत्यधिक अलंकृत नहीं है, किन्तु आकृति सौष्ठव की नियमितता व्यक्त करती है। शैली की दुष्प्राप्य कान्ति भारवि में सर्वथा नहीं हैं,ऐसा कहना ठीक नहीं होता; किन्तु भारवि उसकी व्यंजना अधिक नहीं कराते। भारवि का अर्थगौरव जिसके लिए विद्वानों ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है, उसकी गम्भीर अभिव्यंजना शैली का फल है,किन्तु यह अर्थगौरव एक साथ भारवि की शक्ति तथा भावपक्ष की दुर्बलता दोनों को व्यक्त करता है। भारवि की अभिव्यंजना शैली का परिपाक अपनी उदात्त स्निग्धता के कारण सुन्दर लगता है। उसमें शब्द तथा अर्थ के सुडौलपन की स्वस्थता है, किन्तु महान् कविता की उस शक्ति की कमी है, जो भावों की स्फूर्ति तथा हृदय को उठाने की उच्चतम क्षमता रखती हैं।

रस परिपाक - लक्षण ग्रन्थकारों ने श्रृंगार और वीर रस को ही प्रधान रूप से महाकाव्यो में रखने का निर्देश दिया है, " एक एव भवेदंगी श्रृंगारों वीर एव च। " इसी आधार पर महाकवि ने अपने महाकाव्य में वीर अंगीरूप में अभिव्यक्त किया है। वीर रस प्रधान होने पर भी उसके महाकाव्य में अन्य रसों का यथास्थान अंगरूप में चित्रण हुआ है। इसमें भी श्रृंगार रस ही मुख्यतः देखा जाता है। भारवि के टीकाकार मल्लिनाथ ने भी किरातार्जुनीयम् में प्रधान रस वीर को ही स्वीकार किया है।

" श्रृंगारदि रसोअंगमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः। "

भारवि के भाव और रस के अपूर्य तादात्मय को लक्ष्य कर श्री शारदातनय की उक्ति तादात्मयं भावरसयोः भारविः स्पष्टमुक्तवान् " भी दर्शनीय है। इसलिए काव्यरस मर्मज्ञ श्रीकृष्ण कवि ने लिखा है कि भारवि के काव्य में अर्थगौरव तो है ही , पर साथ ही इसकी रसपेशलता भी अपूर्व है, सम्पूर्ण काव्य से ओत-प्रोत है। अतएव यह काव्य उत्तरकालीन कवियों के लिए उपजीव्य बन सका है।

प्रदेशवृत्तापि महान्तमर्थ प्रदर्शयन्ती रसमादधानां
सा भारवेः सत्यथदीपिकेव रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या।

यद्यपि अर्थ गौरव और रस योजना इन दोनों का एक साथ प्रयोग कठिन होता है। जहाँ कवि का ध्यान अर्थ वैशिष्टय पर ही रहता है, वहाँ रसाभिव्यक्ति दब जाती है, जहाँ रसाभिव्यक्ति प्रधान लक्ष्य बन जाता है, वहाँ अर्थगौरव नहीं रह पाता। परन्तु भारवि में यह अपूर्व क्षमता है कि उन्होंने दोनों का ही कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है।

किरातार्जुनीयम् में वीर रस का प्राधान्य प्रथम सर्ग में ही आरम्भ हो जाता है। जहाँ भीम अपने शान्तिप्रिय ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास करते है। वे कहते हैं कि आपको शत्रुओं की भारी शक्ति से अपनी पराजय की आशंका नहीं करनी चाहिए। आपके अनुज इन्द्र के समान तेजस्वी हैं , कौरवों में ऐसा कोई वीर नहीं है जो उन्हें पराजित कर सके इस प्रकार इस पद्य में वीर रस की अभिव्यक्ति तो है ही , पर व्यंजना के द्वारा यहाँ अर्थगौरव भी स्पष्ट है कि जब अनुज ही इतने शक्तिशाली हैं तो युधिष्ठिर की शक्ति और पराक्रम की बात ही क्या ? इसी प्रकार अन्यत्र भी वीर रस और अर्थ साथ- साथ देखे जा सकते हैं।

प्रथम सर्ग में द्रौपदी की उक्तियों के माध्यम से वीर रस अभिव्यक्त होता है। वह कहती है कि सोत्साह व्यक्ति के पास लक्ष्मी स्वयं आती है। वीर पुरूष के वश में लोग स्वयं हो जाते हैं। परन्तु जो उत्साही नहीं होता , उसका न तो स्वजन ही आदर करते हैं और न शत्रु ही। वह सर्वत्र निराहत को ही शोभा देता है इत्यादि। भारवि ने वीर और श्रृंगार रसों के वर्णन में अतिशय सिद्धहस्तता दिखाई है सर्ग 8 और 9 में संभोग श्रृंगार का सही वर्णन है। सर्ग 13 से 17 तक युद्ध वर्णन में वीर रस का परिपाक है। जलक्रीड़ा के वर्णन में श्रृंगार रस का चित्रण हुआ है। पति ने पत्नी का हाथ पकड़ा और प्रेम विभोर पत्नी के वस्त्र शिथिल हो गए और आर्द्र मेखला ने उन्हें रोक कर लज्जा-संवरण किया –

विहस्य पाणौं विधृते धृताम्भासि
प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः।
सखीव काञ्ची पयसा धनीकृता।
बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम्॥ (8/51)

अन्त में भारवि के श्रृंगारिक वर्णनों से स्पष्ट होता है कि भारवि में श्रृंगार रस की वह उदात्तता एवं उत्तमता नहीं हैं जो श्रृंगार रस के एकमात्र कवि कालिदास में देखी जाती है। भारवि का श्रृंगार कहीं-कहीं अश्लील एवं अमर्यादित भी हो गया है और वह विलासवृत्ति एवं कामुकता को उभारने वाला है। फिर भी भारवि के काव्य में रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है, इसमें कोई संशय नहीं हैं।

अन्य विशेषताएँ - भारवि ने काव्य के माध्यम से नैतिक गुणों का प्रकाशन आवश्यक माना है इसका पालन अपने काव्य में इन्होंने जम कर किया है। इस विषय में उनकी प्रौढ़ि इतनी प्रबल है कि विद्वद्वर्ग उनकी इन सुक्तियों को अपनी जिव्हा पर रखकर वाणी को विभूषित करने में गौरव का अनुभव करते है। उदाहरणार्थ प्रथम सर्ग की नीति विषयक सूक्तियाँ है।

(1) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।
(2) वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।
(3) न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
(4) सुदुर्लाभाः सर्व मनोहरां गिरः।
(5) स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्।
(6) हितान्न यः संश्रृणुते सः किं प्रभुः।

(7) सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेश्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ।

(8) गुणानुरोधेन बिना न सत्क्रिया

(9) अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ।

(10) ब्रजान्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।

(11) अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना, न जातहार्देन न विद्विषादरः ।

(12) विचित्र रुपाः खलु चित्तवृत्तयः।

(13) परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ।

(14) व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेंन सिद्धिं मुनयो न भुभृतः ।

इस प्रकार की नैतिक उक्तियों का भण्डार है किरातार्जुनीय । किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि इसी प्रकार की व्यवहारपरक बातों से ही भारवि की कृति भरी पड़ी है उसमें हृदय को आवर्जित करने वाले काव्य तत्व नहीं हैं , अथवा बहुत कम है । भारवि की कविता कोमल भावों को भी अभिव्यक्त करने में पुर्ण सक्षम है । महाभारत एवं शिवपुराण की स्वल्प नीरस कथाओं को गुच्छे की भाँति अट्ठारह सर्गों में विस्तृत कर उसे आम्र-मंजरी की मधुर एवं आकर्षक बनाना भारवि की काव्यकला का ही वैशिष्ट्य है । इन्द्र अप्सराओं तथा गन्धर्वो को अर्जुन की तपस्या में विघ्न करने के लिए भेजते है । वे मार्ग में ही सुषमा पर मुग्ध हो पुष्पावचय एवं जलविहार में काल यापन करते हैं (अष्टम सर्ग) । चन्द्र की चन्द्रिका में रति क्रीड़ा के सुख का अनुभव करते हैं (9 सर्ग) तथा प्रभात होने पर अपने कार्य की ओर अग्रसर होते हैं (10 सर्ग) । बाह्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि भारवि ने यह सब अनावश्यक विस्तार अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए किया है । काम शास्त्र विषयक अपने ज्ञान के प्रकाशन के लिए किया है।

अतः इतना लम्बा यह प्रसंग अनावश्यक है तथा काव्य धारा को बोझिल बनाने वाला है । किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो यह प्रासंगिक है और अर्जुन की महत्ता ,दृढ़ता को प्रकाशित करने के लिए आवश्यक भी है । उपर्युक्त वर्णनों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाकवि भारवि का महाकाव्य अपना अलग स्थान रखता है । उनके महाग्रन्थ में काव्यशास्त्रोक्त नियमों का पूर्णतया निर्वाह हुआ है । व्याकरण के नियमों के साथ-साथ काव्यनियमों का ऐसा सुन्दर निर्वाह कम काव्यों में दिखाई देता है । इतना सब होते हुए भी भारवि की कविता में वह माधुरी सरलता सरसता तथा स्वाभाविकता नहीं है जो कालिदास को " कविकुलगुरू " बनाती है । लेकिन कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा भारवि का व्यक्तित्व दर्शन सर्वथा स्वतन्त्र प्रतीत होता है । इसका बड़ा भारी कारण यह है कि भारवि ने वीर रस का बड़ा हृदयग्राही चित्रण और अलंकृत काव्य शैली का सफल वर्णन किया है । अर्थ गौरव भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है । भारवि का व्यावहारिक पक्ष सबल है, मनोवैज्ञानिक पक्ष दुर्बल है। यह कवि अलंकृत शैली का कवि है, विचित्र मार्ग का आचार्य है । यदि मल्लिनाथ जैसा व्याख्याता आचार्य न होता तो कदाचित् भारवि के काव्य का रसास्वाद बहुत ही कम लोग कर पाते । वस्तुतः भारवि ने काव्य के क्षेत्र में विचित्र मार्ग नामक एक एक ऐसे वृक्ष का आरोपण किया जो आगे चलकर खूब

फूला-फला। इस प्रकार यह कवि इस प्रकार की काव्य विधा का प्रतिष्ठापक , प्रर्वतक आचार्य होने के गौरव का यशस्वी भागीदार है।

प्रथम सर्ग के आधार पर भारवि का अर्थ गौरव

संस्कृत के आलोचना जगत में भारवि अपने अर्थ गौरव के लिए सुविख्यात हैं। स्वल्प शब्दों में अधिक अर्थ को भर देना ही अर्थगौरव की महत्ता हैं। भावाभिव्यक्ति के लिए समुचित अल्प शब्दों का प्रयोग भारवि की निजी विशेषता है । भारवि का अर्थ गौरव उनकी गम्भीर अभिव्यजंना शैली का फल है और इस शैली में शब्द तथा अर्थ दोनों का समुचित सामन्जस्य है। भारवि गम्भीर व्यक्तित्व के धनी हैं। उनकी कविता में भावों की उदात्तता है। मानव हृदय के भीतर प्रवेश कर उसके अन्तराल में पनपने वाले भावों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उनके प्रकटीकरण की महनीय शक्ति का अभाव उसकी काव्यकला में भले ही विद्यमान हो परन्तु लोकसम्बद्व तथ्यों के विवरण देने में वे पूर्ण समर्थ हैं। किरातार्जुनीयम् में अर्थगौरव की मनोहरता श्लेषालंकार के अभ्युदय के कारण यत्रःतत्र देखने को मिलती है। श्लेषानुप्राणित उपमा के लिए अर्थगौरव से परिपूर्ण निम्न श्लोक अत्यन्त प्रसिद्व है -

कथा प्रसडगेन जनैरुदाहृताइनुस्मृताखण्डलसुनूविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथतो नतानन: सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरग: ।। (1/23)

इस श्लोक में कतिपय श्लिष्ट शब्द अर्थ गौरव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। (1) तवाभिधावात् आपका नाम लेने से, त (तार्क्ष्य- गरुड़) तथा व (वासुकि) के नाम को धारण करने वाला। "नामैकदेशग्रहणेन नामग्रहणम् " अर्थात् नाम के एक देश के ग्रहण से पूरे नाम का बोध हो जाता है। इस न्याय से " त " अक्षर तार्क्ष्य (गरुड़) तथा " व " अक्षर वासुकि का वाचक माना गया है। (2) आखण्डलासुनूविक्रमःइन्द्र पुत्र अर्जुन के पराक्रम कर स्मरण करने वाला। इन्द्र के सुनू (अनुज-विष्णु) के वि (पक्षी- गरुड़) के क्रम-पादविक्षेप का स्मरण करने का भाव यह है कि सभंगश्लेष की महिमा से यहाँ कम शब्दों के द्वारा अधिकाधिक अर्थो का बोध कराया जा रहा है। और सही है इस श्लोक के अर्थ का सौन्दर्य भारवेऽर्थ गौरवम् की उक्ति प्रथम सर्ग में पूर्णतया चरितार्थ होती है। प्रथम सर्ग के द्वितीय श्लोक में हमें अर्थ गौरव दिखाई देता है जब वनेचर अपने स्वामी के समक्ष यथार्थ बात प्रस्तुत करते हुए व्यथित नहीं होता है। इस प्रसंग में कवि ने जो उक्ति प्रयुक्त की है वह देखने में बहुत संक्षिप्त है किन्तु अर्थ गाम्भीर्य से ओतप्रोत है।

" न हिं प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिण।

सेवकों को ही कर्त्तव्यपरायण होना चाहिए नहीं है। राजाओं का भी कर्त्तव्य है कि वे अपने सेवकों की हितकारी बातें सुनें, भले ही प्रिय हों या अप्रिय। क्योंकि हितकारी एवं प्रिय लगने वाली बात बहुत ही कम सुनने को मिलती है। वह वस्तुतः दुर्लभ है कवि की सूक्ति सारगर्भित हैं -

" अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा
हिंत मनोहारि च दुर्लभं वचः ।। "

प्रथम सर्ग के आठवें श्लोक में वनेचर कहता है दुर्योधन राज्य- सिंहासनस्थ होकर भी वन में रहने वाले व भ्रष्ट राज्य वाले आपसे पराजय की आशंका करता रहता है। इस प्रसंग में कवि ने जो सूक्ति की है, वह अर्थ गौरव का सुन्दर निदर्शन है।

" वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः। "

अर्थात् ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला साधुजनों का विरोध भी दुष्टों की संगति से कहीं अच्छा होता है। 23वें श्लोक में वनेचर कहता है कि दुर्योधन समुद्र पर्यन्त विस्तीर्ण समृद्वशाली निष्कण्टक राज्य पर शासन करता हुआ भी भविष्य आने वाली विपत्तियों की चिन्ता करता ही रहता है। सच है कि बलवान से विरोध करना अन्त में दुःखद ही होता है।

" अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता। "

द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि जो व्यक्ति सफल क्रोधवाला होता है, उसके सभी व्यक्ति स्वतः वशवर्ती हो जाते हैं, किन्तु जो व्यक्ति क्रोधरहित होता है, उसका आत्मीयजन आदर नहीं करते और शत्रु उससे भयभीत नहीं होते अर्थात् क्रोध शून्य व्यक्ति का कहीं भी सम्मान नहीं होता

" अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना।
न जातहार्देन न विद्विषादरः ।। "

क्रोध यद्यपि अरिषड्वर्ग में होने के कारण निन्दनीय है, किन्तु राजाओं को समयानुकूल उसें अपनाना ही चाहिए, यह भाव व्यक्त है। इसी प्रकार द्रौपदी " शान्ति से सफलता का मार्ग मुनियों का है, राजाओं का नहीं। " इस बात का उल्लेख करती हुई युधिष्ठिर से कहती है - आप शान्ति का मार्ग का त्याग कर शत्रुओं के वध हेतु अपने उसी पूर्व तेज धारण करने के लिए प्रसन्न हो जाएँ , क्योंकि इच्छा रहित मुनिजन काम , क्रोध आदि छः शत्रुओं पर कान्ति से विजय प्राप्त करने में सफल होते हैं , राजा लोग नहीं।

" व्रजन्ति शत्रूनवधूय निस्पृहीः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः। "

इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ग में छोटी-छोटी सूक्तियों में गम्भीर और विपुल भाव कवि ने भर दिया है। एक-एक शब्द साभिप्राय है। उपर्युक्त प्रसंगो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाकवि भारवि अर्थ गाम्भीर्य के परमाचार्य हैं, कवि शिरोमणि है। वर्णानात्मक और शैली तो मानो कवि भारवि की सहचरी है। इस सम्पूर्ण सर्ग शब्द वैचित्रय, अर्थगौरव, राजनीति वर्णन कौशल आदि के उदाहरण बहुलता से उपलब्ध हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न–

1. कालिदास और अश्वघोष के बाद तृतीय उल्लेखनीय कवि कौन है।
2. भारवि दक्षिण भारत के किस नरेश के सभा पण्डित थे।
3. भारवि के माता-पिता का क्या नाम था।
4. किरातार्जुनीयम् काव्य को कितने सर्ग में सृजन किया गया है।
5. द्यूत क्रिड़ा में हारने के पश्चात् युधिष्ठिर अपने अनुजों के साथ निवास करने के लिए कहाँ रहने लगे थे।

6. भगवान व्यास का आगमन किस सर्ग में होता है।
7. शिव से आशीर्वाद स्वरूप में अर्जुन को क्या प्राप्त हुआ।
8. किरातार्जुनीयम् के नायक कौन है।
9. भारवि ने किस वर्ण से लेकर किस वर्ण के छन्दोंपर पूर्णधिकार प्राप्त किया था।
10. किरातार्जुनीयम् के नायिका कौन है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) भारवि की पत्नी
(क) रसकवती (ख) सुशीला
(ग) अवन्ति (घ) द्रौपदी

(2) पितृघातरूपी घोर मानस पातक के लिए भारवि ने प्रायश्चित किया
(क) पिता के सेवा से (ख) ससुर की गाय चरा के
(ग) ससुर के सेवा से (घ) माँ की सेवा से

(3) दीपशिखा कालिदास की भाँति भारवि की भी संज्ञा थी
(क) अमरकीर्ति (ख) स्थलकमलिनी
(ग) आपपत्र (घ) काव्यप्रेमी

(4) भारवि के ससुर थे।
(क) भोज (ख) विष्णुवर्धन
(ग) श्रीधर (घ) चन्द्रकीर्ति

(5) प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में शब्द का प्रयोग किया है
(क) सरस्वती (ख) पार्वती
(ग) लक्ष्मी (घ) राधारानी

(6) सर्ग में चित्रालंकारों की बहुरंगी छटा इन्द्रधनुष की कीर्ति को भी निष्प्रभ कर देती है।
(क) 15 (ख) 10
(घ) 13 (घ) 8

(7) जल क्रीड़ा के वर्णन में सुन्दर चित्रण हुआ है
(क) संभोग श्रृंगार (ख) श्रृंगार रस
(घ) वीर रस (घ) काव्य रस

(8) सौत्सह व्यक्ति के पास लक्ष्मी स्वयं आती है, उक्त वचन किसने कहाँ
(क) भारवि (ख) अर्जुन
(ग) कालिदास (घ) द्रौपदी

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से जाना कि भारवि का व्यक्तित्त्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय क्या है इसके विषय में समग्र रूप से वर्णन किया गया है। भारवि के समय के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि इनका समय कालिदास के बाद होना चाहिए। अवन्तिसुन्दरी कथा के आधार पर

यह सिद्ध होता है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले थे वह विष्णुवर्धन के राज्य में सभा पण्डित थे। विष्णुवर्धन का शासन काल लगभग 615 ई. का माना जाता है। भारवि की मुख्य कृति किरातार्जुनीयम् है। अवन्ति सुन्दरी कथा के सम्पादक पण्डित रामकृष्ण कवि ने इन्हीं दामोदर के साथ भारवि की एकता मानी है अर्थात् उनकी सम्मति में भारवि ही आचार्य दण्डी के चतुर्थ पुरुष (प्रपितामह) थे, परन्तु जिस पद्य के आधार पर यह अभिन्नता मानी जाती है उसके पाठ अशुद्ध होने के कारण इस सिद्वान्त को अब बदलना पड़ा है। भारवि दण्डी के प्रपितामह नहीं थे प्रत्युत प्रपितामह के मित्र थे , क्योंकि भारवि की सहायता से ही दामोदर राजा विष्णुवर्धन की सभा में प्रविश्ट हुए। जो कुछ हो , इतना तो निश्चित है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले थे और चालुक्यवंशी नरेश विष्णुवर्धन के सभापण्डित थे। कुछ विद्वानों ने भारवि को त्रावणकोर प्रदेश का निवासी सिद्व किया है। भारवि का जीवन वृतान्त भी अन्धकारमय है केवल कुछ किवदन्तियाँ ही उनके संबंध में संस्कृत कवियों से सुनी जाती हैं। एक किंवदन्ति उनको धारा नगरी का निवासी तथा राजा भोज का समकालीन बतलाती है। पिता का नाम श्रीधर तथा माता का नाम सुशीला बतलाया गया है। रसिकवती कन्या से उनका विवाह हुआ था जो कि भडौच के निवासी चन्दकीर्ति की पुत्री थी। यद्यपि भारवि के पिता भी उच्चकोटि के विद्वान् थे , पर भारवि उनसे भी बढ़कर थे। सुनते हैं कि इनके पिता अपने पुत्र के वैदुष्य से परिचित होने पर भी सभा में इनका इसलिए तिरस्कार किया करते थे जिससे वे पाण्डित्य बढ़ाने में , शास्त्राभ्यास करने में और दत्तचित्त हों, परन्तु पण्डित समाज में अपनी निन्दा , जिस पर पिता के द्वारा की गई ; सुनकर भारवि मन ही मन जल भुन गए और पिता को मार डालने का निश्चय किया।

1.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
सहसा	एक साथ अर्थात् एकाएक
विदधीत न	निर्णय नही लेना चाहिए
क्रियाम्	क्रिया (कार्य) को
अविवेक	बिना जाने हुए
विहाय	छोड़कर
दुर्लभ वचः	दुर्लभ वाणी

1. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न – (1) - महाकवि भारवि (2) नरेश विष्णुवर्धन (3) श्रीधर - सुशीला (4) अठारह (18) (5) द्वैतवन में (6) द्वितीय सर्ग में (7) पाशुपतास्त्र (8) अर्जुन (9) 8 से 93 तक (10) द्रौपदी

बहुविकल्पीय प्रश्न– 1-(क) 2- (ग) 3- (ख) 4- (घ) 5- (ग) 6- (क) 7- (ग) 8- (घ)

1. 7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
किरातार्जुनीयम्	भारवि	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय प्रकाशक - शारदा निकेतन , वाराणसी

1. 8 उपयोगी पुस्तकें

1- किरातार्जुनीयम् - भारवि , चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारवि के समय के विषय में परिचय दीजिये।
2. भारवि की काव्यकला पर प्रकाश डालिए।
3. इस इकाई के आधार पर पात्रों का चरित्र चित्रण कीजिए।

इकाई 2. श्री हर्ष - व्यक्तित्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 श्री हर्ष का व्यक्तित्व
2.4 श्री हर्ष के कृतियों का विस्तृत परिचय
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 उपयोगी पुस्तकें
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य से सम्बधित यह दूसरी इकाई है । इससे पूर्व की इकाई में आपने महाकवि भारवि के विषय में अध्ययन किया और उनके प्रसिद्ध महाकाव्य किरातार्जुनीयम् के विषय में जाना तथा उनकी भाषा-शैली से परिचित हुए।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि श्री हर्ष का व्यक्तित्व क्या है श्री हर्ष का जीवन चरित्र का वर्णन बाणभट्ट के ग्रन्थ हर्ष चरितमें प्राप्त होता है। इनके पिता प्रभाकर वर्धन तथा माता यशोमती है। ये अपने पिता के दूसरे पुत्र इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम राज्य वर्धन था। ' राज्य श्री ' नाम की इनकी बहिन योग्य विदुषी थी। बाल्यकाल में इन्हें समुचित शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। महाराजा हर्ष एक महान कवि थे। उन्होने स्वयं भी अनेक रमणीय और सरद ग्रन्थों की रचना कर सरस्वती के विपुल भण्डार को भरा है। इनका व्यक्तित्व ही महान था। श्री हर्ष एक महान दानी थे। श्री हर्ष ने बड़ी भारी सम्पति कवियों को दे डाली। श्री हर्ष महा उदार और सरल हृदय वाले थे। उन्होने तीन ग्रन्थों का निर्माण किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि श्री हर्ष का व्यक्तित्व क्या है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- श्री हर्ष के व्यक्तित्व बाता सकेंगे।
- श्री हर्ष एक महान कवि थे ,सिद्ध कर सकेंगे।
- श्री हर्ष के कितने ग्रन्थ थें , उपका परिचय बता सकेंगे।
- इस इकाई का सारांश लिख सकेंगे।

2.3 श्री हर्ष व्यक्तित्व एवं कृतियो का विस्तृत परिचय

बाणभट्ट के 'हर्षचरित' तथा ह्वेनसांग के यात्राविचरण से हमें स्फुटरूप से ज्ञात है कि हर्षवर्धन 'हूण-हरिण-केसरी' प्रभाकरवर्धन तथा यशोमती के पुत्र थे। ये अपने पिता के दूसरे लड़के थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम राज्यवर्धन था। 'राज्यश्री' नाम की इनकी बहिन योग्य विदुषी थी। बाल्यकाल में इन्हें समुचित शिक्षा दी गई थी। पिता ने पंजाब में रहनेवाले हूणों को पराजित करने के लिए राज्यवर्धन के साथ इन्हें भेजा। राज्यवर्धन आगे जाकर शत्रुओं का विनाश कर रहे थे, इधर हर्षवर्धन आखेट आदि मनोरंजन के साथ-साथ शत्रुओं का पीछा कर रहे थे। इतने में पिता की अस्वस्थता के दुःखद समाचार को लिए हुए एक दूत आया। राजधानी लौट आने पर हर्ष ने पूज्य पितृदेव को मृत्युशैय्या पर पाया। प्रभाकरवर्धन ने हर्षवर्धन को 'निरवशेषाःशत्रवो नेयाः' का उपदेश देकर इस असार संसार से विदाई ली। मन्त्रियों के कहने पर ज्येष्ठ भ्राता के आगमन में कुछ विलम्ब जानकर हर्षवर्धन ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। कुछ समय के अनन्तर राज्यवर्धन ने आकर शासन भार अपने ऊपर लिया, परन्तु वह स्वयं ही वङीय नरेश शशांक की कुटिल नीति का शिकार बन गया। शशांक ने विश्वास दिला कर

राज्यवर्धन को मार डाला। हर्ष के हृदय में भ्रातृवध का समाचार सुनकर प्रतिहिंसा की प्रबल अग्नि प्रज्वलित हो उठी। हर्षवर्धन ने यथासमय शशांक का विनाश कर बंगाल को अपने राज्य में मिला लिया। रिक्त सिंहासन की बागडोर हर्ष-वर्धन में अपने सुमृद्धतथा राज्यकाल 606 ई0 से लेकर 647 ई0 तक माना जाता है।

महाराजा हर्षवर्धन केवल वीर-लक्ष्मी के उपासक न थे, अपितु ललित कलाओं के भी अत्यन्त प्रेमी थे। आपकी सभा को अनेक गुण और गौरव युक्त विद्वान् सर्वदा सुशोभित किया करते थे। बाणभट्ट, मयूरभट्ट तथा मातंगदिवस कर जैसे कवियों से मण्डित इनकी सभा साहित्य-संसार में सदा प्रख्यात रही है। सुना जाता है कि दिवाकर का जन्म नीच (चाण्डल) जाति में हुआ था, परन्तु ये अपनी गुणगरिमा से बाण और मयूर के समान ही राजा के आदरपात्र थे। इस बात को राजशेखर ने सरस्वती के प्रभाव को दिखलाते हुए बड़े ही अच्छे ढंग से कहा है- अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्माङदिवाकर:।

श्रीहर्षस्याभवतृ सभ्य: समो वाणमयूरयों: ।।

दशवीं शताब्दी में उत्पत्र होने वाले महाकवि पद्मगुप्त ने अपने 'नवसाहसांकचरित' महाकाव्य में महाराज हर्ष की सभा में बाण और मयूर की उपस्थित का वर्णन इस प्रकार किया है:--

स चित्रवर्णविच्छितिहारिणोरवनीपति:।
श्रीहर्ष इव संघटचके बाणमयूरयो: ॥

महाराज हर्ष केवल कवि और पण्डितों के ही आश्रयदाता और गुणग्राही न थे , बल्कि उन्होंने स्वयं भी अनेक रमणीय और सरद ग्रन्थों की रचना कर सरस्वती के विपुल भण्डार को भरा है। इस बात को हम अच्छी तरह से कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास की यह सरल सूक्ति ''निसर्गभित्रस्पदमेकसंस्थमस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती चं महाराज हर्ष के विषय में अच्छी तरह से चरितार्थ होती है। इस भारतवर्ष में विकमादित्य , शूद्रक , हाल प्रभृति अनेक विद्या के उपासक राजा हो गये है , परन्तु उन सब में महाराज हर्ष (हर्षवर्धन) अद्वितीय हैं। महाकवि पीयूषवर्ष जयवेद ने अपने 'प्रसन्नराघव' नाटक में महाराज हर्ष को कविताकामिनी का हर्ष (हर्षोहर्ष:) कहा है। उन्होनें वाणभट्ट के साथ हर्ष का नामोल्लेख भी किया है। विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में उत्पन्न होने वाले सोड्ढल ने अपनी 'उदयसुन्दरीकथा' नामक चम्पू में श्रीहर्ष की , सरस्वती को हर्ष प्रदान करने के कारण, 'श्रीर्हर्ष' कहकर प्रशंसा की है:--

श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पाथिवेष नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।
'श्रीहर्ष' एष निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजित: कनककोटिशतेन बाण: ।।

इसी तरह दामोदर गुप्त ने 'कुटनीमत' नामक ग्रन्थ में 'रत्नावली' का नाम लेकर संकेत किया है। यह नाटिका किसी राजा के द्वारा बनाई गई है और उसके निर्माता महाराज हर्ष है, ऐसा कहते हुए उन्होंने उनकी हर्ष की काव्यचातुरी की अत्यन्त प्रशंसा की है इत्सिङ नामक चीनी बौद्व परिव्राजक अपने धर्मग्रन्थों को पढ़ने की इच्छा से हर्ष की मृत्यु के बाद भारतवर्ष में आया था। उसने अपने यात्रा विवरणात्मक ग्रन्थ में महाराज हर्ष को 'नागान्द' नाटक का रचयिता होना स्पष्ट ही लिखा है। उसने यह लिखा है:-- 'राजा शीलादित्य (हर्ष) ने बोधिसत्व जीमूतवाहन की

आख्यायिका को नाटकरूप में परिणत किया और उस नाटक का संगीतादि सामग्री के साथ नंटों के द्वारा अभिनय कराया।' इस प्रमाण से स्पष्ट है कि महाराज हर्ष ने 'नागान्द' नाटक का निर्माण किया था , परन्तु इन प्रमाणों के होते हुए भी जो विद्वान् महाराज हर्ष के ग्रन्थ-रचयिता होने में सन्देह करते है वे बाणभट्ट के इस कथन पर विचार कर अपने सन्देह को दूर कर लें। श्री बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में दो बार राजा (श्री हर्ष) की काव्य-व्याकरणचातुरी की प्रशंसा की है। बाणभट्ट का यह कथन हर्ष की काव्य-चातुरी को प्रकट कर रहा है। 'अस्य कवित्स्य वाचो न पर्याप्तो विषयः'। इस प्रकार से बाणभट्ट ने हर्ष की काव्य रचना की चतुरता को स्पष्ट ही प्रकट किया है। इन ऊपर लिखित प्रमाणों से हमें विश्वास होता है कि महाराज हर्षवर्धन अच्छे कवि थे एवं कविता करने में खूब दक्ष थे। श्रोहर्ष का ग्रन्थ मिलते है--रत्नावली , नागानन्द और प्रियदर्शिका। साहित्य-संसार में रत्नावली के रचयिता के सम्बन्ध में बड़ा आन्दोलन हो चुका है। इस बड़ी गड़बड़ी का मूल कारण मम्मट के काव्यप्रकाश का एक वाक्यांश है। मम्मट ने काव्य के प्रयोजनों में अर्थप्राप्ति भी एक प्रयोजन माना है--हजारों महाकवि कविता-देवी की पूजा कर लक्ष्मी के कृपापात्र बन गये हैं। उदाहरणार्थ , धावकादि कवियों ने हर्षवर्धन से असंख्य धन पाया (श्री-हर्षादेःधावकादीनामिव धनम्) । काव्यप्रकाश के कतिपय टीकाकारों ने इससे यह अर्थ निकाला है कि घावक ने रत्नावली की रचना हर्षवर्धन के नाम से करके असंख्य सम्मति पाई। काव्यप्रकाश के किसी-किसी काश्मीरी प्रति में धावक के स्थान पर बाण का नाम उल्लिखित है , जिसके आधार पर कितने ही विद्वान् बाणभट् पर ही रत्नावली के कर्तृत्व का भार आरोपित करते है। परन्तु ये सब आधुनिक विद्वानों की अनिश्चित कल्पनायें हैं।

काव्य-प्रकाश के उल्लेख का यही आशय है कि श्रीहर्ष ने बड़ी भारी सम्पति कवियों को दे डाली। श्रीहर्ष जैसे उदाराशय तथा महादानी नरेश के लिये यह बात असम्भव नहीं जान पडती। जब असंख्यों ब्राहम्ण , भिक्षु तथा जैनों का आदर होता था तथा उनको प्रशंसनीय दान मिलता था , तब गुणग्राही हर्ष के लिये उसकी कीर्तिलता को पल्लवित करनेवाले कवियों को दान देने में--आदर करने में--भला संकोच कैसे हो सकता है ? काव्यप्रकाश के उल्लेख का प्रकरणगम्य तात्पर्य यही है। अनेकों अर्वाचीन तथा प्राचीन कवियों ने श्रीहर्ष के समीचीन कवि-समाश्रय की शतशः प्रशंसा की है। अभिनन्द कवि ने मम्मट के कथन को दुहराया है:-- **श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम्।** एक दूसरे काव्य -मर्मज्ञ ने ठीक ही लिखा है:--

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षण समर्पितानि कवये बाणय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरूटङ्किताः कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनांग मन्ये परिम्लानताम्।।

भावार्थ यह है कि हर्ष ने बाणभट्ट को हजारों दिग्गज तथा असंख्य सम्पति दे डाली , परन्तु आज उनका नामोनिशान नहीं हैं ; किन्तु बाण ने हर्ष की कीर्ति को काव्यरूप में जो जड़ दिया वह कराल काल के फेर में पड़कर भी मलिन नहीं हो सकती। इससे स्पष्ट है कि ये सब उल्लेख हर्ष के आश्रयदान तथा कवि सत्कार को लक्षित करते है। हर्ष की स्वयं दर्शन में अच्छी गति थी।

वह ह्वेनसांग के संसर्ग से बौद्व दर्शन का एक अभिज्ञ पण्डित बन गया था। ऐसे उदार दानी तथा विद्वान् सम्राट का ऊदार अपने नाम से काव्य गढ़ने की कालिमा पोतना काव्यजगत् में अत्यन्त कलुषित कार्य है। उसका अपने आश्रित कवियों से सहायता लेना असंभव कार्य नही प्रतीत होता , उसको इन नाटकों के कर्तृत्व से वंचित करना हर्ष के महान् गुणों की अवज्ञा करना है। एक क्षण के लिए बाण या घावक को रत्नावली का कर्ता मान भी लिया जाय , परन्तु नागानन्द तथा प्रिय-दर्शिका का कर्तृत्व तो हर्ष से ही सम्बद्व है। कोई भी आलोचक बाणभट्ट को नागानन्द का कर्ता मानने को उद्यत नहीं है। सर्वसम्मति से इस नाटकत्रय की रचना हर्ष की लेखनी से हुई है। अत एव रत्नावली के कर्तृत्व को बाण पर आरोपित करना निन्दनीय जान पड़ता है। पूर्वोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इन तीन नाटकों की रचना स्वंय सम्राट् हर्षवर्धन ने की।

ग्रन्थ

इनकी तीन रचनायें है--(1) प्रियदर्शिका , (2) रत्नावली तथा (3) नागानन्द। ये तीनों रूपक एक ही लेखक की रचनायें है ; इसमें सन्देह करने के लिए स्थान नहीं है। तीनों में घटनाओं का आश्चर्यजनक साम्य है। रत्नावली में सागरिका अपने चित्तविनोद के लिये राजा का चित्र खींचती है। नागानन्द में जीमूतवाहन उसी उद्देश्य से मलयवती का चित्र बनाता है। दोनों स्थानों पर चित्रों के द्वारा ही पात्रों के स्निग्ध हृदय तथा प्रणय की कथा का परिचय दर्शकों का मिलता है। रत्नावली में अपमानित होने पर सागरिका अपने गले को लतापाश से बाँधकर प्राण देने का उद्योग करती है। नागानन्द में भी यही घटना है—नायिका मलयवती प्रणय में अनादृत होने से अपने गले को जकड़ कर मरने का प्रयास करती है। दोनों स्थानों पर नायक के द्वारा उनके प्राणों की रक्षा होती है। इतना ही नहीं , बहुत से पद्य इनमें परस्पर उद्धृत किये गए हैं। फलत: ये तीनों ही लेखक की लेखनी की सुचारु रचनाये है। इन रुपकों में लेखनकर्म का भी निर्णय अन्तरंग परीक्षा के बल पर किया जा सकता है। प्रियदर्शिक तथा रत्नावली दोंनों ही प्रणय नाटिकायें है और एक ही कथानक -उदयन के कथानक - से सम्बन्ध रखती है। प्रिय - दर्शिका में घटना का विन्यास बहुत ढंग का है। रत्नावली में हम घटनाओं के प्रस्ताव में तथा नायिका के प्रणवर्णन में सुधार पातें हैं , जो निश्चयेन 'रत्नावली' को परवर्ती सिद्व कर रहा है। नागानन्द के अंतिम नाटक होने का प्रमाण उसके अभिनेय विषय की गम्भीरता तथा महनीयता है। इसके भी तीन अंको में प्रणय का वर्णन है, परन्तु यहाँ कवि विवाह-सम्बन्ध को प्रतिष्ठित करने के लिए गंधर्व-विवाह की पद्धति अपनाता है, जहाँ परवर्ती नाटिकाओं में द्वितीय विवाह की सिद्धि प्रथम विवाहिता राजमहिषी की स्वेच्छा पर वह अवलम्बित करता है। श्रीहर्ष का चित अब सांसारिक प्रपंचों से ऊब गया है और वह प्रणय से शान्ति की ओर जाता है। उसकी जीवन-सन्ध्या के अनुरूप ही शान्त रसात्मक नागानन्द का प्रणयन है, जहाँ राजाओं के भोगविलासमय नगर से हटकर प्रधान घटनायें आश्रम के शान्त वातावरण में ही घटित होती है।

वस्तुविन्यास

रत्नावली संस्कृत-साहित्य की प्रथम नाटिका है और बहुत ही सफल नाटिका है। शास्त्रीय पद्वति से नाटिका नाटक तथा प्रकरण के उद्भूत एक सुन्दर नाटकिय रचना है जिसमें

नायक 'नाटक' की भाँति इतिहास तथा परम्परा में प्रख्यात होता है तथा कथानक 'प्रकरण' के तुल्य कवि-कल्पित रहता है। दोनों नाटिकाओं का नायक कौशाम्बी-नरेश वत्सराज उदयन है, जो प्राचीन इतिहास में अपने रोमांचक प्रणय के कारण पर्याप्त प्रख्यात है। दोनों का विषय कवि-कल्पित है। नाटिका की शास्त्रीय कल्पना कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' के आधार पर गढ़ी गयी प्रतीत होती है। इसलिए इन नाटिकाओं के ऊपर कालिदास के इस नाटक का प्रचुर प्रभाव खोजा जा सकता है, तथापि इनमें पर्याप्तरूपेण मौलिकता है।

प्रियदर्शिका का सम्बन्ध भी उदयन के कथानक के साथ है। यह भी चार अंको की एक प्रणयनाटिका है। इसकी वस्तु उतनी सुन्दरता के साथ उपन्यस्त नहीं है। उसमें उतनी चुस्ती तथा आकर्षण नहीं है। वत्स का सेनापति विजयसेन दृढ़ध्यकेतु की पुत्री प्रियदर्शिका को दरबार में लाता है तथा आरण्यकाधिपति विन्ध्यकेतु की कन्या रूप में वहाँ रख देता है। महाराज उसे वासवदता को सौंप देते है, जो उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करती है। द्वितीय अंक में राजा उदयन विदूषक के साथ उपवन में घूमने जाते है, जहाँ फूल चुनने के लिए आई प्रियदर्शिका कमलों पर उड़ते हुए भौंरों से परेशान होती है और बिल्ला उठती है। राजा लताकुंज से प्रकट होकर उसे बचाया है। यहीं नायिका का प्रथम दर्शन नायक को होता है तथा अनुराग का बीज इतनी देर में कवि यहाँ बोता है। तृतीय अंक में गर्भांक का सुन्दर निवेश है। मनोरमा (प्रियदर्शिका की सखी) तथा विदूषक की युक्ति से सम्मिलित कल्पित किया जाता है। वासवदत्ता उदयन-चरित से सम्बद्व नाटक का अभिनय करना चाहता है जिसमें मनोरमा को उदयन बनाया है और आरण्यका (प्रिय-दर्शिका) को वासवदत्ता। बड़े कौशल से मनोरमा के स्थान पर स्वंय उदयन ही पहुँच जाता है। वासवदत्ता को संदेश होता है और मनोरमा की सारी चाल पकड़ ली जाती है। चतुर्थ अंक में वासवदत्ता इसलिए चिन्तित है कि उसका मौसा दृढ़वर्मा कलिंगराज के द्वारा बन्धन में पड़ा हुआ है। उदयन उसे छुड़ाने के लिए अपनी सेना भेजता है। दृढ़-वर्मा का कंचुकी आता है और प्रियदर्शिका को पहचान लेना है जिससे वासवदता उदयन के साथ उसका विवाह करा देती है।

रत्नावली में चार अंक है। प्रथम अंक के आरम्भ में राजा का प्रधानामात्य यौगन्धरायण दैव की अनुकूलता तथा सहायता का संकेत करता है जिसके कारण उदयन के साथ परिणय के लिए आनेवाले सिंहलेश्वर की राजकन्या रत्नावली जहाज के डूब जाने पर भी बच जाती है तथा वह मन्त्री के पास किसी सामुद्रिक वनिये के द्वारा लाई जाती है। मन्त्री उसे सागरिका के नाम से वासदता की देख-रेख में रख आता है। कामदेव के उत्सव के प्रसंग में वासवदत्ता कामवपुः राजा उदयन की ही सद्यः पूजा करती है जिसे पेड़ो की झुरमुट से छिपे तौर से सागरिका प्रथम वार देखती है, उन्हें कामदेव समझती है तथा प्रणय के मधुर भाव के अंकुरण के लिए पात्र बनती है। द्वितीय अंक में सागरिका अपनी सखी सुसंगता के साथ चितविनोद के लिए राजा का चित्र अंकित करती है जिसके पास सुसंगता सागरिका का ही चित्र खींचकर उसे रतिसनाथ बना देती है कुछ गुप्त प्रणय की भी चर्चा है। वाजिशाल से एक बन्दर के तोड़कर भागने से महल में कोहराम मच जाता है। इसी हल्लागुल्ला में ये दोनों भाग खड़ी है। चित्रफलक वहीं छूट जाता है और राजा के हाथ पड़ने से वह गुप्त प्रेम के प्रकटन का साधन बनता हैं। इस प्रेम के प्रसारण में सारिका

का भी कुछ हाथ हैं । तृतीय अंक इस नाटिका का हृदय हैं तथा कवि की मौलिक सूझ का उज्ज्वल उदाहरण हैं । वेश-परिवर्तन से उत्पन्न भ्रान्ति के कारण जायमान घटना- सांकर्य बड़ा ही सुन्दर हैं। तथा शेक्सपीयर के 'कॉमेडी आफ एरर्स' नामक नाटक के समान हैं । सागरिका वासवदत्ता का तथा सुसंगतता का दासी का ंचनमाला का वेश धारण कर राजा से पूर्व निश्चय के अनुसार मिलने आती हैं, परन्तु असली वासवदत्ता के इनसे पहले ही आ जाने के कारण सारा गुड़ गोबर हो जाता है । असली और नकली का विभेद बड़ी ही हास्यजनक स्थिति पैदा करता हैं । जिससे अपमानित मानकर सागरिका लतापाश के द्वारा मरने जाती हैं, परन्तु राजा उसे बचाता हैं । चतुर्थ अंक में जादूगर के 'अग्निदाह' का प्रभाव शाली दृश्य हैं । सागरिका भूगर्भ में कैद कर रखी गयी हैं । वह वहाँ से बचा कर सभा में लायी जाती हैं जहाँ उसके पिता के मन्त्रि वसुभूति तथा कंचुकी वाभ्रव्य उसे विदूषक के गले में लटकने वाली 'रत्नावली' की सहायता से पहचानते हैं । तथा वासवदत्ता स्वयं प्रसन्न होकर अपनी भगिनीभूता रत्नावली से राजा का विवाह करा देती हैं । यही मंगलमय अवसान हैं ।

नागानन्द में पाँच अंक हैं । यह किसी बौद्व अवदान के ऊपर आश्रित हैं । प्रथम अंक में जीमूतकेतु का आश्रम में जाना तथा उनके पुत्र जीमूतवाहन का भी पितृदत्त राज्य का परित्याग कर वहीं सेवार्थ जाना और गौरी के मन्दिर में मलयवती के वीणावादन से उसके हृदय के अनुराग का संचार वर्णित हैं । द्वितीय अंक में जीमूतवाहन तथा मलयवती के आनन्ददायक विवाह का विस्तृत वर्णन हैं । तृतीय अंक भी विवाह-कथा से ही सम्बद्व हैं । चतुर्थ अंक में राज कुमार जीमूतवाहन का समुद्रतीर आना तथा प्रतिदिन एक नाग का गरूड़ के लिये भोजन बनने की बात वर्णित हैं । उस दिन अपनी माता के इकलौते पुत्र शंखचूड़ की बारी थी । उसकी माता के कारण रोदन से द्रवीभूत जीमूतवाहन स्वयं उसके स्थान पर गरूड़ का भोजन बनने जाता हैं, शंखचूड़ राजी नहीं होता हैं, परन्तु उसकी क्षणिक अनुपस्थित में जीमूत अपने शरीर को रक्तवस्त्र में ढँककर शिला पर बैठ जाता हैं । गरूड़ आकर अपनी चोंच में उसे पहाड़ के शिखर पर उठा ले जाता हैं तथा खाता हैं । जीमूत दृढ़ हैं, उसके इस त्याग पर पुष्पवृष्टि होती हैं। पंचम अंक में माता-पिता व्याकूल होकर जीमूत के समाचार के लिये सेवक भेजते हैं । शंखचूड़ से पूरी घटनाओं का पता चलता हैं । गरूड़ को भी इस नाग की दृढ़ता पर आश्चर्य होता हैं । वह पूरा हाल पूछता हैं तथा नागों को न खाने की प्रतिज्ञा कर वह जीमूत के खाने से विरत होता हैं । मंगल के साथ नाटक समाप्त होता हैं । रत्नावली की प्रसिद्धि अपने गुणों के कारण प्राचीनकाल से ही अक्षुण्ण चली आ रही हैं । शास्त्रीय पद्धती पर निर्मित एक सम्पूर्ण रूपक के रूप में इसकी प्रख्याति का पता हमें 'दशरूपक' के विशिष्ट विश्लेषण से चलता हैं । धनंजय ने इसकी कथावस्तु का विस्तृत तथा विशद विश्लेषण 'दशरूपक' में किया हैं । विश्वनाथ कविराज ने भी सन्धियों तथा सन्ध्यंकों के दृष्टान्त देने के लिए इसे ही विशेषतया चुना हैं । यह न समझना चाहिये कि नाटकीय विधिविधानों को प्रदर्शित करने के लिए ही हर्ष ने रत्नावली की रचना की ।

यदि ऐसा होता तो यह नाटिका साधारण कोटि की ही ठहरती हैं, परन्तु तथ्य यह नहीं हैं । हर्ष ने एक आदर्श कथानक को लेकर एक भव्य रूप दिया हैं जिसके विश्लेषण करने से नाटयशास्त्र के

अनुसार वस्तु की पाँचों सन्धियाँ यहाँ सपस्ट रूप से उपस्थित हैं। रत्नावली नाटिका का बीज वत्सराज के द्वारा रत्नावली की प्राप्ति का कारणभूत अनुकूल देव हैं, जो राजा के अनुराग को बढ़ाने में सहायक होता हैं। इस प्रकार प्रथम अंक में अनुराग-बीज का प्रक्षेप हैं और यहाँ मुख-सन्धि भी वर्तमान हैं। बिन्दु का उपक्षेप 'अस्तायास्तसमस्तभासी नभसः पार प्रयाते रवौ' वाले श्लोक में हैं। प्रतिमुखसन्धि द्वितीय अंक में आती हैं। जहाँ वत्सराज और सागरिका के मिलन के लिये उद्योगशील सुसंगता और विदुषक उस अनुराग बीज को पूर्णतया जान लेते हैं। तथा वासवदत्ता भी चित्रफलक के वृतान्त से उस अनुराग का अनुमान करती हैं। इस प्रकार दृश्य और अदृश्य रूप से विकसित होने के कारण इस अंक में प्रतिमुख सन्धि हैं। गर्भ सन्धि तृतीय अंक में हैं, जहाँ वेश बदलकर सागरिका के अभिसरण से राजा के हृदय में उसकी प्राप्ति की आशा बंध जाती हैं। परन्तु वासवदत्ता के अड़ंगा लगा देने से उस आशा पर भी पानी फिरा हैं। अवमर्शसन्धि रत्नावली के चतुर्थ अंक में आग लगने तक के कथानक तक हैं। क्योंकि यहाँ वासवदत्ता की प्रसन्नता हो जाने से रत्नावली की प्राप्ति में किसी प्रकार का विघ्न दृष्टिगोचर नहीं होता हैं। निर्वहणसन्धि चतुर्थ अंक के अर्ध में हैं, जहाँ वसुभूति तथा बाभ्रव्य के साक्षात् प्रमाण एवं विदूषक के गले में विद्यमान रत्नावली को देखकर सागरिका के सच्चे रूप का बोध होता हैं। तथा राजा का उससे मिलन सम्पन्न होता हैं।

पात्रसमीक्षण

चरित्र के चित्रण में हर्ष ने अपनी स्वाभाविक निपुणता प्रदर्शित की हैं। वे स्वयं राजा थे और इसीलिये वे दरबार से सम्बद्ध जीवन के चित्रण तथा कथानक के विन्यास में स्वाभाविक कौशल दिखलाते हैं। उदयन का चित्रण धीरललित नायक के रूप में बड़ा सुन्दर हैं। वह अपने प्रधानामात्य यौगंधरायण के ऊपरअपने राज्यसंचालन का भार रखकर स्वयं कला तथा प्रणय की आसक्ति में अपना जीवन बिताता हैं। उसके सौन्दर्य-प्रेम का परिचय 'कामोत्सव' के अवसर पर मिलता हैं। उसका चित्रण 'रोमांचक प्रणयी' (रोमान्टिक लवर) के रूप में हर्ष ने बड़ी दक्षता से किया हैं।

नाटिका की नायिका रत्नावली के रूप में बहुत सुन्दर तथा चरित्र में बहुत ही उदात्त हैं। वह सिंहलेश्वर की दुहिता हैं। और इस आभिजात्य का उसे पूर्ण अभिमान हैं। उसके चरित्र में एक छोटा सा भी धब्बा नहीं हैं। उसका प्रत्येक कार्य औदात्य के द्वारा प्रेरित होता हैं। जब उसे उदयन का पूरा परिचय मिल जाता हैं कि यह वही नरेन्द्र हैं जिसके लिये पिता ने मुझे दिया था, तभी वह प्रणय में अग्रसर होती हैं। यह प्रणय स्वाभाविकता तथा मर्यादा के बिलकुल भीतर रहता हैं। वह अपने दासी भाव से भिन्न नहीं हैं। वह अपनी स्वामिनी की पूर्ण सेविका होने के नाते उसके प्रति किसी प्रकार अनुचित कार्य करने से सदा परांगमुख रहती हैं। संकेत-स्थल के लिये भी वह स्वयं अग्रसर नहीं होती , प्रत्युत् विदुषक तथा सुसंगता के कारण ही वह इसमें प्रवृत कराई जाती हैं। महारानी इस वृतान्त से परिचित हो गई हैं, यह जानकर वह इतनी लज्जित होती हैं कि अपना प्राण ही दे देना चाहती हैं। वह इसे अपनी मर्यादा के ऊपर घोर प्रहार समझती हैं। रत्नावली का प्रणय रोमान्चक होकर भी संयत तथा मर्यादित हैं। दसके हृदय में राजा के लिये

प्रेम का परिचय हमें चित्रफलक के वृतान्त से भली-भाँति चलता हैं। उसके कार्यकलाप मर्यादा तथा आभीजात्य के सौरभ से सुगन्धित हैं। फलतः रत्नावली का चरित्र बड़ा ही उदात्त , प्रणय पूर्ण तथा कोमल हैं।

इसके विपरीत वासवदत्ता के चरित्र में प्रभुत्व तथा पूर्ण राज्य हैं। वह जानती हैं तथा अभिमान रखती हैं कि वह उदयन की पट्टमहिषी हैं। राजा भी उसके साथ अधिकार पूर्ण प्रणय के आगे अपना मस्तिक झुकाता हैं और इसकी रट लगाये रहता हैं कि देवी को प्रसन्न करने के अतिरिक्त सागरिका से संगम का अन्य कोई उपाय नहीं हैं। (देवी प्रसादनं मुक्तवा नास्ति अन्योपायः)। वह इतनी प्रभुत्व शालिनी हैं कि अपराध करने पर वह अपनी दासियों को कौन कहै, राजा के 'नर्मसचिव' विदूषक को भी कारागार में डाल देती हैं। 'प्रभूता सर्वतोमुखी' की जीती जागती प्रतिमा होने पर भी वह कोमल हैं, क्रूर नहीं। राजा की वास्तविक हितचिन्तक हैं, विद्वेषक नहीं। वह सचमुच प्रतिप्राणा हैं और प्रभूता की भावना इसी की बाह्रा अभिव्यक्ति हैं। वासवदत्ता के चरित्र के संदर्भ में रत्नावली का चरित्र कोमलता , मृदुता तथा आभिजात्य के आलोक से पूर्णरूपेण आलोकित होता हैं।

नागानन्द का नायक जीमूतवाहन अपने आदर्श चरित्र के लिये सदा स्मरणीय रहेगा। वह पितृभक्ति का उज्ज्वल प्रतीक हैं। जो विशाल साम्राज्य के वैभव तथा समृद्धि की उपेक्षा करके अपने माता-पिता की सेवा के निमित्त जंगल में जाकर रहता हैं। वह कल्पवृक्ष के दान के द्वारा अपने परोपकार को सिद्व करता हैं। वह साधारण पार्थिव जीव हैं; मलयवती के प्रेम से यही सिद्व होता हैं। परोपकार की वेदी पर आत्मसमर्पण उसके जीवन का महान उद्देश्य हैं। वह दृढनिश्चयी हैं, और उसके निश्चय तथा स्वार्थत्याग का सद्यः प्रभाव क्रूरहृदय नृशंस गरूड़ पर इतना अधिक पड़ता हैं कि वह उसी दिन से हिंसा-व्यापार से विरत हो जाता हैं। नागानन्द के मुख्य रस के विषय में आलोचको में मतभेद हैं। कतिपय आलोचक इसमें 'शान्तरस' की प्रधानता मानते हैं, परन्तु अभिनव गुप्त ने इसे 'दयावीर' का ही एक समुज्ज्वल दृष्टांत माना हैं। स्वयं उनके पिता के मुख से जीमूतवाहन के शोभन गुणों का यह मंजुल वर्णन उद्धृत हैं -

निराधारं धैर्यें कमिव शरणं यातु विनयः
क्षमः क्षान्ति वोढुं क इह? विरता दानपरता।
हतं नूनं सत्यं व्रजतु कृपणा क्वाद्य करूणा
जगज्जातं शुन्यं त्वयि तनय! लोकान्तरगते।। नागानन्द 5/30

राजा जीमूतकेतु अपने पुत्र की मृत्यु से शोकोद्विग्न होकर कह रहा हैं- हैं पुत्र ! तुम्हारे दूसरे लोक चले जाने पर - स्वर्गवासी होने पर- धैर्ये बिना आधार का हो गया। विनय अब किसके शरण में जाय? अब क्षमा को कौन धारण कर सकता हैं। अब दानशीलता उठ गई। सच मुच सच्चाई नष्ट हो गई। आज दीन बनकर करूणा कहाँ जाय ? सच तो यह हैं कि आज यह संसार सूना ही हो गया- निःसार हो गया। सचमुच परोपकारी प्राणी संसार को आलोकित करने वाला प्रदीप हैं।

हर्ष का नाट्यवैशिष्ट्य

हर्ष संस्कृत नाटक कारों में रोमांचक 'प्रणय-नाटिका ' के निर्माता के रूप में अत्यधिक प्रसिद्ध है। उनके ऊपर भास और कालिदास का प्रकृष्ट प्रभाव तथा प्रेरणा अवश्य विद्यमान दिखाई देती हैं। भास ने भी उदयन से सम्बद्व दो नाटकों की रचना की हैं- स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायण। इन दोनों नाटकों का प्रभाव विषय की एकता तथा कथानक की अभिन्नता होने के कारण हर्ष की इन दोनों नाटकों के ऊपर पड़ा हैं। इस प्रकार कालिदास के नाटकों की भी घटनाओं, वर्णनों तथा वार्तालापों में विशेष साम्य दृष्टिगोचर होता हैं- विशेषतः मालविकाग्निमित्र का, इस प्रकार हर्ष की मौलिकता तथा नवीन कल्पना में किसी प्रकार का सन्देह दृष्टिगोचर नहीं होता है।

रोमान्टिक ड्रामा के जितने कमनीय तथा उपादेय साधन होते हैं, उन सब का उपयोग हर्ष नें इन रूपकों में किया हैं। कालिदास के ही समान हर्ष भी प्रकृति और मानव के पूर्ण सामंजस्य के पक्षपाती हैं। मानव-भाव को जाग्रत करने के लिये दोनों नें प्रकृति के सभी पक्षों के साथ सुन्दर परिस्थिति उत्पन्न की है। 'कामोत्सव' के द्वारा पूर्ण आनन्द का साम्राज्य जब चारों और व्याप्त हों जाता है, तब सागरिका और उदयन के प्रथम दर्शन की अवतारणा की जाती है। गौरी के मन्दिर में वीणावादन की माधुर्य से शान्त वातावरण में जीमूतवाहन मलयवती को पहली बार देखता है। इस प्रकार स्थान, ऋतु तथा सामग्री उपस्थित कर हर्ष ने रोमांचक प्रणय के उन्मेष के लिये उपयुक्त अवसर प्रदान किया है। इस प्रकार वे प्रणय-नाटिका के प्रथम सफल नाटककार है। 'गर्भांक' की योजना उनकी दूसरी शास्त्रीय विशेषता है जिसका अनुसरण भवभूती ने उत्तररामचरित में और राजशेखर ने बालरामायण में बड़े कौशल से किया है।

हर्ष की काव्यशैली सरल तथा सुबोध है। उनका वर्णन इतना विशद है कि पूरा दृश्य आँखों के सामने से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है। रत्नावली में होली का चमत्कारिक वर्णन अन्यत्र अपनी समानता नहीं रखता। नागानन्द का आश्रमवर्णन भी बड़ा सुन्दर, सरस तथा नैसर्गिक है। इस प्रकार काव्यकला तथा नाट्यकला-उभय दृष्टियों से हर्ष एक सफल कवि तथा रूपक-निर्माता हैं (रत्नावली 3।13) -

किं पास्य रूचिं न हन्ति नयनानन्द विधते न किं पद्मस्य
वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरूते नालोकमात्रेण किम्।
वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशूरूज्जृम्भते
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तवाप्यस्त्येव बिम्बाधरे।।

राजा उदयन सागरिका से कह रहा है कि तुम्हारे चन्द्रवदन के रहने पर यह दूसरा चन्द्रमा क्यों उदय ले रहा है ? उदय से यह अपनी जड़ता क्या नहीं प्रदर्शित करता ? इसके उदय होने की जरूरत ही क्या थी ? तुम्हारा मुख क्या कमल की शोभा को नहीं नष्ट कर देता? क्या वह नेत्रों को आनन्द नहीं देता? देखें जाने से ही क्या वह काम -वासना को प्रबल नही बनाता ? चन्द्रमा के कार्य विदित है। वे तो तेरे मुख में भी विद्यमान है यदि अमृत धारण करने के कारण चन्द्रमा को गर्व है, क्या तेरे बिम्बाधर में सुधा नही है तब फिर तुम्हारे चन्द्रवदन के सामने चन्द्रमा के उदय लेनें की क्या जरुरत है यह पद्य काव्यप्रकाश में उद्धृत किया गया है।

अभ्यास प्रश्न 1

अति - लघुत्तरीय प्रश्न -

1. हर्षवधर्न के माता -पिता का क्या नाम था।
2. हर्षवर्धन की वहिन का क्या नाम था।-
3. दिवाकर का जन्म किस जाति में हुआ था।
4. महाकविपद्मगुप्त किस शताब्दी में उत्पन्न हुए।
5. नागानन्द नाटक के रचयिता कौन है।
6. संस्कृत साहित्य के प्रथम नाटिका का क्या नाम है।
7. प्रियदर्शिका के पिता का क्या नाम था।
8. रत्नावली के नायक कौन है।
9. नागानन्द मे कुल कितने अंक हैं।
10. नागानन्द का नायक कौन है।
11. जीमूतवाहन मलयवती को पहली बार कहॉ देखता है।
12. उदयन ने चन्द्रमा की बराबरी किसके साथ की है।
13. - हर्ष की प्रशंसा ' श्रीहर्ष ' कहकर किसने किया है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हर्षवर्धन के ज्येष्ठ भ्राता का नाम था-

(क)- बाण भट्ट (ख) राज्यवर्धन

(ग)- मयूर भट्ट (घ) शशांक

2 - हर्षवर्धन ने अपने सुदृढ़ तथा राज्य काल ई०से लेकर ०तक माना जाता है -

(क) 601 से 605 तक (ख) 606 से 647 तक

(ग) 510 से 525 तक (घ)525 से 560 तक

(3) हर्षवर्धन ने रचना की है -

(क) प्रिय दर्शिका (ख) नागान्द

(ग) रत्नावली (घ) दनमें सभी

(4) रत्नावली की नायिका है-

(क) रत्नावली (ख) मनोरमा

(ग) सागरिका (घ) इनमें सभी

(5) - दृढ़वर्मा की पुत्री का नाम था-

(क) प्रियदर्शिका (ख) सगरिका

(ग) रत्नावली (घ) मनोरमा

(6)- प्रियदर्शिका में कुल अंक है-

(क) तीन (ग) चार

(ख) सात (घ) गध

(7) रत्नावली है-

(क) नाटक (ग) पघ

(ख) नाटिका (घ) गघ

(8) नागानन्द मे कुल अंक है-

(क) तीन (ग) आठ

(ख) दी (घ) पाचं

2.5 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप जान चुके है की श्री हर्ष के माता पिता का नाम क्या था। श्री हर्ष का व्यक्तित्व महान था , महाराजा हर्षवर्धन केवल धीर वीर लक्ष्मी के उपासक न थे , अपितु ललित कलाओं के भी अत्यन्त प्रेमी थे। महाराजा हर्ष के कृति के रुप में तीन ग्रन्थ प्राप्त होते है - प्रियदर्शिका 2- रत्नावली 3- नागानन्द इन तीनो ग्रन्थों में घटनाओं का आश्चर्य जनक साम्य है रत्नावली में सागरिका अपने चित्तविनोद के लिए राजा की चित्र खींचती है । नागानन्द में जीमूतवाहन उसी उद्देश्य से मलयती का चित्र बनाता है दोनो स्थानों पर चित्रो के द्वारा ही पात्रों के स्निग्ध हृदय तथा प्रणय की कथा का परिचय दर्शको को प्राप्त है। इस इकाई में इन तीनों ग्रन्थों का सम्यग् रुप से वर्णन किया गया है। हर्ष संस्कृत नाटककारों में रोमांचक प्रणय - नाटिका के निर्माता के रुप में प्राप्त होते हैं हर्ष की मौलिकता तथा नवीन कल्पना के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नही प्राप्त होता है।

2.6 शब्दावली

शब्द	अर्थ
भ्राता	भाई
भ्रातवध	भाई का वध
शर्त्रवः	शत्रुओं ने
अधे	आह
प्रभाव:	प्रभाव
वाग्देव्या	सरस्वती देवी
दिवाकर:	सूर्य
श्री हर्षस्य	श्री हर्ष का
अभणत्	हुआ
सम्यू:	अच्छा
समः	समान
वाणमयुरयों	वाण मयुर का
श्री हर्ष इव	श्री हर्ष जैसा
काव्य चातुरी	काव्य में चतुर

पर्याप्तः	पर्याप्त
अस्य	इसका
वितत्तार	फैलाया
समर्पितानि	समर्पित किये
परिम्लानताम्	मलिन
नभसः	आकाश
प्रयाते	चले जाने पर
मुकत्वा	छोड़कर
बाह्य	बाहर
किंम्	क्या

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1-

अति - लघुत्तरीय प्रश्न - 1- प्रभाकर वर्धन तथा यशोमति 2- राज्य श्री 3- चाण्डाल 4- दशवीं शताब्दी 5- महाराज हर्ष 6- रत्नावली 7- विजय सेन 8- उदयन 9- पॉच 10- जीमूत वाहन 11- गौरी मन्दिर में 12- सागरिका के मुख से 13- सोड़ढ़ल ने

बहुविकल्पीय प्रश्न - 1- ख 2- घ 3- घ 4- क 5- क 6- ख 7- ख 8- ख।

2. 8 सदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

1- संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय प्रकाशक - शारदा निकेतन , सिगरा वाराणसी

2. 9 उपयोगी पुस्तकें

1- संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय प्रकाशक - शारदा निकेतन ,सिगरा वाराणसी

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1-हर्ष वर्धन का परिचय दीजिये।

2- हर्ष की रचनाओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई - 3. जयदेव के व्यक्तित्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3. 2 उद्देश्य
3. 3 जयदेव के व्यक्तित्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय
3. 4 सारांश
3. 5 शब्दावली
3. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3. 7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3. 8 उपयोगी पुस्तकें
3. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित यह खण्ड़ दो की यह तीसरी इकाई है । इससे पूर्व की इकाइयों में आपने भारवि और श्रीहर्ष के विषय में विस्तृत अध्ययन किया।

इस इकाई में जयदेव के भक्तिमय जीवन के विषय में विस्तार से बताया गया है । राधा कृष्ण की प्रेम की निर्मलता बड़े सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त की गयी है । साथ ही जयदेव की काव्यचातुरी का निदर्शन भी इस इकाई में प्राप्त है । महाकवि जयदेव राजा लक्ष्मणसेन की सभा में रहते थे । जिनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीतगोविन्द' है, महाकवि जयदेव भक्तिरस में ही लिप्त रहते थे। इनके ग्रन्थ गीतगोविन्द में 12 सर्ग थे । प्रत्येक सर्ग में गीतों का ही वर्णन है । गीतों को परस्पर मिलाने से कहीं कहीं पद्य का भी वर्णन दृष्टिगत् होता है । इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि जयदेव कौन थे और कितने थे ।

3. 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- जयदेव कितने हैं , निर्णय कर सकेंगे ।
- जयदेव कौन थे यह बता पायेगें ।
- जयदेव का जन्म स्थान कहाँ है, वर्णन करेंगे ।
- जयदेव की मुख्य कृति के विषय में परिचय प्राप्त करेंगे ।
- गीतगोविन्द में किसका वर्णन है , उल्लेख करेंगे ।
- प्रसन्नराघव के रचनाकार कौन हैं, समाधान करेंगे ।

3. 3 जयदेव के व्यक्तित्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय

महाकवि जयदेव का परिचय -

राजा लक्ष्मणसेन की सभा में आश्रित ये बंगाल के सेनवंश के अन्तिम राजकवि थे , जिनकी लेखनी ने ' गीतगोविंद 'जैसे अमर काव्य की सृष्टिकी है। महाकवि जयदेव उत्कल(बंगाल) के केन्दुबिल्व नामक स्थान के निवासी थे । इनके पिता का नाम भोजदेव तथा माता का नाम राधा देवी था । राजा लक्ष्मणसेन का एक शिलालेख 1116 ई0 का मिलता है अत: जयदेव का समय 1100 ई0 के लगभग माना जाता है । एकनिष्ठ होकर इस महाकवि के भक्तों ने इसकी लोकातीत का संरक्षण चरितों में बड़ी तत्परता के साथ किया है । इसका जीवन आनन्दकन्द व्रजचन्द्र की दिव्य भक्ति में पगे हुए भक्त का जीवन था । इसका जीवन एक ही रस से बाहर-भीतर ओत-प्रोत था और वह था भक्तिरस । इसके ' गीतगोविंद' में 12 सर्ग हैं । प्रत्येक सर्ग गीतों से ही समन्वित् है। सर्गों को परस्पर मिलाने के लिए कथा के सूत्र को बतलाने के लिए कतिपय वर्णनात्मक पद्य भी हैं । ' गीतगोविंद ' भगवती संस्कृत-भारतीके सौन्दर्य तथा माधुर्य की पराकाष्ठा है । महाकवि कालिदास की कविता में भी इस रसपेशलता मधुर भाव का हमें

दर्शन नहीं मिलता । इस काव्य में कोमलकान्त-पदावली का सरस प्रभाव तथा मधुरता का मधुमय सन्निवेश है । आनन्दकन्द व्रजचन्द्र तथा भगवती राधिका की ललित लीलाओं का जितना सुन्दर वर्णन यहाँ मिलता है, वह अन्यत्र कहाँ देखने को मिलता है ? शब्दमाधुर्य के लिए 'ललित-लवंगलतापरिशीलन-कोमल-मलय-समीरे (गीत01/3)'' वाली अष्टपदी का पाठ पर्याप्त होगा।

भावों का सौष्ठव भी उतना ही चित्ताकर्षक है। विरहिणी राधिका के वर्णन मे कवि की यह उक्ति कितनी अनूठी है। राधा के दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा झर रही है। ऐसा जान पड़ता है कि राहु के दाँतों के गड़ जाने से चन्द्रमा से अमृत की धारा बह रही हो:--

वहति च वलित-विलोचनजलभरमाननकमलमुदारम्।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलन-गलितामृतधारम्॥

उपमा की कल्पना तथा उत्प्रेक्षा की उड़ान में यह काव्य अनूठा तो है ही , परन्तु इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता है प्रेम की उदात्त भावना। राधाकृष्ण के प्रेम की निर्मलता तथा अध्यात्मिकता सुन्दर शब्दों में यहाँ अभिव्यक्त की गई है । श्रृंगार-शिरोमणि कृष्ण का मिलन जीव-ब्रह्म का मिलन है। साधनामार्ग के अनेक तथ्यों का रहस्य यहाँ सुलझाया गया है। अर्थ माधुर्य के लिए इस पद्य का अवलोकन पर्याप्त होगा --

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुसंदीपकं
गतिर्जमनोरमा विजितरम्भमूरूद्वयम्।
रतिस्तव कलावती रूचिर-चित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवतं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता॥

राधा के विविध अंगों में विविध अप्सराओं का मिलान है, अत: उसका शरीर अप्सरा मय है। इस प्रकार राधा का रसमय वर्णन है -- तुम्हारे नेत्र मद से अलस-आलसी है (पक्षान्तर में ' मदालसा 'नामक अप्सरा है) , तुम्हारा मुख चन्द्रमा को दीप्त करने वाला है (पक्षान्तर ' इन्दुमती ' अप्सरा) , गति जनों के मन को रमण करने वाली है (पक्षान्तर -- ' मनोरमा ' अप्सरा) ; तुम्हारे दोनों उरूओं ने रम्भा (केला तथा ' रम्भा ' नामक विख्यात अप्सरा) को जीत लिया है। तुम्हारी रति कला से युक्त है (' कलावती ' अप्सरा)। तुम्हारी दोनों भौंहे सुन्दर है (पक्षान्तर -- ' चित्रलेखा ' अप्सरा)। हे तन्वी , पृथ्वी पर रहकर भी तुम देव-युवतियों के समूह को अपने शरीर में धारण करती हो। इस कमनीय पद्य में श्लेष के माहात्म्य से देवांगनाओं के नाम निर्दिष्ट किये गये है। मुद्रालंकार के द्वारा ' पृथ्वी छन्द का भी रूचिर संकेत सहृदयों के आनन्द का विषय है। गीतगोविन्द का व्यापक प्रभाव उत्तर भारत में ही नहीं , प्रत्युत महाराष्ट्र , गुजरात तथा कन्नड़ प्रान्त के साहित्य पर भी पड़ा। महाप्रभु चैतन्यदेव गीतगोविन्द की माधुरी के परम उपासक थे। उनके शिष्य प्रतापरूद्रदेव (२६ शतक 1199 ई0) ने उत्कल के अनेक मन्दिरों में इसके नियमित गायन के लिए भूमिदान की व्यवस्था की थी। मराठी साहित्य में महानुभानी ग्रन्थकार भास्कर भट्ट बोरीकर (१२७५ ई. १३२० ई.) के काव्य - ग्रन्थ ' शिशु-पालवध ' में गीत-गोविन्द से अनेक भाव-सादृश्य उपलब्ध होते है , जिसे ग्रन्थकार ने जयदेव से निश्चित रूप्

से ग्रहण किया है। गुजरात के राजा सारंगदेव के एक शिलालेख (संवत् ई.) का मंगलश्लोक गीतगोविंद के प्रथम सर्ग का अंतिम पद्य है।

अप्रमेय शास्त्री (ई.) ने इस ग्रन्थ पर श्रृंगार-प्रकाशिका नामक व्याख्या कन्नड़ भाषा में लिखी है। मैसूर के राजा चिवकदेवराय (ई.) ने गीत-गोविन्द के आदर्श पर ' गीतगोपाल ' नामक सुन्दर काव्य लिखा है , जो कन्नड़ देश मे गीत-गोविन्द की लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है।

इसके सप्तांकी नाटक ' प्रसन्नराघव ' में रामकथा का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। इसमें भवभूति के नाटकों के समान हृदय के भावों का चित्रण नहीं है और राजशेखर के बालरामायण की तरह वर्णन का विस्तार ही है , परन्तु इतनी मंजुल पदावली है कि पढ़ते ही पूरा चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। प्रसादमयी कविता के कारण इसका ' प्रसन्नराघव ' नाम यथार्थ है।

प्रसन्नराघव की प्रस्तावना से केवल इतना ही पता चलता है कि जयदेव का गोत्र कौण्डिन्य था और वे सुमित्रा तथा महादेव के पुत्र थे। वे कवि तथा तार्किक दोनों एक साथ थे और इस बात पर उनका विशेष अमग है कि कोमलकाव्य के निर्माण में लीलावती भारती कर्कश तर्क से युक्त वकवचन के उद्गार में भी पूर्णतया समर्थ हो सकती है और इसीलिए कविता और तार्किकत्वं का एक स्थान मे निवास विस्मयकारी नहीं मानना चाहिए। अनुमान से कवि के देश तथा काल का परिचय लगता है। जयदेव से ये भिन्न नहीं हैं , परन्तु गीतगोविन्दकार जयदेव से ये भिन्न तथा कालक्रम से अर्वाचीन हैं। गीतगोविन्द के कर्ता जयदेव भोजदेव तथा राधा (रामा) देवी के पुत्र , लक्ष्मण सेन (१२ वीं सदी) के सभा-कवि थे तथा उड़ीसा के केन्दुबिल्व के निवासी थे। विश्वनाथ (२४ वीं शती) ने प्रसन्नराघव का एक पद्य ' कदली कदली ' ध्वनि के उदाहरण में उद्धृत किया है, जिससे इसका समय उनसें पूर्ववर्ती त्रयोदश शतक में मानना उचित होगा। ' प्रसन्नराघव ' में सात अंक हैं। कवि को बालकाण्ड की कथा से इतना अधिक प्रेम है कि उन्होंने प्रथम चार अंको का विस्तार किया है। प्रथम अंक में मंजीरक और नुपूरक नामक बन्दीजनों के द्वारा सीता स्वयंवर की सूचना मिलती है , जिसमें रावण और बाणासुर अपने-अपने भुजबल की प्रचुर प्रशंसा करते है और आपस में संघर्षकर बैठते हैं। द्वितीय अंक में हम जनक की वाटिका में उपस्थित जनों को पाते हैं , जहाँ राम और लक्ष्मण फूल तोड़ने के लिए आते हैं और सीता को देखने का प्रथम अवसर प्राप्त होता है। तृतीय अंक में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के साथ स्वयंवर-मण्डप मे पधारते है और जनक के साथ उनका परिचय कराते है, जो राम के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो उठते है तथा धनुष चढ़ाने की प्रतिज्ञा से वे चिन्तित हो जाते हैं। इसी बीच विश्वामित्र के आदेश से राम धनुष को चढ़ाने के स्थान पर तोड़ देते हैं। विवाह आनन्द के साथ सम्पन्न होता है। चतुर्थ अंक में परशुराम का प्रसंग उपस्थित किया गया है जिसमें राम के साथ उसका वाक्-कलह होता है। प्रथमतः ताण्डचायन ने रावण को ही धनुष का तोड़ने वाला कहा था , परन्तु पीछे सच्ची बात का पता चलता है। परशुराम जी के पूछने पर राम ने सरल उत्तर दिया कि यह पुराना धनुष छूते ही स्वयं टूट गया। लक्ष्मण के साथ भी नोक-झोंक की बातें होती है। पंचम अंक मे गंगा , यमुना और सरयू के संवाद रूप मे राम का वनवास तथा दशरथ की मृत्यु आदि

घटनायें अंकित है। हंस नामक पात्र सीताहरण तक की कथा सुनाता है। षष्ठ अंक में वियोगी राम का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है। हनुमान लंका जाते है जहाँ जानकी शोक से जल मरने के लिए अंगार की याचना करती है। उसी समय हनुमान जी रामनाम से अंकित अँगुठी गिराते हैं। सप्तम अंक में मन्त्री माल्यवान् का परिचारक ' करालक ' आरम्भ ' में विभीषण आदि की बातें कहता है। विद्याधर तथा विद्याधरी युद्ध का वर्णन करते रावण मारा जाता है। चन्द्रमा के उदय होने पर सुग्रीव तथा विभीषण बड़ी सुन्दर कल्पनायें सुनाते है। अंत में पुष्पक विमान पर चढ़कर राम अयोध्या लौट आते हैं।' प्रसन्नराघव ' की कथा के वर्णन से स्पष्ट है कि इस नाटक में नाटकीय तत्त्व की अपेक्षा कवित्व की ही सत्ता विशेष है। कवि में कोमल कविकला की पूर्ण अभिव्यक्ति करने की क्षमता है और वह उसे ललित अवसरों की खोज में रहता है। द्वितीय अंक का वाटिका-वृत्तान्त कवि की निजी कल्पना है बहुत ही सुन्दर कल्पना है। षष्ठ अंक में राम का विरही रूप ही करूणाजनक है , जब जंगल की प्रत्येक वस्तु से सीता का समाचार पूछते तथा विलखते हुए घूमते हैं। प्रभात तथा चन्द्रोदय का वर्णन भी प्रतिभा-संपन्न है। इस प्रकार कविता की दृष्टि से यह बहुत ही सुन्दर, गुण से युक्त तथा लालित्य से मण्डित हैं। परन्तु नाटकीय दृष्टि से इसका मूल्यांकन विशेष नहीं किया जा सकता। प्रसिद्ध घटनाओं का यहाँ केवल नाटकीयरूप ही दिया गया है। उसमें व्यापार की प्रसृति तथा प्रगति खोजने पर भी नहीं मिलती।

गीति काव्य - गीतिकाव्य का सामान्य वैशिष्टय संस्कृत – गीतिकाव्यों में भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। गीति की आत्मा भावातिरेक है। कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से वर्ण्य विषय तथा वस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतियों का निर्माण उस बिन्दु पर होता है, जब कवि का हृदय सुख-दुःख के तीव्र अनुभव से आप्लावित हो जाता है और वह अपनी रागात्मिका अनुभूति को अपनी हार्दिक भावना के कारण बाह्य अभिव्यक्ति के रूप में परिणत करता है। ' स्व 'गम्य अनुभूति 'पर ' के रूप् में परिणत करने के लिए कवि जिन मधुर भावापन्न रससान्द्र उक्तियों का माध्यम पकड़ता है, वही होती है गीतियाँ।इसके लिए कतिपय उपकरण आवश्यक होते है , जो इसके साधक तत्त्व होते है। भावमयता इनमें मुख्य है। यों तो संस्कृत के आलंकारिकों की दृष्टि में काव्यमात्र के लिए रसात्मकता अपेक्षित गुण है , परन्तु गीतिकाव्य के लिए तो यह अनिवार्य है।

अभ्यास प्रश्न 1 -

1. महाकवि जयदेव किस राजा के महाकवि थे।
2. गीतगोविन्द का लेखक कौन है।
3. महाकवि जयदेव का निवास स्थान कहाँ था।
4. यहा कवि जयदेव का सबसे प्रिय रस क्या था।
5. राधा कृष्ण का मिलन क्या था।
6. जयदेव का गोत्र क्या था।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. गीतगोविन्द में सर्ग हैं-

(क) 4 (ख) 6

(ग) 12 (घ) 10

2. प्रसन्नराघव के लेखक है -

(क) विश्वनाथ (ख) जयदेव

(ग) भवभूति (घ) हर्ष

3. प्रसन्नराघव में वर्णन है -

(क) कृष्ण कथा का (ख) राम कथा का

(ग) विष्णु का (घ) ब्रह्म का

4. प्रसन्नराघव में अंक है-

(क) 10 (ख) 4

(ग) 5 (घ) 7

5. प्रसन्नराघव है -

(क) नाटक (ख) कथा

(ग) पद्य (घ) कविता

3. 4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि गीतिकाव्य क्या है गीतिकाव्य के विषय में कवि जयदेव कहते हैं कि कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से वर्ण्य विषय तथा वस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतिकाव्य संस्कृत भारती का परम रमणीय अंग है। गीति की आत्मा भावातिरेक है। कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से वर्ण्य विषय तथा वस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतियों का निर्माण उस बिन्दु पर होता है, जब कवि का हृदय सुख-दुःख के तीव्र अनुभव से आप्लावित हो जाता है और वह अपनी रागात्मिका अनुभूति को अपनी हार्दिक भावना के कारण बाह्य अभिव्यक्ति के रूप में परिणत करता है। ' स्व 'गम्य अनुभूति 'पर ' के रूप् में परिणत करने के लिए कवि जिन मधुर भावापन्न रससान्द्र उक्तियों का माध्यम पकड़ता है, वही होती है गीतियाँ। इसके लिए कतिपय उपकरण आवश्यक होते है , जो इसके साधक तत्त्व होते है। भावमयता इनमें मुख्य है। यों तो संस्कृत के आलंकारिकों की दृष्टि में काव्यमात्र के लिए रसात्मकता अपेक्षित गुण है।

3. 5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
ललित	मनोहर
लवंगलता	नये - नये पत्तों
विलोचन	सुन्दर नेत्र
विधुमिव	ब्रह्म की तरह

तव	तुम्हारी
मदालसे	मद से आलसी है
वदनम्	मुख
इन्दु	चन्द्रमा
सन्दीपकम्	चमकने वाला
गतिर्जनमनोरमा	गतिजनों के मन को रमण करने वाली
विजितरम्भमूरूद्वयम्	तुम्हारें दोनों जंघाओं ने जीत लिया
कलावती	अप्सरा
रूचिर	सुन्दर
चित्रलेखे भ्रुवा	चित्र के समान दोनों भौंहे हैं

3. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 . 1 - राजा लक्ष्मणसेन 2- जयदेव 3- उत्कल के केन्दुविल्व 4- भक्ति रस 5- जीव ब्रह्म का मिलन 6 - कौण्डिन्य

अभ्यास प्रश्न 2 - बहुविकल्पीय प्रश्न 1- ग 2- ख 3- ख 4- घ 5- क

3. 7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गीतगोविन्द , लेखक - जयदेव , प्रकाशक - चौखभा संस्कृत भारति चौक वाराणसी
2. प्रसन्नराघव , लेखक - जयदेव ,प्रकाशक - चौखभा संस्कृत भारति चौक वाराणसी

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

1. गीतगोविन्द , लेखक - जयदेव , प्रकाशक - चौखभा संस्कृत भारति चौक वाराणसी
2. प्रसन्नराघव , लेखक - जयदेव ,प्रकाशक - चौखभा संस्कृत भारति चौक वाराणसी

3. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 . प्रसन्नराघव के सात अंको का सामान्य रूप से वर्णन कीजिये ?
2. महाकवि जयदेव का परिचय दीजिए।

इकाई 4. भवभूति का जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 भवभूति का जीवन परिचय एवं उनके कृतियां
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 उपयोगी पुस्तकें
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के इतिहास के अध्ययन से सम्बन्धित खण्ड दो की यह चौथी इकाई है। भवभूति एक उत्कृष्ट कोटि के विद्वान थे ,उन्हें उनकी विद्वता पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी। उनकी अपनी विद्वता पर गर्व भी था जो भाषा पर इनके पूर्ण अधिकार को देखते हुए स्वाभाविक एवं सात्विक प्रतीत होता है।

महाकवि भवभूति एक महान् कवि थे उनका हृदय अत्यन्त निर्मल था वह सात्विक प्रेम के पक्षपाती थे। उनमें बाहरी कारणों की कोई अपेक्षा नही थी, उनका हृदय अत्यन्त गंभीर था वह आन्तरिक कारणों में विश्वास करते थे।

महाकवि भवभूति मानव मन को पहचानने में अत्यन्त पारखी थे। इसीलिए उन्होंने भगवान राम की लीलाओं का वर्णन किया है। अत: इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि भवभूति का व्यक्तित्व किस प्रकार था और उनकी रचनाशैली क्या थी।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भवभूति के व्यक्तित्व एवं कृतियों का ज्ञान करेंगे।
- महाकवि भवभूति के व्यक्तित्व के विषय में ज्ञान करेंगे।
- महाकवि भवभूति के निवास के विषय में बताएंगे।
- महाकवि भवभूति के समय का उल्लेख करेंगे।
- महाकवि भवभूति की कृतियों के विषय विस्तार से से बताएंगे।

4.3 भवभूति का जीवन परिचय एवं उनकी कृतियाँ

भारतीय मत (सिद्धान्त मत) वेदो में ही नाटक के बीच उपलब्ध होते है। सभी नाटकीय तत्वों को वेद में देखा जा सकता है। जैसे-ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में यम यमी संवाद, उर्वशी पुरूरवा संवाद, सरमा पाणी संवाद, सामवेद में संगीततत्व की सत्ता, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर पर नृत्य विधान आदि। इससे नाटक तत्वों की वेदमूलकता स्पष्टतया सिद्ध होती है। रामायण और महाभारत रंगशाला नट, कुशीलव आदि शब्दो के प्रयोग से भारतीय नाटयकला की प्राचीनता द्योतित होती है। पाणिनी के पाराषर्यशिलाभ्यां भिक्षु नट सुत्रयोः तथा कर्मन्द कुशाश्वादिनिः सूत्र से सिद्ध होता है कि पाणिनी से पहले ही शिलाली और कुशाश्व दो आचार्य हो चुके थे, जिन्होने नटसूत्र (नाटयशास्त्र) का प्रवचन किया था अर्थात् भारतीय नाटयकला पूर्ण विकसित हो चुकी थी। पतन्जलि ने महाभारत में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक दो नाटको का स्पष्ट उल्लेख किया है। हरिवंश में भी रामायण की कथा के अभिनय का उल्लेख देखा जाता है। बुद्धदेव ने अपने अनुशासन में नाटयाभिनय न करने का उपदेश दिया है। मगधराज दिम्बराज ने

नागराज का सम्मान करने के लिए नाटय का अभिनय कराया था, ऐसा ऐतिहासिक दृष्टान्तों से प्रतीत होता है। 'नाटयशास्त्र' में भरतमुनि ने नाटक के आविभार्व और उसके उद्देश्य के विषय में एक अत्यन्त मनोरंजक कथा का उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है- वैवस्वत् मनु के दूसरे युग (त्रेता) में लोग बहुत दुःखी हुए। इस पर इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए जिससे सबका मनोरंजन हो सके। इस पर ब्रह्माजी ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से नाट्य (अभिनय) अथा अथर्ववेद से रस लेकर नाटकरूप 'पंचमवेद' की रचना की।

नाटक का प्रयोजन- नाटक का प्रयोजन बहुत ही महत्वपूर्ण है। आचार्य भरत ने नाटक को 'सार्ववर्णिक वेद' कहा है। वेद में स्त्री और शूद्रों का अधिकार नही है। किन्तु नाटक में सबका अधिकार है। कवि कालिदास ने विभिन्न रूचि वाले मनुष्यों के लिए नाटक को मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है। आचार्य भरत ने नाटक का उद्देश्य बतलाते हुए कहा है- नाटक उत्तम, मध्यम और अधम पात्रों के क्रम का प्रदर्शन कर अत्यन्त प्रभावपूर्ण हितोपदेश करता है। नाटक मनुष्यों में धैर्य, क्रीडा और सुख आदि को उत्पन्न करता है। दुःखार्त, श्रमार्त, शोकार्त, तपस्वी आदि सभी जनो के लिए नाटक उचित अवसर पर विश्रामजनक (मनोरंजन का हेतु) होता है। (नाटयशास्त्र,) अग्नि पुराण का वचन है- नाटय (नाटक) एक ऐसी वस्तु है जिससे धर्म, अर्थ और काम तीनो पुरूषार्थ की प्राप्ति होती है। **त्रिवर्ग साधनं नाटयम.....'। (अग्नि पुराण,)** इस विवेचन से सिद्ध होता है कि नाटक जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

साहित्य में नाटक का स्थान- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य में नाटक का स्थान अत्यन्त मनोरंजक एवं नितान्त जीवनोपयोगी है। अतः यह उक्ति अक्षरशः सत्य है-'काव्येषु नाटक रम्यम्' तथा 'नाटकान्तं कवित्वम्'। अर्थात् काव्यों में नाटक मनोहर होता है और नाटक काव्य के उत्कर्ष की चरम सीमा है। यों तो कुशल साहित्कार किसी भी क्षेत्र में अपने असाधारण कला का सफलता के साथ प्रदर्शन कर सकता है। इसके विपरीत नाटक के दृश्य प्रधान होने के कारण वह अतिशय रमणीय तो होता ही है, उसका प्रभाव भी चिरस्थायी होता है। इस प्रकार कवि अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल होता है। महाकवि कालिदास की विश्वविश्रुतता में उनके अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का ही अपेक्षाकृत अधिक हाथ है तथा महाकवि भवभूति को उनके अपने 'उत्तररामचरित' नाटक ने ही विश्व में अमरता प्रदान की है। इस प्रकार साहित्य में नाटक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

महाकवि भवभूति

उत्तररामचरित जैसे महत्वपूर्ण नाटक के रचियता के नाम के सम्बन्ध में इनके द्वारा लिखी गयी नाटक पुष्पिकाओं के अतिरिक्त कोई अन्य दृढ़तर प्रमाण न होने से विद्वानो में मतभेद है। भवभूति ने अपने नाटको की प्रस्तावना में **'श्रीकण्ठपदलान्छनः भवभूतिर्नाम'** इस प्रकार अपने नाम का परिचय दिया है। इससे स्पष्ट है कि कवि का वास्तविक नाम भवभूति था और 'श्री कण्ठ' इस उपाधि से वे बाद में अलंकृत किये गये। भवभूतिर्नाम इसमें नाम शब्द

प्रसिद्धिद्योतक अव्यव है, इसलिए अधिकतर टीकाकारो ने भवभूति प्रचलित नाम तथा श्रीकण्ठ पैतृक नाम माना है । जैसे-श्रीकण्ठ इति..... पैतृकं नामधेयमिदम् । भवभूतिरिति प्रसिद्धनामवान् । (वीरराघव) इन टीकाकारो ने इस विषय में अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक हेतु भी कल्पित कर लिए है, जैसे-1 साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः इत्यादि कविरचित श्लोक से प्रसन्न होकर किसी राजा ने इन्हे भवभूति इस उपाधि से सम्मानित किया गया। 2. गिरिजा की स्तुति में कवि द्वारा रचे गये गिरिजायाः कुचौ वन्दे भवभूतिसिताननौ, इस श्लोक के कारण भवभूति नाम से कवि प्रसिद्ध हो गया। वीरराघव तथा घनश्याम ने तो इस शब्द की व्युत्पत्ति की आधारशिला पर एक नयी कल्पना का भी प्रतिष्ठापन किया है-अस्मै कवये ईश्वर एव भिक्षुरूपेणागत्य भूतिं दत्तवानिति वदन्ति। एवं च भवात् भगवती भूतिर्यस्येति भवभूतिरित्यन्वर्थ इत्याहुः । (वीरराघव) भूतिः सम्पत् यस्य ईश्वरेणैव जातु द्विजरूपेण..... दत्ता तदाप्रभृति भवभूतिरिति प्रसिद्धो जातः। (घनश्याम)। अर्थात् भव (शिव) ने भिक्षुक रूप में आकर इन्हे भूति (सम्पत्ति) प्रदान की, अतः इनका नाम भवभूति पड़ गया। कुछ लोग इनके पिता 'नीलकण्ठ' के नाम के अनुकरण पर इनका वास्तविक नाम 'श्रीकण्ठ' था और 'भवभूति' उपनाम था- ऐसा भी कहते है, किन्तु यह युक्ति सर्वथा मान्य नही हो सकती, क्योंकि इनके वंश में अनुप्रासात्मक नामकरण की परिपाटी सिद्ध नही होती । इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल था, किन्तु इससे मिलता-जुलता इनके पिता का नाम (नीलकण्ठ) नही है । उपर्युक्त अन्य युक्तियॉ भी इसलिए मान्य नही हो सकती है, क्योंकि श्रीकण्ठपदलान्छनः'-इसमें श्रीकण्ठपदमेव लान्छनं (लाछि लक्षणे धातु) लक्षणं यस्य सः' इस विग्रह से से 'श्रीकण्ठ' यह लक्षण ही प्रतीत होता है। अतएव कवि का नाम भवभूति ही है और 'श्रीकण्ठ' इनका लक्षण (विशेषण) है। हॉ, 'भवभूति' नाम इनके माता-पिता ने सम्भवतः इसलिए रखा होगा कि उन्हे भव (शंकर) की कृपा के परिणामस्वरूप ऐसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई होगी- ऐसी सम्भावना करना किसी हद तक ठीक कहा जा सकता है।

वंश- इनके नाटको की प्रस्तावना के आधार पर ही यह भी ज्ञात है कि दक्षिण में विदर्भ (बरार) के अन्तर्गत पद्मपुर नगर में कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयशाखा वाले, काश्यप गोत्रीय पड.क्तिपावन पंचाग्निपूजक और उदुम्बर उपाधि वाले ब्राह्मण लोग रहते थे। उन्ही की कुल में कोई वाजपेय यज्ञ करने वाले महाकवि हुए। उन्ही की वंश परा परम्परा में पॉचवी पीढ़ी में भवभूति का जन्म हुआ। भवभूति के पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी (अथवा जातुकर्णी) था इनके गुरू का नाम ज्ञाननिधि था।

निवास स्थान- टीकाकार घनश्याम ने भवभूति के द्वारा प्रयुक्त अनेक द्राविड़ प्रयोगो के आधार पर भवभूति का जन्म स्थान द्राविड़ देश में माना है । मालतीमाधव के कुछ पाठो में तथा भण्डारकरः द्वारा सम्पादित पाठ में 'दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम्-ऐसा उल्लेख है । अतः डा0 मिराशी का मत है कि विदर्भ देश के अन्तर्गत पद्मपुर नगर में भवभूति का जन्म हुआ था। एम0 जी0 लेले, जगद्धर के अनुसार पद्मपुर और पद्मावती को एक मानकर ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत नरवाड़ से उत्तर- पूर्व एक गॉव पवाया या 'पोलावाया' को भवभूति का जन्मस्थान

मानते है। बहुत से आधुनिक विद्वानो का कहना है कि भवभूति ने अपनी रचनाओं में गोदावरी तथा विन्ध्याचल का हृदयग्राही वर्णन किया है, इसलिए बहुत संभव है कि इन्ही दोनो के आस-पास इनका जन्मस्थान रहा हो। इस प्रकार भवभूति का जन्मस्थान आज भी अनिर्णीत ही है।

भवभूति का समय-उत्तररामचरित के प्रथम अंक के सत्ताइसवें श्लोक का चतुर्थ चरण है-अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।' इसके सम्बन्ध में किंवन्दती है कि भवभूति ने पहले इसका पाठ '.....रात्रिरेव व्यरंसीत्'-ऐसा रखा था, बाद में कालिदास को यह पद्य दिखलाये जाने पर भवभूति ने कालिदास के सुझाव पर उसके स्थान में 'रात्रिरेव व्यरंसीत्' ऐसा संशोधन कर दिया। इस किंवन्दती से ऐसा मालुम होता है कि भवभूति कालिदास के समय में ही हुए थे, किन्तु इस तथ्य की पुष्टि इतिहास से नही होती है। अतः इसे वस्तुतः किंवन्दती ही मानना चाहिए। इसी प्रकार बल्लाल ने अपने 'भोजप्रबन्ध' में धारानगरी के महाराज भोज के दरबार में कालिदास, भवभूति, बाण और मयूर आदि कवियो को एक साथ लाकर बिठा दिया है। इतना ही नही, उन्होने एक कथा भी गढ़ कर इस प्रकार लिखी है-राजाभोज द्वारा दिये गये विषय पर कालिदास और भवभूति दोनो ने अपनी-अपनी काव्य रचना की। उनके काव्यों की परीक्षा भगवती भुवनेश्वरी के मन्दिर में की गयी। कालिदास की रचना उत्कृष्टतर होने को ही थी कि भगवती भुवनेश्वरी ने अपनी कृपा से भवभूति की रचना को ही उत्कृष्टतर प्रमाणित कर दिया। इस आधार पर भी भवभूति और कालिदास को समकालीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है, किन्तु भोज-प्रबन्ध में विभिन्न काल के कवियों का जमघट तथा उनसे सम्बन्धित कथाएं सभी कुछ इतिहास से मेल न खाने के कारण कदापि न मान्य है। 'भोज-प्रबन्ध' एक मनोरंजक ग्रन्थ हो सकता है, एतिहासिक ग्रन्थ नही। बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में अनेक पूर्ववर्ती कवियों यथा-भास, कालिदास, भट्टारहरिचन्द्र आदि का स्मरण किया है, किन्तु भवभूति की चर्चा नही की है। अतः स्पष्ट है कि बाणभट्ट के बाद ही भवभूति हुए। बाण की शैली से भवभूति की रचनाएं प्रभावित भी है। बाणभट्ट का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। अतः भवभूति को इसके बाद होना चाहिए। यह भवभूति के समय की पूर्वसीमा है। (क) आचार्य मम्मट (ख) महिमभट्ट (ग) तथा आचार्य क्षेमेन्द्र (घ) ने अपने-अपने ग्रन्थ क्रमश: काव्यप्रकाश, व्यक्तिविवेक तथा औचित्य विचारचर्चा में भवभूति के अनेक उद्धरण दिये है। धनञ्जय ने दशरूपक में उत्तररामचरित के अनेकानेक उद्धरण दिये है। अत: भवभूति 750 ई0 से परवर्ती नहीं हो सकते हैं।

(ग) राजशेखर ने बालरामायण में अपने को भवभूति का अवतार माना है। (द्रष्टव्य, बालरामायण) राजशेखर का स्थितकाल 210 से 315 ई.माना जाता है। अतः भवभूति को इससे पूर्व होना चाहिए। (घ) वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति ग्रन्थ में भवभूति के इयं गेहे लक्ष्मीः-इत्यादि पद्य (उत्तर. 1/38) को उद्धृत किया है। वामन का समय 8वीं शती ई. का उत्तरार्द्ध और 9वीं का पूर्वार्द्ध माना जाता है। अतः भवभूति को इनके पूर्व का होना चाहिए। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे तथा गउडवहो प्राकृत काव्य के रचयिता वाक्पतिराज भी इन्ही यशोवर्मा के आश्रित थे (राजत.) यशोवर्मा को कश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया था। ललितादित्य का समय कनिंघम के अनुसार

ई. तक है । वाक्पतिराज ने गउडवहो (साख्यक पद्य) में भवभूति की प्रशंसा की है और उस सूर्यग्रहण का निर्देश भी किया है, जिसका समय जैकोबी के अनुसार 14 अगस्त 733 ई. निर्धारित किया गया है। अत: सिद्ध होता है कि वाक्पतिराज 733 ई0 में यशोवर्मा का आश्रित कवि था और उस समय तक भवभूति की कीर्ति फैल चुकी थी और वह उसका ज्येष्ठ समकालीन आश्रित कवि था । अतः वाक्पतिराज का समय ईसा की आठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है और भवभूति उनसे कुछ पूर्व अर्थात् सातवीं शताब्दी के अन्त में हुए होंगे अथवा यह भी सम्भव है कि जिस समय भवभूति अपनी प्रतिज्ञा के चरम उत्कर्षपर हों, उस समय तक वाक्पतिराज कवि के रूप में प्रसिद्धि न पा सके हों । इस प्रकार भवभूति के स्थितिकाल की उत्तरसीमा सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध या आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित है। अतः भवभूति का स्थितिकाल वाणभट्ट (सातवीं शताब्दी का' पूर्वार्द्ध) के बाद से लेकर आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच सुनिश्चित है।

भवभूति और मीमांसक उम्बेक की अभिन्नता

कुछ दिन पूर्व श्रीशंकर पाण्डुरंग को मालतीमाधव की एक हस्तलिपि प्राप्त हुई थी, जिसके तृतीय अंक की पुस्तिका में लिपिकार ने उसके रचियता के विषय में इति श्री भट्ट कुमारिलशिष्य कृते मालतीमाधवे तृतीयोऽक और षष्ठ अंक की पुष्पिका में इति श्री कुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभव-श्रीमदुम्बेकाचार्यविरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽकः- ऐसा लिखा है । इससे यह समस्या खडी हो जाती है कि क्या भवभूति और उम्बेक एक ही थे ? उम्बेकाचार्य मीमांसा के बहुत बडे विद्वान् थे और उन्होने कुमारिल के श्लोक वार्तिक पर टीका लिखी है । उस टीका का उन्होने वे नाम केचिदिह् .....' से प्रारम्भ किया है, जो मालतीमाधव में भी है। इससे भवभूति और उम्बेक की अभिन्नता की पुष्टि होती है। प्रत्यग्रूप भगवान ने चित्सुखाचार्य की तत्वदीपिका की नयन प्रसादिनी टीका में उम्बेक का कई बार उल्लेख किया है और उनको भवभूति से अभिन्न बतलाया है । श्री हर्ष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' पर आनन्द पूर्ण ने विद्यासागरी नामक टीका लिखी है, उसमें श्लोकवार्तिकसे दो श्लोक उद्वत किये गये है। टीकाकार ने बतलाया है कि उबैक (उम्बेक) ने इन श्लोको की टीका की है। हरिचन्द्र सूरी के 'षड्दर्शन-समुच्चय' की टीका में गुणरत्न नामक जैन लेखक (ई.) ने उम्बेक की कारिका (अर्थात श्लोकवातिंत) का अच्छा ज्ञाता बतलाया है। (उम्बेकः कारिकां वेत्त.....') इस विवेचन से सिद्ध होता है कि भवभूति का ही दुसरा नाम उम्बेक था। साहित्य में वे 'भवभूति' नाम से और मीमांसा में उम्बेक नाम से प्रसिद्ध हुए।

'श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाऽगिंराः।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरूः।।

इस गुरू परिचय विषयक श्लोक के आधार पर कुछ लोग भवभूति और उम्बेकाचार्य की अभिन्नता स्वीकार नही करते, क्योंकि भवभूति ने अपने गुरू का नाम स्पष्ट रूप से इस श्लोक में ज्ञाननिधि बतलाया है, किन्तु बहुत सम्भव है कि उक्त श्लोक में कुमारिलभट्ट का नामान्तरण अथवा उपाधि ज्ञाननिधि हो । 'परमहंसानां श्रेष्ठः ' इस विशेषण ज्ञाननिधि उत्तरमीमांसा के

आचार्य सिद्ध होते है। जब भी कुमारिलभट्ट पूर्वमीमांसा के आचार्य थे। अतः ज्ञाननिधि और कुमारिलभट्ट की अभिन्नता नही बनती है-इसका समाधान यह है कि कुमारिलभट्ट उत्तरमीमांसा के भी विद्वान् थे, जिसकी पुष्टि श्लोकवार्तिकस्थ उन्हीं की इस उक्ति से होती है-

'इत्याह नास्तिक्रूनिराकरिश्णुरात्मास्तितां भाष्यकृदत्र युक्त्या।
हढत्वमेतद्विशयष्च षोधः प्रयाति वेदान्तनिशेवणेन।।

अथवा भवभूति उम्बेक के उत्तरमीमांसा के गुरू ज्ञाननिधि रहे होंगे और पूर्वमीमांसा के गुरू कुमारिलभट्ट। भिन्न-भिन्न शास्त्रों के अध्ययन के लिए भिन्न गुरू करना अयुक्त तो है नही-नैकः सर्वं विजानाति'। उत्तररामचरित में पदवाक्यप्रमाणज्ञः' इस विशेषण पद से तथा 'चतुर्थ अंक' के दाण्डायन-सौधातकि संवाद 'समांसो मधुपर्कः' से भी उनके मीमांसाकत्व पर प्रकाश पडता है। अतः भवभूति और उम्बेकाचार्य को एक ही व्यक्ति मानना अयुक्त नही होगा। भवभूति की बहुज्ञता-भवभूति की विद्वता अपनी पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी। समस्त शास्त्रो में उनकी समान अप्रतिहत गति थी। वाणी इन्हे ब्रह्मा के रूप में ही मानकर वशवतिंनी होकर इनका अनुसरण करती थी। यों तो अपने को वे 'पदवाक्यप्रमाणज्ञः' (व्याकरण-मीमांसा-न्यायशास्त्रवेत्ता) विशेषण से अपनी सीमित विद्वता का परिचय देते है, किन्तु उनकी कृतियो के अनेक पद्यो से यह पता चलता है कि वेद, उपनिषद् , वेदान्त, व्याकरण, योग, सांख्य, तन्त्र, जातक, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, राजनीति, कामसूत्र, नाट्यशास्त्र आदि पर उनका पूर्ण अधिकार था। जैसे-उत्तर. से वेद-विषयक महा. उत्तर. । पन्थानो देपवयानाः', असुर्या नाम ते लोकाः' आदि से उपनिषद् विषयक, उत्तर. के विवर्न आदि से वेदान्त विषयक, महा. तृ. अं., मा. मा. वें अंक से योग विषयक मा. मा. अतिबोधिसत्त्वैः से जातक-विषयक, उत्तर. अंक में प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशः' से सांख्य विषयक, उत्तर. चौथे अंक के विष्कम्भक से धर्मशास्त्र-विषयक, निगृहीतोऽसि' इत्यादि प्रयोगो से न्याय-विषयक, मा. मा. तथा सप्तम अंक गत एक उद्धरण से कामसूत्र विषयक, महा. अंक के अनेक स्थलों से तथा मालती माधव के 'कामन्दकी' नामकरण से राजनीति-विषयक, उत्तर. प्रथम अंक में अर्थवाद के प्रयोग से मीसांसा-विषयक, उत्तर. में भरत के लिए 'तौर्यत्रिकसूत्रधार' के प्रयोग से तथा मालती माधव से नाट्यशास्त्र विषयक उनकी ज्ञानराशि का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है।

भवभूति की रचनाएं और उनका संक्षिप्त परिचय

भवभूति की तीन प्रसिद्ध रचनाएं इस समय उपलब्ध है- 1 मालतीमाधव 2. महावीरचरित (अथवा वीरचरित) 3. उत्तररामचरित। ये तीनों कृतियां नाटक है। इन रचनाओं के पौर्वापर्य-क्रम के विषय में विद्वानों में बडा मतभेद है। कुछ लोग यह निर्णय देते है कि इनका रचना क्रम इस प्रकार है-महावीरचरित, मालतीमाधव, तदन्तर उत्तररामचरित उनकी दृष्टि में ऐसा क्रम निर्धारित करने में मालतीमाधव का यह श्लोक रहा है-

ये नाम केचिदिह इतिप्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यने हि मम कोऽपि समानधर्मा

कालो महान निरवधिर्विपुला च पृथिवी ।।

उनका तर्क है कि उत्तररामचरित अपने में एक अत्यन्त प्रौढ़ रचना है । कवि की यह अन्तिम रचना है, इसमें किसी प्रकार की विपृतिपत्ति नही है । मालतीमाधव में उक्त श्लोक के द्वारा कवि ने अपने आलोचकों के प्रति जो आक्रोश व्यक्त किया है, उससे प्रतीत होता है कि महावीरचरित की रचना प्रथम हुई । आलोचकों द्वारा उसकी अवज्ञा होने पर कवि ने मालतीमाधव की रचना की और उससे उक्त श्लोक में कवि का अवज्ञाजनित आक्रोश फूट पड़ा है । इससे मेरी मन्द बुद्धि में यह आती है कि इन तीनो रचनाओं का क्रम इस प्रकार है-मालतीमाधव, महावीरचरित और अन्त में उत्तररामचरित । मालतीमाधव में कवि द्वारा व्यक्त अवज्ञाजनित आक्रोश के मूल में कवि की उन रचनाओं की अवज्ञा है, जो मालतीमाधव के पूर्व की गयी थीं और जो तत्कालीन आलोचकों की अवज्ञा से प्रचार-प्रसार न पाकर कुछ समय में अपनी सत्ता खो बेठी, जिनका कुछ अवशेष कल्हण की सूक्तिमुक्तावली तथा अन्य सूक्ति-ग्रन्थों में यत्र-तत्र विकीर्ण मिलता है । राम के पूर्वचरित रूप महावीरचरित और उत्तररामचरित की रचना में अधिक समय का व्यवधान ठीक नही लगता । यह भी अयथार्थ सा लगता है कि एक बार रामचरित की ओर उन्मुख होकर कवि 'महावीरचरित' की रचना करे, फिर उससे मुँह मोड़कर मालतीमाधव जैसी रचना में प्रवृत्त और पुनः उधर से मुड़कर रामचरित (उत्तर) की और प्रवृत्त हों । तत्कालीन आलोचकों द्वारा 'महावीरचरित' की अवज्ञा हुई, यह बात भी विश्वनीय नही लगती, क्योंकि तब तो इस अवज्ञेय ग्रन्थ को परावर्त्ती लक्षणग्रन्थकारों-आचार्य विश्वनाथ, महाराज भोज आदि द्वारा सम्मान मिलना सन्दिग्ध हो जाता है, तब भी उनके ग्रन्थों में 'महावीरचरित' के उद्धरण आदरपूर्वक स्वीकार किये गये है । तथाकथित आलोचकों द्वारा अवज्ञात होने पर तो प्रचार-प्रसार के अभाव में इसका लुप्त-प्राय हो जाना स्वाभाविक होता। वस्तुतः मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित ये तीनों कवि के वह ग्रन्थरत्न है जिनकी आभा सतत समान रूप से देदीप्यमान रही है ।

मालतीमाधव- यह दस अंको का प्रकरण है । इसमें विदर्भ के राजमन्त्री देवराज के पुत्र माधव और पद्मावती के राजमन्त्री भूरिवसुकी कन्या मालती का विवाह अत्यन्त कौतुहलवर्द्धक और मनोरंजक ढंग से वर्णित है । सम्पूर्ण कथा काल्पनिक है, जो प्रकरण के लिए आवश्यक है । इसमें श्रृंगार प्रधान रस है, जो साहित्यशास्त्र के अनुसार प्रायः प्रकरण के लिए आवश्यक माना जाता है। इस प्रकरण में स्थान-स्थान पर भवभूति का हृदयावर्जक वैशिष्टय परिलक्षित होता है । बृहत्कथामन्जरी और कथासरित्सागर में तीन ऐसी कहानियॉ मिलती है, जिनमें प्रेमी और प्रेमिका का चुपके से भाग निकलना, लुक-छिपकर विवाह करना, प्रेमिका का संकट मे पड जाना तथा उसका कौतुहलपूर्ण ढंग से उद्धार होना आदि वर्णित है । मालतीमाधव की कथा को देखते हुए ऐसा लगता है कि भवभूति को उन्ही तीन कहानियों से अवश्य प्रेरणा मिली होगी ।

महावीरचरित- यह सात अंको का नाटक है । इसमें रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक तक की घटनाओं अर्थात् राम के जीवन के पूर्वार्द्ध का वर्णन है । इस नाटक के नायक रामचन्द्र है । नाटक की मर्यादा को ध्यान में रखकर कवि ने कथानक में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है, जिससे नाटकीय स्वाभाविकता भी स्वयम् आ गयी है । प्रतिनायक रावण का राम के साथ संघर्ष सीता-विवाह के

समय से ही प्रारम्भ हो जाता है। परशुराम गुरू शिव के अपमान से क्रुध होकर नही, रावण के द्वारा भड़काकर भेजे जाते है । कैकेयी की दासी मन्थरा और कोई नही है, वह सुपर्णखा है, जो रावण के द्वारा मन्थरा-वेश में भेजी गयी है और कैकेयी द्वारा राम को वन में भिजवाकर वह अपने षडयन्त्र में सफल हो जाती है । राम के वनवास काल में माल्यवान् सीता-हरण कराता है, वही बाली को भी भड़काता है । बाली स्वयं राम से लडने आता है और मारा जाता है । बालि वध की कथा में ऐसा परिवर्तन नायक की मर्यादा बचा लेता है, अन्यथा धीरोदात्त प्रकृति के राम, धीरोद्धत प्रकृति के नायक की तरह छल से से बाली को मारें, यह 'प्रकृति विषयक' रस दोष आये बिना न रहता । परवर्ती लक्षणग्रन्थकारो ने उदाहरणो के रूप में इस नाटक के उदाहरणो को अपने-अपने ग्रन्थों में स्थान देकर इसका गौरव स्वीकार किया है ।

उत्तररामचरित-भवभूति का यह सात अंको का सर्वश्रेष्ठ नाटक है । इसमें रामचन्दजी का लोकोत्तर उत्तरचरित्र का वर्णन है। इसे महावीरचरित का उत्तर भाग कहा जा सकता है । इसमें- **प्रथम अंक** में की योजना कर कवि ने सीताजी के द्वारा गंगा दर्शन की इच्छा व्यक्त करायी है इधर दुर्मुख नामक गुप्तचर से प्रजा में फैले हुए लोकापवाद की सूचना राम को मिलती है । प्रजारंजन के लिए सीता-परित्याग का दृढ निश्चय कर राम सीता को गंगा दर्शन के व्याज से लक्ष्मण द्वारा वन में भिजवा देते है । सीताजी को उस समय अपने निर्वासन का पता नही रहता है। सीता-परित्याग की भूमिका कवि ने बडे कौशल से संयोजित की है । **द्वितीय अंक में** सीता परित्याग के 12 वर्ष बाद की घटनाएं चित्रित की गयी है । उसमें आत्रेयी नामक तापसी और वासन्ती नामक वनदेवी के संवाद से हमे पता चलता है कि राम अश्वमेधयज्ञ करने जा रहे है । महर्षि बाल्मिकी किसी देवता द्वारा सौपे गये दो कुशाग्रबुद्धि बालकों के लालन-पालन में निरत है। इसी अंक में राम दण्डकारण्य में आकर शुद्ध तपस्वी शम्बुक का वध करते है । **तृतीय अंक में** तमसा और मुरला इन दो नदियों के संवाद से हमे ज्ञात होता है कि मुरला गोदावरी से अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा का यह सन्देश कहने जा रही है कि सीता-वियोग से अत्यन्त दुर्बल राम अगस्त्याश्रम से लौटकर पंचवटी पहुचॅने पर पूर्व वृत्तान्तों की स्मृति से व्याकुल हो उठेंगे, अतः गोदावरी उनका सार- सम्भाल करने में सर्तक रहे । वहीं तमसा के मुख से यह भी ज्ञात होता है कि वाल्मीकि के आश्रम के पास जब लक्ष्मण सीता को छोडकर चले गये और सीता को प्रसव वेदना हुई, तब वे गंगा में कूद पड़ी । जल में ही उन्हे दो पुत्र हुए, जिन्हे पृथ्वी और गंगा ने संभाला। सीता पाताल चली गयी और दूध छुटने पर दोनो बच्चो को गंगा ने वाल्मीकि के आश्रम में पहुचॉ दिया । उधर सरयू के मुख से राम के पन्चवटी में आने की संभावना सुनकर गंगाजी भी सीता को साथ लेकर गोदावरी के पास पहुंच गयी । गंगा ने कुश और लव की बारहवीं वर्षगांठ मनाने के बहाने सीता को अदृश्य बनाकर तमसा के साथ राम की रक्षा के लिए ही पंचवटी भेज दिया । राम भी अगस्त्याश्रम से लौटकर पंचवटी में पहुंचे और सीता को सहवास-कालीन स्थानो को देखकर विरह-सन्तप्त हो मूर्च्छित हो गये । तमसा के कहने पर सीता ने अपने हाथो के स्पर्श से राम को आश्वस्त किया । वासन्ती भी राम से मिली और उसने सीता-निर्वासन के उपालम्भ से पूर्ण बातें राम से कीं । राम और वासन्ती के संवादो को सुनकर सीता के

ह्दय से राम के प्रति स्थिर क्षोभ दूर हो गया। राम और सीता दोनो अलग-अलग शोकाभिभूत हो विलाप करने लगे। आश्वस्त होने के बाद राम अश्वमेध का अनुष्ठान करने के लिए अयोध्या चले गये और सीता गंगा के पास लौट गयीं। **चतुर्थ अंक में** जनक, कौसल्यादि रानियॉ, अरून्धती, वसिष्ठ आदि का आगमन बाल्मीकि आश्रम में होता है। वहीं से सब बालक लव को देखते है। सीता-पुत्र होने की संभावना से राजा जनक ने अपने सन्देह को निश्चयात्मक करने के उद्देश्य से उससे तरह-तरह की बातें की, किन्तु लव की बातों से वे अपने उद्देश्य में सफल न हो सके। इतने में अश्वमेधयज्ञ के घोड़ो को देखकर आश्रम के बटुकों को बड़ा कौतुहल हुआ। कुछ बटुक घोड़े को देखने के लिए लव को भी खींच ले गये। लव ने घोड़े को बटुकों के द्वारा पकड़वा लिया। रक्षकों के विरोध करने पर लव युद्ध के लिए उद्यत हो गया। **पंचम अंक में** यज्ञाश्व के रक्षक लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु से लव का वाद-विवाद होता है और वे परस्पर युद्ध के लिए उद्यत हो जाते है । **षष्ठ अंक** में विद्याधर-दम्पति के मुख से हमें लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है। शम्बुक को मारकर उसी युद्धस्थल में राम के आने से युद्ध रूक जाता है। कुश भी उसी समय युद्ध की सूचना पाकर वहॉ आ जाता है। कुश और लव को देखकर सीता-पुत्र की संभावना से राम के हृदय में उनके प्रति वात्सल्य उमड़ पड़ता है। किन्तु कुश और लव की तटस्थ बातचीत से वे इस निर्णय पर नही पहुचॅ पाते है कि ये उन्ही की सन्तान है। **सप्तम अंक** में गर्भनाटक की योजना की गयी है। उसका अभिनय देखने के लिए समस्त प्रजा, देव, असुर, पशुपक्षी, नाग, सभी स्थावर जंगम प्राणी तथा राम-लक्ष्मण भी उपस्थित थे। इसमें कुश और लव की उत्पत्ति, सीता का पाताल-प्रवेश, कुश और लव को गंगा द्वारा वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचाना आदि सभी कुछ दिखलाया गया है। सीता के पाताल-गमन से राम मूर्च्छित हो गये। तब मुख्य नाटक में गंगा और पृथिवी के साथ सीता जल से निकलकर अपने हाथों के स्पर्श से अरून्धती के आदेशानुसार राम को प्रशंसा करती हुई अरून्धती ने उपस्थित जनता के समक्ष राम से सीता को स्वीकार करने का प्रस्ताव किया। इस प्रकार राम, सीता, कुश एवं लव का सामगम हुआ। अतएव यह नाटक सुखान्त सिद्ध होता है।

भवभूति का व्यक्तित्व

यद्यपि नाटककार को अपने नाटक में प्रत्यक्ष रूप से आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नही रहती है, तथापि वह किसी न किसी रूप में अपनी कृतियों में अपने गुण, स्वभाव, विचारों तथा सिद्धान्तो को बिना अभिव्यक्त किये नहीं रहता। भवभूति की कृतियों के अध्ययन से उनके भी व्यक्तित्व का आभास हमें सुगमता से हो जाता है। भवभूति उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् थे। इन्हे विद्वत्ता पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी। अपनी विद्वता पर इन्हें गर्व भी था, जो भाषा पर इनके पूर्ण अधिकार को देखते हुए स्वाभाविक एवं सात्त्विक प्रतीत होता है। 'मालतीमाधव' के ये नाम केचिदिह-इत्यादि श्लोक से प्रतीत होता है कि इन्हें प्रारम्भिक जीवन में उचित सम्मान नही प्राप्त हुआ था। किन्तु 'सर्वथा व्यवहर्त्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता। यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।' (उत्तर.) के अनुसार कर्त्तव्य-पालन में आस्था रखने वाले महाकवि 'उत्तररामचरित' की रचना के बाद यश:प्राप्ति के साथ-साथ प्रौढ़ावस्था में कन्नौज के राजा यशोवर्मा का आश्रय भी

प्राप्त हो गया था । कर्मकाण्ड-प्रवीण तथा विश्रुत मीमांसक होते हुए भी भवभूति स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे । इनके नाटकों में विदूषक की योजना न होने से इनके गम्भीर स्वभाव का पता लगता है । बहुत संभव है कि साहित्य क्षेत्र में बहुत दिनों तक होने वाली इनकी उपेक्षा ने, अथवा बारम्बार विधुरावस्था के इनके वर्णन से प्रतीयमान असामयिक वैधुर्य भाव ने ही इन्हें गम्भीर बना दिया हो । इनकी यह गम्भीरता हास-परिहास को भी गम्भीर बनाकर ही प्रस्तुत करती है । चित्रवीथी में लक्ष्मण द्वारा चित्रों को दिखलाते समय उर्मिला को छोड़कर आगे बढ़ने पर सीता की-वत्स! 'इयमप्यपरा का' इस उक्ति से लक्ष्मण लजा जाते है । यह परिहास अत्यन्त शिष्ट और मनोरम होते हुए भी कवि की गम्भीरता के कारण स्मिति तक ही सीमित रह जाता है । प्रस्तुत नाटक के अन्त में सीता को मिलते समय लक्ष्मण प्रणाम करते हुए कहते है-अयं निर्लज्जो लक्ष्मणः प्रणमति'। सीता आर्शीवाद देती है-वत्स' ईदृशस्त्वं चिरन्जीव ।' सीता की यह युक्ति मधुर उपालम्भ के साथ ही विनोद से भी पूर्ण है, किन्तु कवि की गम्भीरता के कारण ही इसमें उच्छृखंलता की गन्ध नही है । वस्तुतः निर्मल हास का प्रस्तुतीकरण भी गम्भीरता की अपेक्षा रखता है । यही कारण है कि भवभूति हास्य के क्षेत्र में भी अन्य कवियों से अनूठे ही दिखलायी पड़ते हैं । अन्य कवि तो हास्य को उच्छृखंल बनाने के ही उद्देश्य से विदूषक की योजना करते है। अतः उसमें निर्मलता का दर्शन असम्भव है ।

महाकवि भवभूति सात्त्विक प्रेम के पक्षपाती है । इसमें भी उनके ह्दय का गाम्भीर्य ही हेतु है । अतएव उसमें वासना का ज्वार नही और बाहरी कारणो की अपेक्षा भी नही है । वह तो आन्तरिक हेतु पर निर्भर है । जो उसे गहरी आत्मीयता में निमग्न कर सात्त्विक रूप प्रदान करता है ।

'व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।' (उत्तर.)

भवभूति ने श्रृंगार के संभोग का भी चित्र पूर्व स्मृति के रूप में खींचा है, किन्तु वहॉ भी इनकी गम्भीरता ने कामचेष्टाओं के ओछापन को नही आने दिया है । और आत्मीयता के गहरे रंग से रंजित कर मनमोहक बना दिया है ।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगाद्विरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैदोष्णो रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्। (उत्तर.)

भवभूति मानव-मन के चतुर पारखी थे । मन के अन्तर्द्वन्द्व को पकडने तथा उसे सफल अभिव्यक्ति देने में ये सिद्धह्स्त थे । यहीं कारण है कि प्रस्तुत नाटक में सीता, राम, राजर्षि जनक, कुश लव, चन्द्रकेतु, कौसल्या, वासन्ती आदि विभिन्न कोटि के मनुष्यों के मन के अन्तर्द्वन्द्व की जैसी सफल अभिव्यक्ति हुई है, विश्व के साहित्य में भी दुलर्भ है । इस बात की प्रशंसा पाश्चात्य समालोचक भी मुक्तकण्ठ से करते है । भवभूति की वेदनाव्यथित विधुरावस्था की अनुभूति की तीव्रता में उनके उल्लासमय दाम्पत्य जीवन की मधुरता ही मुख्य हेतु है । उनके आदर्श दाम्पत्य जीवन की मनोरम झॉकी उत्तररामचरित में दर्शनीय एवं स्पृह्णीय है । सत्चरित्रता, निष्ठा और मर्यादा पूर्ण जीवन जीने वाले तथा धर्म में गहरी आस्था रखने वाले भवभूति के मत में ही स्त्री

भोग विलास की सामग्री नहीं, अपितु घर की लक्ष्मी तथा नेत्रों के लिए अमृतशलाका की भॉति शान्ति-प्रदायिनी है, वह जीवन सहचरी है और पवित्रता की मूर्ति है। विवाह का उद्देश्य भोग विलास नही, अपितु कर्त्तव्य-पालन, त्याग-तपस्या, प्रजातन्तु को विच्छेद से बचाना है। गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने में सन्तान का महत्व सर्वोपरि है। वह दम्पति के अन्तःकरण की आनन्दग्रन्थि ही तो है।

सर्वथा कल्याणकारी दाम्पत्य स्नेह के विषय में भवभूति की मान्यता है कि वह किसी-किसी सौभाग्यशाली को ही भाग्य से ही प्राप्त होता है। उसकी यह विशेषता है कि सुख-दुःख और सभी अवस्थाओं में एकरस रहता है। वह हृदय को अपूर्व विश्राम देता है। वृद्धावस्था में भी उसमें अनुराग की कमी नही होती। वह समय पाकर सभी प्रकार के संकोचो के समाप्त हो जाने से प्रगाढ़ एवं उत्कृष्ट प्रेम के रूप में स्थिर रहता है। डा. व्यास के शब्दों में संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि भवभूति का व्यक्तित्व संस्कृत साहित्य में जीवन की मधुरता और कटुता, अन्तःप्रकृति और बाह्यप्रकृति के कोमल और विकट, दोनो रूपों के ग्रहण करने की क्षमता रखता है। भवभूति ही वह श्रीकण्ठ है, जिन्होंने ने एक साथ चन्द्रकला की शीतल सरसता और विष की तिक्तता, दोनो को जीवन के उल्लासमय और वेदनाव्यथित, दोनो तरह के पहलुओं को सहर्ष अंगीकार किया है।

अभ्यास प्रश्न 1

1 भवभूति का वास्तविक नाम क्या था ?
2 इनके पितामह का नाम क्या था ?
3 भवभूति का जन्मस्थान कहॉ पर था ?
4 भवभूति की कितनी प्रसिद्ध रचनायें है ?
5 मालतीमाधव के लेखक कौन है ?
6 उत्तर रामचरितम में कितने अंक है ?

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1 भवभूति का पैतृक नाम था ?

(क) भवभूति (ख) श्रीकण्ठ
(ग) नारद (घ) कश्यप

2 भवभूति के पिता का नाम था ?

(क) दशरथ (ख) गर्ग
(ग) नीलकण्ठ (घ) विश्वनाथ

3 भवभूति का जन्म हुआ था ?

(क) पद्मपुर नगर (ख) अयोध्या
(ग) गुजरात (घ) कुशीनगर

4 उत्तर रामचरितम् के लेखक है ?

(क) विश्वनाथ (ख) जगन्नाथ

(ग) महिमभट्ट (घ) भवभूति

5 भवभूति की विद्वता प्राप्त हुई थी ?

(क) दैवरूप से (ख) पैतृक रूप से

(ग) गुरू कृपा से (घ) शिव कृपा से

4.4 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात् आपने जाना कि भवभूति का व्यक्तित्व क्या है। महाकवि भवभूति का व्यक्तित्व महान था, वे एक आदर्शव्यक्ति थे। महाकवि भवभूति एक महान् कर्मकाण्डी तथा विश्रुत मीमांसक होते भी स्त्री शिक्षा के महान पक्षपाती थे। महाकवि भवभूति की वेदना व्यथित विधुरावस्था की अनुभूति की तीव्रता में उनके उल्लासमय दाम्पत्य जीवन की मधुरता ही मुख्य हेतु है। उनका आदर्शजीवन दाम्पत्य जीवन की मनोरमा झॉकी उत्तररामचरित में दर्शनीय स्पृहणीय है। महाकवि भवभूति की कृतियों का भी वर्णन इस इकाई में सम्यग् रूप से किया गया है। भवभूति मन के अन्तर्द्वन्द्व को पकडने तथा उसे सफल अभिव्यक्ति देने में ये सिद्धहस्त थे। यहीं कारण है कि प्रस्तुत नाटक में सीता, राम, राजर्षि जनक, कुश लव, चन्द्रकेतु, कौसल्या, वासन्ती आदि विभिन्न कोटि के मनुष्यों के मन के अन्तर्द्वन्द्व की जैसी सफल अभिव्यक्ति हुई है, विश्व के साहित्य में भी दुलर्भ है। इस बात की प्रशंसा पाश्चात्य समालोचक भी मुक्तकण्ठ से करते है। भवभूति की वेदनाव्यथित विधुरावस्था की अनुभूति की तीव्रता में उनके उल्लासमय दाम्पत्य जीवन की मधुरता ही मुख्य हेतु है। उनके आदर्श दाम्पत्य जीवन की मनोरम झॉकी उत्तररामचरित में दर्शनीय एवं स्पृह्णीय है। सत्चरित्रता, निष्ठा और मर्यादा पूर्ण जीवन जीने वाले तथा धर्म में गहरी आस्था रखने वाले भवभूति के मत में ही स्त्री भोग विलास की सामग्री नहीं, अपितु घर की लक्ष्मी तथा नेत्रों के लिए अमृतशलाका की भॉति शान्ति-प्रदायिनी है, वह जीवन सहचरी है और पवित्रता की मूर्ति है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
रामाभ्युदय	राम का अभ्युदय
पैतृकः	पिता का
स्त्रीणां कर्ता	स्त्रियों का पति
दृश्यताम्	देखिये
द्रष्टव्यमेतत्	यह देखने योग्य है
भवेत	होना चाहिए
भवभूतेः	भवभूति का
भारती भाति	सरस्वती के समान
वज्रादपि	वज्र के समान

कठोराणि	कठोर
कुसुमादपि	फुलो से भी
मृदूनि	कोमल
भव	शंकर
भूति	सम्पत्ति

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 - उत्तर- 1 भवभूति 2- भट्टगोपाल 3- द्रविण देश 4- तीन 5 –भवभूति 6 – सात

अभ्यास प्रश्न 2 – 1. (ख) 2. (ग) 3. (क) 4. (घ) 5. (ख)

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.भवभूति और उनकी नाट्यकला, अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988

2.भवभूति ग्रन्थावली, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1.भवभूति और उनकी नाट्यकला, अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988

2.भवभूति ग्रन्थावली, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि भवभूति का जीवन परिचय लिखिए।
2. भवभूति की रचनाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई - 5. शूद्रक का जीवन परिचय एवं मृच्छकटिकम् की नाटकीय विशेषता

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 शूद्रक का जीवन परिचय एवं मृच्छकटिकम् की नाटकीय विशेषता
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

यह खण्ड दो की पांचवी इकाई है। इससे पूर्व की इकाइयों में आपने भारवि,श्रीहर्ष, जयदेव और भवभूति के विषय में विस्तृत अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप शूद्रक के विषय में अध्ययन करेंगे कि शूद्रक कौन थे।

मृच्छकटिक के रचियता शूद्रक हस्तिशास्त्र में परम प्रवीण थे, भगवान शिव के अनुग्रह से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था, बड़े ठाट बाट से उन्होने अश्वमेघ यज्ञ किया था, अपने पुत्र को राज्य सिहांसन पर बैठा दस दिन तथा सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर अन्त में अग्नि प्रवेश किया। शूद्रक युद्वो से प्रेम करते थे, प्रमाद रहित थे, तपस्वी तथा वेद जानने वालों में श्रेष्ठ थे, राजा शूद्रक को बड़े हाथियों के साथ बाहुयुद्ध करने का बड़ा शौक था, उनका शरीर था शोभन , उसकी गति थी मतंग के समान नेत्र थे चकोर की तरह, मुख था पूर्ण चन्द्रमाँ की भाँति। तात्पर्य यह है कि उनका समग्र शरीर सुन्दर था। वे द्विजो में मुख्य थे। इस इकाई के अध्ययन से आप शूद्रक की वीरतामय जीवन के विषय में बता सकेंगे।

5. 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- शूद्रक कौन थे इसका उल्लेख करेंगे
- शूद्रक के पुत्र कौन थे , परिचय देंगे।
- शूद्रक का जन्म स्थान कहाँ है , निर्णय करेंगे।
- शूद्रक की मुख्य कृति के विषय में परिचय देंगे।
- मृच्छकटिकम् में किसका वर्णन है , उल्लेख करेंगें।

5.3 शूद्रक का जीवन परिचय

मृच्छकटिक के रचियता शूद्रक का कुछ परिचय ग्रन्थ के आरम्भ (1। 4. 1। 5) में ही जीवन परिचय मिलता है। उसके अनुसार शूद्रक हस्तिशास्त्र में परम प्रवीण थें, भगवान शिव के अनुग्रह से उन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ था, बड़े ठाट बाट से उन्होने अश्वमेध यज्ञ किया था, अपने पुत्र को राज्य सिहांसन पर बैठा दस दिन तथा सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर अन्त में अग्नि में प्रवेश किया। वह युद्वो से प्रेम करते थे, प्रमाद रहित थे, तपस्वी तथा वेद जानने वालों में श्रेष्ठ थे, राजा शूद्रक को बड़े हाथियों के साथ बाहुयुद्ध करने का बड़ा शौक था, उनका शरीर था शोभन , उसकी गति थी मतंग समान नेत्र थे चकोर की तरह, मुख था पूर्ण चन्द्रमाँ की भाँति। तात्पर्य यह है कि उनका समग्र शरीर सुन्दर था। वे द्विजो में मुख्य थे प्रतीत होता है की किसी अन्य लेखक ने यहाँ जान बूझ कर कह दिया है 'शूद्रकोऽग्निप्रविष्ट' स्वयं लेखक की लेखनी इस भूतकाल का प्रयोग कैसे कर सकती है। निः संदेह यह अंश प्रक्षेप है।

शूद्रक नामक राजा की संस्कृत - साहित्य में खूब प्रसिद्धि है। जिस प्रकार विक्रमादित्य के विषय में अनेक दंतकथायें है उसी प्रकार शूद्रक के विषय में भी है। कादम्बरी विदिशा नगरी

में कथा- सरित्सागर में शोभावती तथा वेतालपंचविंशति में वर्धमान नामक नगर में शूद्रक के राज्य करने का वर्णन पाया जाता है। कथा सरित्सागर का कथन है कि किसी ब्राह्मण ने राजा को आसन्नमृत्यु जानकर उसे दीर्घ जीवन की आशा में अपने प्राण निछावर कर दिये थे। हर्षचरित में लिखा है शूद्रक चकोर राजा चन्द्रकेतू का शत्रु था। राजतरंगिणीकार स्थिर- निश्चलता के दृष्टान्त के लिये शूद्रक का स्मरण करते है। स्कन्दपुराण के अनुसार विक्रमादित्य के सत्ताईस वर्ष पहले शूद्रक ने राज्य किया था। प्रसिद्ध है की कालिदास के पूर्ववती रामिल तथा सोमिल नामक कवियों ने मिलकर 'शूद्रक कथा' नामक कथा लिखी थी। अतः शूद्रक इसके कर्ता नहीं है बहुत से लोग तो शूद्रक की सत्ता में ही विश्वास नहीं करते। परन्तु ये सब श्रान्त धारणाऐं हैं। तथ्य यह प्रतीत होते है कि विक्रमादित्य के समान ही शूद्रक भी ऐतिहासिक क्षेत्र से उठकर कल्पना जगत के पात्र माने जाने लगे थे। और जिस प्रकार ऐतिहासिक लोग प्रथम शतक में विक्रमादित्य के अस्तित्व के विषय में ही सन्देहशील थे उसी प्रकार शूद्रक के विषय में भी। आधुनिक शोध में दोनों ही ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध होते है। ऐसी दशा में शूद्रक को मृच्छकटिक का रचियता न मानने वाले डा0 सिल्वाँ लेवी तथा कीथ मत स्वयं ध्वस्त हो जाता है। पिशेल ने जो दण्डी को इसका रचियता होने का श्रेय दिया है वह भी कालविरोध होने से भ्रान्त प्रतीत होता है। शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति थे और वे ही मृच्छकटिक के यथार्थ लेखक थे।

जन्म समय - पुराणों में आन्ध्रभृत्य - कुल के प्रथम राजा शिमुक का वर्णन मिलता है। अनेक भारतीय विद्वान राजा शिमुक के साथ शूद्रक की अभिन्नता को अंगीकार कर इनका समय विक्रम की प्रथम शताब्दी में मानते है। यही यह अभिन्नता सप्रमाण सिद्ध की जा सके तो शूद्रक कालिदास के समकालीन अथवा उनके कुछ पूर्व के ही माने जायेंगे। परन्तु मृच्छकटिक की इतनी प्राचीनता स्वीकार करने में बहुतों को आपत्ति है।

वामनाचार्य ने अपनी काव्यालंकार - सूत्र वृति में 'शूद्रकादिरचिषु' प्रबन्धेषु' शूद्रक-विरचित प्रबन्ध का उल्लेख किया और 'द्यूतं हि नाम पुरूषस्य असिंहासनं राज्यम् ' इस मृच्छकटिक के द्यूत - प्रशंसा-परक वाक्य को उद्धृत भी किया है , जिससे हम कह सकते है कि आठवीं शताब्दी के पहले ही मृच्छकटिक की रचना की गई होगी। वामन के पूर्ववर्ती आचार्य दण्डी (सप्तम शतक) ने भी काव्यादर्श में 'लिम्पतीव तमोऽङानि' मृच्छकटिक के इस प़द्यांश को अलंकारनिरूपण करते समय उद्धृत किया है। इन बहिरंग प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि मृच्छकटिक की रचना सप्तम शताब्दी के पहले ही हुई होगी। समय-निरूपण में मृच्छकटिक के अन्तरंग प्रमाणों से भी बहुत सहायता मिलती है। नवम अंक मे वसन्तसेना की हत्या करने के लिए शकार आर्य चारूदत्त पर अभियोग लगता है। अधिकरणिक के सामने यह पेश किया जाता है अन्त में मनु के अनुसार ही धर्माधिकारी निर्णय करता है।

अयं हि पातकी विप्रो न बध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मातु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह।।

इससे स्पष्ट ही है कि मनु के कथनानुसार अपराधी चारूदत्त अवध्य सिद्व होता है और धनसम्पति के साथ उसे देश से निकल जाने का दण्ड दिया जाता है। यह निर्णय ठीक मनुस्मृति के अनुरूप है।

न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षतम्॥
न ब्राहमणवधाद् भूयानधर्मो विद्यते भुवि।
तस्मादस्य वधं राजा मनसपि न चिन्तयेत्॥

अतः मृच्छकटिक की रचना मनुस्मृति के अनन्तर हुई होगी। मनुस्मृति का रचना काल विक्रम से पूर्व द्वितीय शतक माना जाता है जिसके पीछे मृच्छकटिक को मानना होगा। भास कवि के 'दरिद्र चारूदत' तथा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में अत्यन्त समानता पाई जाती है। मृच्छकटिक का कथानक बहुत विस्तीर्ण है, दरिद्रचारूदत्त का संक्षिप्त। मृच्छकटिक भास के रूपक के अनुकरण पर रचा गया है , अतः शूद्रक का समय भास के पीछे चाहिए। मृच्छकटिक के नवम अंक में कवि ने बृहस्पति को अंगारक (अर्थात् मंगल) का विरोधी बतलाया है। परन्तु वराहमिहिर ने इन दोनों ग्रहों को मित्र माना है। , प्रसिद्व1 अङारकविरूद्वस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्यितः॥ (मृच्छ0 9 ।33)

ज्योतिषी वराहमिहिर का सिद्वान्त ही आजकल फलित ज्योतिष में सर्वमान्य है। आज कल भी मंगल तथा बृहस्पति मित्र ही माने जाते है , परन्तु वराहमिहिर के पूर्ववर्ती कोई-कोई आचार्य इन्हें शत्रु मानते थे, जिसका उल्लेख बृहज्जातक में ही पाया जाता है। वराहमिहिर का परवर्तीग्रन्थकार बृहस्पति को मंगल का शुत्र कभी नहीं माना जा सकता। अतः शुद्रक वराहमिहिर से पूर्व के ठहरते है। वराहिमिहिर की मृत्यु 589 ईस्वी में हुई थी , इसीलिए शूद्रक का समय छठी सदी के पहिले होना चाहिये।

इन सब प्रमाणों का सार है कि शूद्रक दण्डी (सप्तम शतक) और वराहमिहिर (षष्ट शतक) के पूर्ववर्ती थे, अर्थात् मृच्छकटिक की रचना पंचम शतक में मानना उचित है। और यह अविर्भावकाल नाटक में वर्णित सामाजिक दशा से पुष्ट होता है।

5.4 मृच्छकटिक की नाटकीय विशेषता

मृच्छकटिक में 10 अंक है। पहले अंक का नाम 'अलंकारन्यास' है। इसमें उज्जयिनी की प्रसिद्व वारवनिता वसन्तसेना को राजा का श्यालक शकार वंश में करना चाहता है। रास्ते में अँधेरी रात में विट तथा चेट के साथ शकार उसका पीछा कर रहा है। मूर्ख शकार के कथन से वसन्तसेना को पता चलता है कि वह आर्य चारूदत्त के मकान के पास ही है। अतः उसके घर में घुसती है। विदूषक मैत्रेय शकार को डॉट-डपट कर घर में घुसने से रोकता है। चारूदत्त से वार्तालाप करने के बाद शकार से बचने के लिये वसन्तसेना अपना गहना उसके घर पर रख आती है। दूसरे अंक का नाम 'द्युतक-संवाहक' है। दूसरे दिन सवेरे दो घटनाएं घटती हैं। संवाहक पहले चारूदत की सेवा में था , पीछे पक्का जुआरी बन जाता है। वह जुएं में बहुत सा धन हार जाता है जिससे वह चारूदत के घर भाग आता है। चारूदत उसे ऋण मुक्त कर देते है।

संवाहक बौद्व भिक्षु बन जाता है उसी दिन प्रातः काल वसन्तसेना का हाथी रास्ते में किसी भिक्षुक को कुचलना ही चाहता है कि उसका सेवक कर्णपूरक उसे बचाता है। चारूदत अपना बहु मूल्य दुशाला को उपहार में दे देते हैं। तीसरे अंक का नाम संधिच्छेद है। वसन्तसेना की दासी मदनिका शर्विलक सेवा से मुक्त करना चाहता है। वह ब्राह्मण है, परन्तु प्रेमपाश में बंधकर आर्य चारूदत्त के घर में सेंध मारता है। और वसन्तसेना का गहना चुरा लेता है। चतुर्थ अंक का नाम 'मदनिका-शर्विलक ' है जिसके शर्विलक अलंकार लेकर वसन्तसेना के घर जाता है और मदनिका को सेवा-मुक्त कर देता है। चारूदत की पतिव्रता पत्नी धूता अपनी बहुमूल्य रत्नावली उसके बदले में देती है। मैत्रेय रत्नावली लेकर वसन्तसेना के महल में जाता है और जुए में हार जाने का बहाना कर रत्नावली देता है। वसन्तसेना सायंकाल चारूदत्त के घर आने के लिए वादा करती है। पाँचवें अंक का नाम 'दुर्दिन' है। इसमें वर्षा का विस्तृत वर्णन है सुहावने वर्षाकाल में आर्य चारूदत उत्सुकता से वसन्तसेना की राह जोहते बैठे हैं। चेट वसन्तसेना के आगमन की सूचना देता है।

1. जीवो जीवबुधौ सितेन्दुतनयो व्यर्का विभौमाः कमात्
वीन्द्वर्का विकुजेन्दश्च सुहदः केषाच्चिदेवं मतम्।। (2।91)

चारूदत्त से प्रेम सम्मिलन होता है। उस रात वह वहीं बिताती है । षष्ठ अंक का नाम 'प्रवहणविपर्यय' है। तथा सप्तम का 'अर्थकापहरण'। प्रातः काल चारूदत पुष्पकरण्डक नामक बगीचे में गये है। उनसे भेंट करने के लिए वसन्तसेना जाना चाहती है, परन्तु भ्रम से शकार की गाड़ी में, जो समीप में खड़ी थी , जा बैठती है। इधर राजा पालक किसी सिद्व की भविष्यवाणी पर विश्वास कर गोपाल के पुत्र आर्यक को कैदखाने में बन्द कर देता है आर्यक कारागृह से भागकर चारूदत्त की गाड़ी में चढ़ जाता है। श्रृंखला की आवाज को भूषण की झनझनाहट समझ गाड़ी हाँक देता है। रास्ते में दो सिपाही गाड़ी देखने जाते हैं जिनमें से एक आर्यक को देख उसकी रक्षा करने का वचन देता है और अपने साथी से किसी बहाने झगड़ा कर बैठता है आर्यक बगीचे में चारूदत से भेंट करता है, 'अष्टम अंक' का नाम 'वसन्तसेना' - मोचन' है। जब वसन्तसेना पुष्पकरण्डक उद्यान में पहुँचती है , तब प्राणप्रिय चारूदत्त के स्थान पर दुष्ट शकार - संस्थानक मिलता है , जो उसकी प्रार्थना न स्वीकार करने से वसन्तसेना का गला घोंट डालता है संवाहक भिक्षु बन गया है। वसन्तसेना को समीप के विहार में ले जाते है और योग्य उपचार से उस पुनरूज्जीवित करता है। नवम अंक में जिनका नाम 'व्यहार ' है, शकार चारूदत्त पर वसन्तसेना के मारने का अभियोग लगाता है कचहरी में जज के सामने मुकदमा पेश होता है। उसी समय चारूदत का बालक पुत्र रोहसेन-मृच्छकटिक (मिट्टीकी गाड़ी) लेकर आता है, जिसमें वसन्तसेना के दिये सोने के गहने है। इसी आधार पर चारूदत को फाँसी का हुक्म होता है। 'संहार 'नामक दशम अंक में उसी समय राज्य-परिवर्तन होता है। पालक को मार चारूदत का परम मित्र आर्यक राजा बन जाता है । वह चारूदत को क्षमा ही नहीं कर देता, प्रत्युत मिथ्याभियोग के कारण शकार को फाँसी का हुक्म देता है., परन्तु चारूदत के कहने से क्षमा कर देता है। वसन्तसेना के साथ चारूदत का व्याह सम्पन्न होता है। इसी अन्तिम प्रेम-मिलन के

साथ यह रूपक समाप्त होता है। दस प्रकरण के कथावस्तु के दो अंश है -पहिला भाग चारूदत् तथा वसन्तसेना का प्रेम दूसरा भाग आर्यक की राज्यप्राप्ति। शूद्रक ने पहले अंश को भास के 'दरिद्र-चारूदत्त नाटक से अविकल लिया है। शब्दतः और अर्थतः दोनो प्रकार की अपनी सम्पति प्राचीन ऐतिहासिक घटना के आधार पर लिखा गया मानते है। दोनों अंशों को शूद्रक ने बड़ी सुन्दरता के साथ सम्बद्व किया हैं।

चरित्र-चित्रण- शूद्रक चरित्र-चित्रण में खूब सिद्धहस्त हैं। इनके पात्र जीते-जागते है., सजीवता की मूर्ति हैं। प्रत्येक पात्र में कुछ विशेषता है। मृच्द्कटिक का नाटक चारूदत हैं । प्रकरण का नायक धीरप्रशान्त ब्राह्मण , वणिक् या मन्त्री हुआ करता है। चारूदत ब्राह्मण है तथा धीर-प्रशान्त हैं शूद्रक ने चारूदत के रूप में भारत के आदर्श नागरिक का चित्र खींचा है। वह सदाचार का निदर्शन है। (1। 48) -

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुफलनतः सज्जानानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमूद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरूषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसच्वो
त्द्योकः श्लाध्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छवसन्तीव चान्ये ।।

चारूदत्त दीनों के कल्पवृक्ष हैं। दरिद्रों की सहायता करने से उन्हें निर्धनता प्राप्त हो जाती है, परन्तु फिर भी दीनों की सहायता करने से विरत नहीं होता। उसमें आत्माभिमान की मात्रा खूब है। उसे यह जानकर अत्यन्त दुःख होता है कि हमारे घर से छूछे हाथ लौट जानेवाला चोर अपने मित्रो से मेरी दरिद्रता की निन्दा करेगा। स्वभाव उसका बड़ा उन्नत है। वसन्तसेना का अलंकार चोरी चला जाता है, परन्तु उसे प्रसन्नता होती है कि उसके घर में सेंध मारने वाला चोर विफल-मनोरथ होकर नहीं गया। वसन्तसेना के अल्पमूल्य भूषण के बदले में अपनी पत्नी की बहुमूल्य रत्नावली देने में वह तनिक भी नहीं हिचकता। जो शकार उसके जीवन का गाहक था, जो उस पर वसन्तसेना के मारने का मिथ्या अभियोग लगाकर शूली पर चढ़ाये जाने का कारण था, उसी दृष्टबुद्वि मूर्ख शकार को वह क्षमा कर देता है। इस नाटक में सचमुच चारूदत्त के रूप में हम आर्दश ' आर्य सज्जन का मनोरम चित्र पाते है। भारतीय दृष्टि से पूर्ण सज्जनता का जीवितरूप हमें आर्य चारूदत के रूप में प्राप्त होता है । फलतः वे 'परफेक्ट जेन्टिलमेन' के जीवन्त उदाहरण हैं।

वसन्तसेना उज्जयिनी की एक वेश्या है जो इस प्रकरण की नायिका है। उसके चरित्र में हम अनेक स्त्रीसुलभ गुणों का सन्निवेश पाते हैं। वेश्या होने पर भी वह सच्चे प्रेम का मूल्य जानती है। माता के आग्रह करने पर भी वह शकार की संगति नही चाहती और विरोध करने पर भी सदाचारी आर्य चारूदत्त की प्रेमपात्री बनने के लिए वह सतत उद्योगकरती है। उसका हृदय अत्यन्त कोमल है। सेवकों पर दया करना उसका स्वभाव है। यद्यपि शकार उसे मार डालने का उद्योग करता है, तथापि वह अपने सद्गुणों के कारण जीवित बच जाती है। वसन्तसेना के अतिरिक्त अन्य पात्रों के भी चरित्र-चित्रण में शूद्रक को सफलता प्राप्त हूई है। धूता सच्ची पतिव्रता हिन्दू नारी है, जो अपने पतिदेव की प्रसन्नता के लिए कठिन से कठिन संकट झेलने के

लिए भी उपस्थित है । अपने पति को कलंक से बचाने के लिये वसन्तसेना के अल्पमूल्य आभूषण के लिए बहुमूल्य रत्नावली देते समय उसे तनिक भी दुविधा नहीं होती । रोहसेन भी स्निगध हृदय पुत्र है । मैत्रेय केवल मोदक से अपनी उदर-ज्वाला को शान्त करनेवाला , 'औदरिक' पेटू नहीं है, न वह केवल हास्य का साधन है, प्रत्युत वह एक सच्चा मित्र है । विपत्ति में साथ देनेवाला सच्चा बन्धु है । अन्य साधारण पात्रों में शर्विलक का चरित्र सज्जनता तथा दुर्जनता का अपूर्व मिश्रण है । वेश्या की गृहदासी मदनिका को अपनी प्रिय -पात्रों बनाने में यह ब्राह्मण देवता तनिक भी नहीं सकुचाते । उसे ऋण मुक्त करने के लिए चोरी करने में उसे कुछ भी लज्जा नहीं , परन्तु अपने मित्र आर्यक के कारागृह में बन्धन की वार्ता सुन वह अपनी प्रणयिनी को छोड सहायता करने के लिये खम ठोंककर 'मैदान जंग में आ जुटता है ।

मृच्छकटिक में सबसे विचित्र नाटकीय पात्र है- शकार । यह राजा का श्यालक है । नाम है संस्थानक यह गर्व का जीता-जागता पुतला है । उसमें दया छूकर भी नहीं है । वसन्तसेना को अपने प्रणयपाश में बाँधना चाहता है, परन्तु वह इस मूर्ख को पसन्द नहीं करती है । शकार चारूदत्त का अकारण शत्रु है । वसन्तसेना का गला अपने ही हाथ घोट डालता है, परन्तु दोष मढ़ता है चारूदत के सिर पर । अपने किये कर्म का फल चखने का भी सुयोग आता है । परन्तु चारूदत्त उसे क्षमा कर देता है । शकार के कथन सर्वथा क्रमहीन , लोक-विरूद्ध तथा व्यर्थ होते है । इसकी शकार -बहुला भाषा भी शकारी के नाम से प्रसिद्व है । शकार की भाषा तथा तात्पर्य के लिए श्लोक प्रर्याप्त होगा (1।25) -

झाणज्झणन्तबहुभूशणशद्दमिश्शं किं दोवदी विअ पलाअशि लामभीदा।
एशे हलामि शहशति जधा हणूमें विश्शावशुश्श बहिणिं विअतं शुभद्दम्।।

अरी ? अपने गहनों को झनझनाती हुई , राम से डरी हुई द्रौपदी की तरह क्यों भाग रही हो ? मै तुम्हें उसी भॉति ले भगता हूँ, जिस प्रकार हनुमान् विश्वावसु की भगिनी सुभद्रा को ले भागे थे । रामायण तथा महाभारत की कथा की भी अच्छी जानकारी है शकार को ! लोकविरूद्व वृत का निदर्शन इससे बढ़कर और क्या हो सकता है। 'शकार' की अवतारणा प्रथम तथा अन्तिम बार इसी नाटक में हुई है, इसलिए उसकी ओर आलोचकों का ध्यान होना स्वाभविक है । वह राजा की रक्षता का भाई है और इस पद की भूयसी प्रतिष्ठा का ज्ञान ही उसके अभिमान तथा अहंकार का एक जीता-जागता पुतला बनाये हुए है । नाटक में न तो उसके वर्ण संकेत है न उसके देश का। डाक्टर सिल्वॉ लेवी की यह कल्पना है वह शक जाति का था और उसका नाटक में प्रवेश उस युग का स्मारक है जब भारतीय राजा लोग शकदेश की स्त्रियों को अपनी महलों में विवाहिता या रक्षिता बनाकर रखा करते थे । शकार की विचित्र भाषा तथा भारतीय परम्परा का स्थूलतम अज्ञान इस कल्पना के लिए आश्रम माने जा सकें है, परन्तु इसकी पर्याप्त पुष्टि के साधन आज भी अपर्याप्त है । सबसे महत्व की बात यह है कि संस्कृत के नाटककार ने किसी भी विदेशी पात्र की कल्पना अपने नाटकों में नहीं की है । अतः यह कल्पना रोचक होने पर भी तक पुष्ट नहीं मानी जा सकती है ।

सामाजिक दशा

मृच्छकटिक में तत्कालीन हिन्दू-समाज का सच्चा चित्र हमें मिलता है। राजा का प्रभुत्व अधिक अवश्य था, परन्तु वह अपने मन्त्रियों की सहायता से राज्य-संचालन किया करता था। पुलिस का इन्तजाम भी उस समय अच्छा था-मनु की प्रामाणिकता सर्वत्र मानी जाती थी। अधिकरणिक (जज) की सहायता करने के लिए 'असेसर 'हुआ करते थे , जिसमें ब्राह्मण तथा साहुकारों को भी जगह मिलती थी वैश्यों का उस समय अच्छा, संगठन था। वे दूर देशों से व्यापार किया करते थे-विदेशों में जहाज भी आया-जाया करते थे -

आपार्थमक्रमं व्यर्थ पुनरूक्तं हतोपमम्।
लोकन्यायविरूद्व च शकारवचनं विदुः।।

ब्राह्मण का काम केवल अध्ययन -अध्यापन ही नहीं था, बल्कि उनमें भी बड़े धनाढय सम्भवतः व्यापारी से धन प्राप्त करने वाले-व्यक्ति थे। आर्य चारूदत्त के पितामह बड़ी भारी सेठ थे। ब्राह्मण यज्ञ किया करते थे-उनके घर मन्त्रपाठ से सदा गूंजा करते थे। ब्राह्मण-धर्म पर खूब विश्वास था। उस समय की धार्मिक चर्चा आजकल से भिन्न न थी संध्यावन्दन बलि देना, देवताओं के मन्दिरों में सायंकाल को दीप-दान आदि आजकल की तरह उस समय भी प्रचलित थे। इन्द्रध्वज तथा कामदेवोत्सव आदि उत्सवों का सर्वत्र प्रचार था। ब्राह्मणधर्म के अतिरिक्त बौद्धधर्म भी सम्मुन्नत दशा में था चैत्य और विहार भिक्षुओं के लिये बने थे, जिनमें रोगियों की शुश्रूषा भी हुआ करती थी उस समय लोग धनाढय थे-वसन्तसेना के महलमें राजसी ठाटबाट था। इतना होने पर भी दाम देकर खरीदे गये दासों की प्रथा उस समय थी परन्तु क्रीतदासों की दशा बहुत अच्छी थी। उनकें साथ मालिक का व्यहार बहुत अच्छा होता था। उस युग में उज्जयिनी भारतवर्ष की एक समृद्ध नगरी थी, जहॉ पश्चिम समुद्र के बन्दरगाह भरूकच्छ (वर्तमान 'भड़ोंच) के साथ सीधा आवागमन का सम्बध था और इसी मार्ग से विदेशों से आनेवाली वस्तुएं भारत के भीतर आती थीं। समृद्धिनाना प्रकार की बुराईयों को भी पैदा करती है। फलतः जुओं और चोरी जैसे जघन्य व्यावसाय दिन-दहाड़े करनेवाले लोगों की कमी न थी। नगर में 'वेशवाट' की सत्ता उसके नागरिकों की विदग्धता , केलिशीलता तथा भववुक्ता की पर्याप्त परिचायिका है। रूपाजीवी वेश्या के साथ उदात्तचरितात्र कलाप्रवीण गणिका (जैसे वसन्तसेना) का भी अस्तित्व नगरी की महत्ता का द्योतक था। राजशक्ति बहुत ही क्षीण थी। शासन बेहद कमजोर था। जनरक्षण का इतना कुप्रबन्ध या कुप्रबन्धाभाव था किं शाम होते ही बड़े घरों की बहू-बेटियाँ घर से बाहर सड़क पर आने में भी भय खाती थीं कि कही उनके इज्जत का गहना कोई बदमाश कही से टूट न पड़े। नगर के रक्षे रक्षी पुरूष (पुलिस) वहॉ अवश्य विद्यमान थें, परन्तु शत्रु-मित्र की परख करने में बड़ी ढिलाई की जाती थी। राजा के इस कुप्रबन्ध के कारण ही घंटों में सिंहासन उलट जाता था और दूसरा राजा आ धमकता था। नाटक में प्रदर्शित राज्य-परिवर्तन का रहस्य इसी दुर्बल राजशक्ति के भीतर छिपा हुआ है। आर्यचारूदत्त अपने पैतृक कार्य को छोड़कर व्यापार के कार्य में व्यस्त थे आर्यचारूदत्त के पितामह इसी प्रकार के एक धनवान सेठ थे। ब्राह्मणों के भीतर भी विशेष बुराई तथा छल-कपट का प्रवेश हो गया था और ब्राह्मण-युवकों में से अनेक पुरूषों का जीवन जुआ और चोरी में बीतता था शर्विलक ऐसा ही ब्राह्मण है, जो अपने पवित्र

जनेउ की भी हॅसी उड़ाने से बाज नहीं आता बौद्व धर्म भी सम्पन्नदशा में अपना समय बिता रहा था, परन्तु इसके भी अनुयायियों में निकम्मे लोग भर गये थे। जो सर्वथा बेकाम तथा लाचार होता वह बौद्व बिहार में भिक्षु बनकर अपना कालक्षेपे करता ''संन्यासं कुलदूषणैरिव जनै''-(5।14)का लक्ष्य ऐसे ही लोगो की और है। श्रमण का दर्शन 'अनाभ्युदयिक' माना जाता था। गरज यह है कि वह युग समुद्धि का युग था और उसके साथ आनेवाली सब बुराईयों के लिए वहॉ पूरा दरवाजा खुला था। ऐसे भ्रष्ट वातावरण के भीतर से 'चारूदत्त' जैसे आदर्श तथा सच्चरित्र पात्र की कल्पना सचमुच कवि की विमल प्रतिभा का निदर्शन है।

प्राकृत का वैशिष्टय

मृच्छकटिक प्राकृत भाषा की दृष्टि से एक नितान्त उपादेय रूपक है। यहॉ जितनी भाषाएं तथा विभाषायें प्राकृत की उपलब्ध होती है उतनी अन्य किसी नाटक में नहीं, जान पड़ता है कि भरत के भाषाविधान (नाटकशास्त्र.अध्याय 18) को लक्ष्य में रखकर शूद्रक ने इन भाषाओं का प्रयोग भिन्न – भिन्न पात्रों के भाषणों के लिए किया है। टीकाकार पृथ्वीधर के कथनानुसार इस प्रकरण में शौरसेनी. मागधी . अवन्तिका . प्राच्या. शकारी . चाण्डाली तथा ढाक्की इन सात प्राकृतों का प्रयोग किया है . जिनमें से प्रथम चार को वह 'भाषा' मानता है तथा अन्तिम तीन शकारी चाण्डाली तथा ढाक्की को विभाषा। वररुचि जैसे मान्य प्राकृत व्याकरण के कर्ता ने 'विभाषा' के भाषा से पार्थक्य तथा वैशिष्टय का समुचित प्रतिपादन नहीं किया है। 'विभाषा' या तो वह प्राकृत भाषा है जो कवि के द्वारा किसी पात्र-विशेष के बोलचाल के लिए ही कल्पित की गई है अथवा जिसमें नियमों का 'बाहुलकात्' प्रयोग होता है। पृथ्वीधर के अनुसार सूत्रधार . नटी रदनिका. मदनिका , वसन्तसेना , उसकी माता , चेट , कर्णपूरक , धूता , श्रेणी तथा शोधनक (11 पात्र) शौरसेनी बोलते है। संवाहक , तीनों चेट भिक्षु तथा रोहसेन (छः पात्र) मागधी का प्रयोग करते है। वीरक तथा चन्दन अवन्ती बोलते है , तो विदूषक 'प्राच्य' बोलते है शकार की भाषा 'शकारी' है , दोनों चाण्डाली , माथुर और द्यूतकर की भाषा ढाक्की है। इन भाषाओं में शौरसेनी तथा मागधी तो सुप्रख्यात तथा बहुशः व्याख्यात भाषायें हैं। अवन्ती तथा प्राच्य का पृथ्वीधर द्वारा विहित लक्षण-नितान्त अशुद्व है; क्योकि यह लक्षण इन पात्रों की भाषाओं में नहीं मिलता। मार्कण्डेय कवीन्द्र (11 वीं शती) ने अपने 'प्राकृतसर्वस्व' में इनके शुद्ध लक्षण देने की कृपा की है। उनके मतानुसार 'प्राच्या' की प्रकृति शौरसेनी है अर्थात् शौरसेनी के आधार पर कतिपय परिवर्तनों से 'प्राच्य' निष्पन्न हाकती है। इन नियमों में--'मूर्ख' का - 'मूरूक्ख' , 'भवती' का 'भोदि' , 'वक' का 'वक्नु' या बंकुभ' , नीच पात्र के सम्बोधन में आकर का दीर्घत्व आदि कतिपय मान्य नियम है। आवन्ती महाराष्ट्रीय तथा शौरसेनी के मिश्रण से निष्पत्र है, जिसमें सदृक्ष =तूण , दृश=पेच्छ अथवा इरिस , भविष्य सूचक प्रत्यय ज्ज , याज्जा (भोज्जा=भविष्यति) आदि मुख्य है। लेखक की तो यह दृढ़ धारणा है, कि इन भाषाओं के प्राचीन लक्षणों का निर्देश किसी कारण से नष्ट हो गया था और इसीलिए इस नाटक में उपलब्ध तत् भाषाओं के समीक्षण पर ही मार्कण्डेय ने अपना नियम बनाया है। इसीलिए वे नियम पूरे तौर से न मिलते है न सुसंगत होते हैं।

मागधी में शकार तथा ककार की बहुलता लाने से शकार के ऊटपटांग अनर्गल भाषण के लिए ,शूद्रक के द्वारा 'कल्पित' भाषा है। चाण्डाली की भी यही दशा है ढक्की वस्तुतः ढक्क देश की भाषा थी , जो पंजाब का पूर्वीभाग माना जाता था। इस भाषा में उकार की इतनी बहुलता है कि यह अपभ्रंश की ओर सचमुच खुलता है। मार्कण्डेय कवीन्द्र ने किसी हरिश्चन्द्र नामक प्राकृत वैयाकरण की सम्मति दी है, जो ढक्की सचमुच अपभ्रंश ही मानते थे1 । भरत के द्वारा निर्दिष्ट उकारबहुला भाषा हिमवत् , सिन्धुसौवीर देशों में बोली जाती थी। लेखक की सम्मपति में ढक्क देश सिन्धुसौवीर से मिला-जुला पंजाब का पूरवी भाग प्रतीत होता है और इसीलिए दोनों की भाषाओं में साम्य होना है और इसीलिए दोनों की भाषाओं में उचित है।

शूद्रक की काव्यकला

शूद्रक की शैली बडी़ सरल है। बड़े-बड़े छन्दों का बहुत कम प्रयोग किया गया है। नये-नये भाव स्थान -स्थान पर मिलते थे। इस प्रकरण का मुख्य रस श्रृंगार है। रस की विभिन सामग्री से परिपुष्ट कर श्रृगांर का सुन्दर रुप कवि ने दिखलया है। शुद्रक ने वर्षा का बड़ा विशद वर्णन किया है। इसमें चमत्कार -जनक अनेक सूक्तियाँ है।(9।14)--

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूर्तोमिशंखाकुलं
पर्यन्तस्थितचारनमकंर नागाश्वहिस्त्राश्रयम्।
नानावाशककड़.पक्षिरुचिरं कायस्थसर्पास्पदं
नीतिक्षुण्णतटचि च राजकरणं हिस्त्रैः समुद्रायते ।।

इस श्लोक में राजकरण --कचहरी --का खूब सच्चा वर्णन किया गया है। शूद्रक का कहना है कि कचहरी समुद्र की तरह जान पड़ती है। चिन्तामग्न मन्त्री लोग जल है, दूतगण लहर तथा शंख की तरह जान पड़ते है-- इधर-उधर दूर देशों में घूमने के कारण दोनों की यहॉ समता दी गई है। चारों ओर रहनेवाले चोर--आजकल के खुफिया पुलिस--घड़ियाल हैं। यह समुद्र हाथियों तथा घोड़ों के रुप में हिंस्त्र पशुओं से युक्त् है। तरह-तरह के ठग तथा पिशुन लोग बगुले है। कायस्थ (मुंशी लोग) जहरीले सर्प हैं। नीति से इसका तट टूटा हुआ है। यह प्राचीन काल के राजकरण को वर्णन है; आजकल की कचहरी तो कई अंशों में इससे भी बढकर है। कचहरी में पहले-पहले पैर रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को शूद्रक के वर्णन की सत्यता का अनुभव पद-पद पर होता है।

शर्विलक के चरित्र का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। ये ब्राह्मण देवता आर्य चारूदत के घर में रात को सेंध मारने जाते है। पहुँचने पर उन्हें मालूम पड़ता है कि वह अपना मानसूत्र भूल आये है। झटपट गले में पड़े रहनेवाले डोरे की--जनेऊ की--सुधि उन्हें हो जाती है। बस, आप इसी से अपना कार्य सम्पादन करते हैं। इस चौर्य-प्रसंग में यज्ञोपवीत की उपयोगिता सुन लीजिये (3।17)--

यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम् , विशेषतोऽस्मद्विधस्य ,! कुतः एतेन मापयति भितिषु कर्ममागनितेन मोचयति भुषणसंप्रयोगान्। उद्घाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनं च ।।

1.हरिश्चन्द्रस्त्मां भाषामपभ्रंश इतीच्छति।
अपभ्रंशो हि विद्वद्भिर्नाटकादौ प्रयुज्यते ।। (प्राकृतसर्वस्य 16।2)
2.हिमवत्-सिन्धुसौवीरान् येऽन्यदशान् समाश्रिताः।
उकारबहुला तेषु नित्यं भाषां प्रयोजयेत्।। (नाटकशास्त्र ।8147)
ब्राहाणों के लिए , जनेऊ बड़े काम कि चीज है, विशेष करके हमारे जैसे (चार)ब्राह्मणों के लिए ,क्योंकि जनेऊ से भीत पर सेंध मारने की जगह को नापते हैं। आभूषण के बंधन जनेऊ के द्वारा छुडाये जाते है और यदि साँप या कीट काट खाय, तो उसे जनेऊ से बाँध भी सकते है (जिसमें विष न चढे)। ठीक ही है; चोर ब्राह्मण के लिये जनेऊ का और उपयोग हो ही क्या सकता है ?

शूद्रक की नाटककला

कला की दृष्टि से 'मृच्छकटिक' निःसंदेह एक सुन्दर तथा सफल नाटक है। शूद्रक ने संस्कृत-साहित्य में शायद पहिली बार मध्यम श्रेणी के लोगों को अपने नाटक का पात्र बनाया है। संस्कृत का नाटक उच्च श्रेणी के पात्रों के चित्रण में तथा तदनुकूल कथानक के गुम्फन में अपनी भारती को चरितार्थ मानता है, परन्तु शूद्रक ने इस क्षुण्ण मार्ग का सर्वथा परित्याग कर अपने लिए एक नवीन पंथ का ही अविष्कार किया है। उसके पात्र दिन-प्रतिदिन हमारे सड़कों पर और गलियों में चलने फिरनेवाले , रक्तमांस से निर्मित पात्र है, जिनके काम को जाँचने के लिए न तो कल्पना को दौड़ाना पड़ता है और न जिनके भावों को समझने के लिए मन के दौड़ की जरूरत होती है। मृच्छकटिक की इसीलिए शास्त्रीय संज्ञा 'संकीर्ण प्रकरण' की है, क्योंकि इसमें लुच्चे-लबारों, चोर-जुआरों; वेश्या-विटों का आकर्षण वायु-मण्डल है, जहाँ धौल-धुपाड़ों की चौकड़ी सदा अपना रंग दिखाया करती है। आख्यान तथा वातावरण की इस यथार्थवादिता और नैसर्गिकता कारण ही मृच्छकटिक पाश्चात्य आलोचकों की विपुल प्रशंसा का भाजन बना हुआ है। यहाँ कथावस्तु की एकता का भंग नहीं है, यद्यपि वर्षाकाल नाटक के व्यापार में शैथिल्य अवश्य ला देता है। शूद्रक का कविहृदय स्वयमापतित वर्षाकाल की मनोहरता से रीझ उठता है और वह कथा के सूत्र को छोड़कर उसमें मनोहर वर्णन में जुट जाता है सिवाय इस वर्णनात्मक विषय के विभित्र घटनाओं के सूत्रों का एकीकरण बड़ी सुन्दरता से किया है। 'दरिद्र-चारूदत' के समान इसमें केवल एकात्मक प्रणयाख्याम नहीं है, प्रत्युत उस के साथ एक राजनैतिक आख्यान का भी पूर्ण सामंजस्य अपेक्षित है। शूद्रक ने इन दोनों आख्यानों को एक अन्विति को एक उन्विति के भीतर रखने का पूर्ण प्रयास किया और इसमें उनमें इन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है। पात्रों के विषय में यह भूलना न चाहिए कि वे किसी वर्ग -विशेष के प्रतिनिधि ('रिप्रिजेन्टेटिव) न होकर स्वयं 'व्यक्ति' है। वे 'टाइप' नहीं हैं, प्रत्युत 'व्यक्ति' है। मृच्छकटिक के अमेरिकन भाषान्तरकार डॉ0 राइडर ने ठीक ही कहा है कि इस नाटक के पात्र 'सार्वभौम' (कास्मोपालिटन) है, अर्थात् इस विश्व के किसी भी देश या प्रान्त में उनके समान पात्र आज भी चलते-फिरते नजर आते है। इसके सार्वभौम आकर्षण का यही रहस्य है। यूरोप या अमेरिका की जनता के सामने इस नाटक का अभिनय सदा सफल इसलिए हो पाया है कि वह इसके पात्रों से मुठभेंड़ अपने ही देश में प्रतिदिन किया करती है। इनमें पौरस्त्य चाकचिक्य की झाँकी का अभाव कभी भी इन्हें

दूरदेशस्थ पात्रों का आभास भी नहीं प्रदान करता। डाक्टर कीथ भले ही इन्हें पूरे 'भारतीय' होने की राध दें , परन्तु पात्रों के चरित्र में कुछ ऐसा जादू है कि वह दर्शकों के सिर पर चढ़कर बोलने लगता है। आज भी माथुरक जैसे सभिक तथा उसके सहयोगियों का दर्शन कलकत्ता तथा बम्बई की ही गलिया में नहीं होता है, प्रत्युत लण्डन के ईस्ट एण्ड़ में भी वे घूमते-घामते घौले-घप्पड़ जमाते नजर आते है, जहाँ का 'जुआड़ियों का अड्डा' (गैम्बलिंग डेन) आज भी पुलिस की नजर बचाकर दिन दहाडे चला करता है। तात्पर्य यह है कि शूद्रक के पात्र मध्यम तथा अधम श्रेणी के रोचक पात्र है, जिनका इतना यथार्थ चित्रण संस्कृत के रूपकों में फिर नहीं हुआ। शूद्रक की नाटककला वस्तुतः श्लाघनीय है स्पृहणीय है।

अभ्यास प्रश्न 1

1-मृच्छकटिकम् के रचयिता कौन है।
2- मृच्छकटिकम् के आरम्भ में किसका वर्णन है।
3-शूद्रक किस नगर के राजा थे।
4-शूद्रक किस शास्त्र में प्रवीण थे।
5-वसन्तसेना कौन थी।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मृच्छकटिकम् का अर्थ है-

(क) लोहे का घोड़ा (ख) सोने का घोड़ा
(ग) मिट्टी का गाड़ी (घ) लकड़ी की गाड़ी

2. मृच्छकटिकम् की मुख्य नायिका है-

(क) मदनिका (ख) वसन्तसेना
(ग) गौरी (घ) पार्वति

3. शूद्रक भक्त है-

(क) कृष्ण का (ख) शिव का
(ग) विष्णु का (घ) ब्रह्म का

4. मृच्छकटिकम् का सबसे विचित्र नाटकीय पात्र है-

(क) वसन्तसेना (ख) चारूदत्त
(ग) मदनिका (घ) शकार

5. शकार का राजा से सम्बन्ध है-

(क) साला का (ख) मामा का
(ग) भाई का (घ) पिता का

5.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि मृच्छकटिकम् के विषय में शूद्रक कहते हैं कि कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से वर्ण्य विषय तथा वस्तु को भावात्मक बना देता है। नाट्यशास्त्र संस्कृत भाषा का परमरमणीय अंग है । शूद्रक ने संस्कृत-साहित्य में शायद पहिली बार मध्यम श्रेणी के लोगों को अपने नाटक का पात्र बनाया है । संस्कृत का नाटक उच्च श्रेणी के पात्रों के चित्रण में तथा तदनुकूल कथानक के गुम्फन में अपनी भारती को चरितार्थ मानता है, परन्तु शूद्रक ने इस क्षुण्ण मार्ग का सर्वथा परित्याग कर अपने लिए एक नवीन पंथ का ही अविष्कार किया है । उसके पात्र दिन-प्रतिदिन हमारे सड़कों पर और गलियों में चलने फिरनेवाले, रक्तमांस से निर्मित पात्र है, जिनके काम को जाँचने के लिए न तो कल्पना को दौड़ाना पड़ता है और न जिनके भावों को समझने के लिए मन के दौड़ की जरूरत होती है । मृच्छकटिक की इसीलिए शास्त्रीय संज्ञा 'संकीर्ण प्रकरण' की है, क्योंकि इसमें लुच्चे-लबारों, चोर-जुआरों; वेश्या-विटों का आकर्षण वायु-मण्डल है, जहाँ धौल-धुपाड़ों की चौकड़ी सदा अपना रंग दिखाया करती है । आख्यान तथा वातावरण की इस यथार्थवादिता और नैसर्गिकता कारण ही मृच्छकटिक पाश्चात्य आलोचकों की विपुल प्रशंसा का भाजन बना हुआ है । यहाँ कथावस्तु की एकता का भंग नहीं है, यद्यपि वर्षाकाल नाटक के व्यापार में शैथिल्य अवश्य ला देता है । शूद्रक का कविहृदय स्वयमापतित वर्षाकाल की मनोहरता से रीझ उठता है और वह कथा के सूत्र को छोड़कर उसमें मनोहर वर्णन में जुट जाता है सिवाय इस वर्णनात्मक विषय के विभित्र घटनाओं के सूत्रों का एकीकरण बड़ी सुन्दरता से किया है ।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
द्युतम्	जुआँ
दीनानाम्	गरीबो के लिये
कल्पवृक्षः	कल्पवृक्ष
सज्जानानां	सज्जनों का
कुटुम्बी	परिवार के समान
सत्कर्ता	अच्छा कर्म करने वाला
ष्लाघ्यः	प्रशंसनीय
हिमवत्	बर्फ के समान

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –(1) शूद्रक (2) राजा शूद्रक (3) वर्धमान नगर के (4) हस्ति शास्त्र में (5) उज्जयिनी की वेश्या अभ्यास प्रश्न 2 – 1. ग 2. ख 3. ख 4. घ 5. क

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मृच्छकटिकम् ,लेखक -शूद्रक , प्रकाशक - चौखभा संस्कृत भारति चौक वाराणसी

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1. मृच्छकटिकम् ,लेखक -शूद्रक , प्रकाशक - चौखभा संस्कृत भारति चौक वाराणसी

5. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वसन्तसेना कौन थी उसका सामान्य रूप से वर्णन कीजिये
2. शूद्रक की नाट्यकला का वर्णन कीजिए।
3. वसन्तसेना का चरित्र चित्रण कीजिए।

खण्ड- तीन (Section-C)
संस्कृत साहित्य का इतिहास: भाग-3

इकाई 1. विशाखदत्त के मुद्राराक्षस का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 विशाखदत्त का जीवन परिचय एवं कृतित्व
1.3.1 विशाखादत्त का समय निर्धारण
1.3.2 विशाखादत्त का जीवन परिचय
1.3.3 विशाखादत्त का कृतित्व
1.3.4 मुद्राराक्षस का कथासार
1.3.5 पात्र परिचय
1.4 मुद्राराक्षस का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक परिचय
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व के खण्ड़ में आपने भारवि आदि प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त किया। यह तृतीय खण्ड की प्रथम इकाई है। इसमें आप विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षस का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक परिचय प्राप्त करेंगे।

संस्कृत नाटकों की परम्परा में महाकवि कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम तथा पाश्चात्य नाटकों में शेक्सपीयर के नाटक अत्यधिक लोकप्रिय है किन्तु संस्कृत नाट्य-जगत में एक मात्र उपलब्ध राजनीतिक नाटक 'मुद्राराक्षस' के लेखक के रूप में विशाखादत्त की कीर्ति अमर है। नाटकों में मुद्राराक्षस का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। यह सात अंकों में विभक्त है। इसका नायक धीरोदात्त ब्राह्मण चाणक्य है तथा प्रतिनायक अमात्य राक्षस है चन्द्रगुप्त उपनायक तथा मलयकेतु प्रतिनायक है। अपनी कूटनीतियों के जाल में चाणक्य राक्षस को फसांकर उसे चन्द्रगुप्त का मंत्री बनने के लिए विवश कर देता है।

इस प्रकार से अद्वैत ऐतिहासिक नाटक अपने पूर्ण नाट्य लक्षणों के साथ अद्वितीय रूप में प्रस्तुत हो ऐसा प्रयास विशाखादत्त ने सफलता पूर्वक किया है। आप प्रस्तुत इकाई के माध्यम से यह बता सकेंगे।

1.2 उद्देश्य-

इस इकाई का अध्ययन करके आप –

- मुद्राराक्षस के बारे में सरलता से जान सकेगें।
- मुद्राराक्षस के ऐतिहासिक तथा साहित्यिक ज्ञान का परिचय दे सकेगें।
- विशाखदत्त का जीवन परिचय बता सकेंगे।

1.3 विशाखदत्त का जीवन परिचय एवं कृतित्व

विशाखदत्त राजनीति-विषयक नाटकों की रचना में प्रवीण प्रतीत होते है। इनकी विश्रुत रचना तो 'मुद्राराक्षस' ही है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन से सम्बद्ध है और जो अमात्य चाणक्य की बुद्धिमत्ता तथा कुटनीतिमत्ता का एक विमल निदर्शन है।

1.3.1 विशाखदत्त का समय निर्धारण

विशाखदत्त के कालनिर्णय में बहिःसाक्ष्य बहुत कम सहायक हैं। इनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम मुद्राराक्षस की चर्चा धनिक कृत दशरूपावलोक (1/68) में है-तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्। धनिक का समय 1000ई०है। एक अन्य स्थल (2/55) पर भी इस ग्रन्थ में धनिक ने इस नाटक में प्रयुक्त मन्त्रशक्ति और अर्थशक्ति के उदाहरण दिये हैं। भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण (5/65) में मुद्रारक्षस का नाम लिये बिना इसके दो पद्य (1/22 तथा 3/21) उद्धृत किये हैं। यह 11 वीं शताब्दी ई० का ग्रन्थ है। इनकी अपेक्षा इसीलिए अन्तः साक्ष्य अधिक चर्चित और व्यवस्थित है।

अन्त:साक्ष्य की दृष्टि से चार महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय हैं-(1) भरतवाक्य में 'चन्द्रगुप्त' आदि

पाठ, (2) भरतवाक्य में म्लेच्छों के आक्रमणकी चर्चा, (3) प्रस्तावना में चर्चित चन्द्रग्रहण तथा (4) जैन-बौद्ध धर्मों के प्रति विचार। इनका क्रमश: विवेचन किया जाता है।

भरतवाक्य में चन्द्रगुप्तादि पाठ-मुद्राराक्षस के भरत-वाक्य (7/18) में उत्तरार्ध इस प्रकार है-

म्लेच्छैरुद्वीज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्ते:
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं प्रार्थिवश्चन्दगुप्त:।

इसमें राजा चन्द्रगुप्त के द्वारा पृथ्वी की चिर-रक्षा का आशीर्वाद है। भरतवाक्य कथानक का अंक नहीं होता, अपितु उसमें नाट्यकार अपने समकालिक किसी राजा के प्रशंसा करता है। यद्यपि इस प्रसंग में 'पार्थिवोऽवन्तिवमां' 'पार्थिवो दन्तिवर्मा' 'पार्थिवो रन्तिवर्मा' इत्यादि अनेक पाठ मिलते हैं, तथापि बहुसंख्यक विद्वानों ने 'चन्द्रगुप्त' वाले पाठ को मूल एवं अन्य पाठों को परिवर्तित (ऊह-रूप) कहा है। यह चन्द्रगुप्त प्रसिद्ध गुप्तवंशीय नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय था जिसका शासन-काल 375ई० से 413 ई० तक माना जाता है। विशाखदत्त का अन्य नाटक 'देवीचन्द्रगुप्त' भी इसी राजा के सिंहासनारोहण से सम्बद्ध है। गुप्तवंशीय राजा विष्णु के उपासक थे। उक्त भरतवाक्य में भी विष्णु की वराहमूर्ति की चर्चा है। गुप्तकाल के ही उदयगिरि-अभिलेख वाली गुफा में चित्रित वराह की मूर्ति मिली है जिसमें असुरों से पृथ्वी की रक्षा वराह कर रहे हैं, भरतवाक्य का सीधा सम्बन्ध इस गुहाचित्र से है। मुद्राराक्षस की विषय-वस्तु और अभिनेयता ने इसका अभिनय बार-बार कराया था; संकट के बाद राज्य पाने वाले राजाओं ने इसके मंचन को शुभ मानकर इसका अभिनय कराया और उनके प्रशंसकों ने राजा का नाम भरत-वाक्य में बदलना आरम्भ कर दिया। इसीलिए अवन्तिवर्मा आदि अनपेक्षित नामों वाले पाठ उत्पन्न हुए। तेलंग, ध्रुव तथा पं० बलदेव उपाध्याय ने अवन्तिवर्मा (मौखरिवंश के राजा, षष्ठ शताब्दी ई० का उत्तरार्ध) वाले पाठ को प्रामाणिक मानकर विशाखदत्त का समय 550-600ई० माना है। किन्तु वस्तुस्थिति इसके प्रतिकूल है। लेखक ने चुन्द्रगुप्त मौर्य और चन्द्रगुप्त द्वितीय की राज्य-प्राप्ति में साम्य देखकर इस नाटक की रचना की प्रेरणा पायी थी; उसका प्रबल समर्थन उन्होंने 'देवीचन्द्रगुप्त' लिखकर किया।

भारतवर्ष के जिस रूप की प्रशंसा मुद्राराक्षस (3/19 आ शैलेन्द्रात्.....आतीरात् दक्षिणस्यार्णवस्था) में की है, वह अवन्तिवर्मा के राज्य में सम्भव नहीं था; अपितु चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही राज्य था। गुप्तकाल में ही पाटलिपुत्र में समारोह-पूर्वक कौमुदी-महोत्सव मनाया जाता था जिसकी मुद्राराक्षस में (3/19 के बाद), भले ही कृतककलह के निमित्त उसके निषेध के लिए, चर्चा है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में, फाहियान के अनुसार, बौद्ध धर्म की स्थिति अच्छी थी। मुद्राराक्षस में वर्णित व्यवस्था से उसकी संगति बैठ जाती है। इस प्रकार विशाखदत्त को 400-450 ई० में मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

म्लेच्छों का आक्रमण- उपर्युक्त भरत वाक्य में म्लेच्छों के आक्रमण का उल्लेख है जिसका प्रतीकार विशाखदत्त के समकालिक (अधुना) राजा चन्दगुप्त या अवन्तिवर्मा ने किया था। प्राचीन भारत में सामान्यत: विदेशियों को 'म्लेछ' कहा जाता था; वे वर्णाश्रम-धर्म को नहीं मानते थे। ईस्वी सन की प्रारम्भिक शताब्दियों में क्रमश: शकों तथा हूणों को म्लेच्छ कहते थे;

यह बात अवश्य थी कि म्लेच्छों ने यहाँ शासन करना आरम्भ कर दिया था। 'अवन्तिवर्मा' पाठ मानने वाले कहते हैं कि इस राजा ने प्रभाकरवधर्न (हर्ष के पिता) के सहयोग से 582 ई॰ में हूणों को पराजित किया था। किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय के द्वारा अपने सिंहासनारोहण के समय ही शकों को पराजित करने का तथ्य इसकी अधिक प्रबल है; शकराज को मारकर चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने ध्रुवदेवी से परिणय किया ताकि म्लेच्छों से आक्रान्त पृथ्वी पर पुनः सनातन व्यवस्था स्थापित की। इसकी संगति अधिक ग्राह्य है।

चन्द्रग्रहण का उल्लेख

मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में ऐसे चन्द्रग्रहण का उल्लेख है जो बुध-योग के कारण टल जाता है। यद्यपि इसमें श्लेष द्वारा ज्योतिषशास्त्रीय एवं प्रकृत विषय-दोनों का निरूपण है,' किन्तु इसमें निर्दिष्ट तथाकथित चन्द्रग्रहण की व्यवस्था को लेकर भी विद्वानों ने विशाखदत्त का काल निरूपित किया हैं विशाखदत्त ज्योतिष के विद्वान् थे। इस शास्त्र में बुध योग से चन्द्रग्रहण का निवारण-सिद्धान्त वराहमिहिर (500ई॰ के लगभग) के पूर्व में ही प्रचलित था। वराहमिहिर ने अपनी 'बृहत्संहिता' में कहा है कि बुधयोग से चन्द्रगहण का निषेध नहीं होता। यह स्थिति विशाखदत्त को 500ई॰ पूर्व सिद्ध करती है जो चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के राज्यकाल में या उससे कुछ ही बाद विशाखदत्त का काल मानने का समर्थन करती है।

जैन-बौद्ध धर्मों के प्रति धारणा

मुद्राराक्षस के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि विशाखदत्त के समय में जैन और बौद्ध धर्म समाज में आदरणीय थे। इस नाटक के सप्तम अंक में राक्षस कहता है कि बोधिसत्त्वों का तग तो प्रसिद्ध है किन्तु चन्दनदास ने अपने कर्म से (मित्र के लिए प्राणत्याग करते हुए) उनके चरित्र को भी न्यून बना दिया (7/5)। इसी प्रकार क्षपणक जीवसिद्धि का ब्राह्मणों के साथ रहना भी जैनधर्म के प्रति आदरभाव का सूचक है। ये दो धर्म सप्तम शताब्दी से हासोन्मुख हुए। अतः विशाखदत्त को 600ई॰ से पूर्व रखना उपयुक्त है। इस दृष्टि से वे मौखरि अवन्तिवर्मा के अथवा चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में भी रखे जा सकते हैं किन्तु अन्य स्थितियाँ (जैसे सम्पूर्ण भारत का एकछत्र राज्य मानना, विष्णु से अपने आश्रयदाता की भरतवाक्य में तुलना, देवीचन्द्रगुप्त की रचना इत्यादि) विशाखदत्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में सिद्ध करती हैं। प्रो॰ हिलब्राँ ,स्पेयर, टॉनी, रणजित पण्डित, सी॰ आर॰ देवधर आदि इसी के समर्थक हैं। इस मत के प्रवर्तक प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ॰ काशीप्रसाद जायसवाल थे।

1.3.2 विशाखदत्त का जीवन परिचय

नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार के द्वारा विशाखदत्त का कुछ परिचय दिया गया है। विशाखदत्त के पितामह वटेश्वरदत्त थे। इनके पिता का नाम महाराज पृथु अथवा भास्कर दत्त था। कहीं-कहीं इनका नाम विशाखदेव भी मिलता है। इनके पिता तथा पितामह के नामों को देखने से प्रतीत होता है कि सम्बन्ध किसी राजवंश से था, क्योंकि प्राचीन काल में किसी एकच्छत्र सम्राट् के अधीनस्थ राजाओं को 'सामन्त' कहा जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि विशाखदत्त किसी चक्रवर्ती सम्राट् के आश्रित थे। इन्होंने उसी राजा के गुणों का वर्णन नाटक में प्रकारान्त से

किया है। मुद्राराक्षस में विशाखदत्त के जीवन के विषय अन्तः साक्ष्य नहीं है। फिर भी इस नाटक में गौड़देश की प्रथाओं, रीति-रिवाजों तथा सूक्ष्मतिसूक्ष्म बातों का वर्णन होने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये गौड़देश के वासी थे। उनके प्रदेश में धान की खेती अधिक मात्रा में होती थी। इसी कारण धान की सघनता से वे पूर्णतः परिचित थे। मलयकेतु की सेना में रहने वाले खर्शो के प्रति विशाखदत्त का विशेष लगाव दिखाई पड़ता है। इससे लगता है कि विशाखदत्त देश के वासी थे। मुद्राराक्षस के अन्तिम श्लोक 'भरतवाक्य' से भी विद्वानों ने विशाखदत्त आश्रयदाता राजा का अनुमान किया है। यह श्लोक इस प्रकार है-

वाराहीमात्योनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री
म्लेच्छैरूद् वेज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः
सश्रीमद्बबन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्दगुप्तः।।-(7/19)मुद्रा0

इस श्लोक के अन्त में चार पाठभेद हैं-

1. पार्थिवो रन्तिवर्मा
2. पार्थिवोऽवन्तिवर्मा
3. पार्थिवो दन्तिवर्मा
4. पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः

इस चारों पाठभेदों में से प्रामाणिक पाठ का निर्णय होने पर विशाखदत्त के काल का भी निर्णय हो सकता है। प्रथम पाठ में कथित राजा रन्विर्मा के नाम का उल्लेख किसी भी इतिहासकार ने नहीं किया है। अतः रन्तिवर्मा के साथ कवि विशाखदत्त का सम्बन्ध किसी भी तरह स्थापित नहीं किया जा सकता है। दूसरा पाठ 'अवन्ति वर्मा' है। इतिहास के अनुसार अवन्तिर्मा नाम के दो राजा हुए हैं। पहले काश्मीर के राजा तथा दूसरे कन्नौज के मौखरिवंश के थे। काश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा नवीं शताब्दी के मध्य (855-863ई०) में हुए थे। कवि विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में काश्मीर नरेश के लिये म्लेच्छ जैसे घृणित नाम का प्रयोग किया है। इसलिये विशाखदत्त के आश्रयदाता काश्मीर नरेश नहीं हो सकते। दूसरी बात यह है कि याकोबी ने नाटक की प्रस्तावना में उल्लिखित चन्द्रग्रहण को 2 दिसम्बर 860ई० का माना है। अतः विशाखदत्त निश्चित ही इस चन्द्रग्रहण से पूर्व के होने चाहिये। अतः विशाखदत्त काश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के काल के प्रतीत नहीं होते हैं।

दूसरे अवन्ति वर्मा भी भारत कन्नौज के मौखरि वंश के थे। इनका समय छठीं शताब्दी उत्तरार्ध में था। किन्तु यह राजा कभी भी भारत का एकछत्र सम्राट नहीं था, जैसा कि वर्णन विशाखदत्त ने भरतवाक्य में किया है। दूसरी बात यह है कि इस अवन्तिवर्मा ने कभी भी म्लेच्छों को परास्त नहीं किया था। कुछ लोग कहते हैं कि अवन्तिवर्मा ने थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन की सहायता से सन् 582ई० में हूणों को परास्त किया था तथा तथा भरतवाक्य में कथित म्लेच्छ पद हूणों के लिये ही आया है। किन्तु म्लेच्छ कहने से हूणों का ही अर्थ लिया जाए, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। क्योंकि विशाखदत्त ने तो नाटक में कुतूलाधिपति चित्रवर्मा, मलय के राजा

सिंहनाद, कश्मीर नरेश पुष्कराक्ष, सिन्धु के शासक सिन्धुशेण तथा फारस के अधिपति मेघ को भी म्लेच्छ कहा है । पर्वतश्वर तथा मलयकेतु को भी विशाखदत्त म्लेच्छ कहते हैं । फिर भरतवाक्य में उल्लिखित 'म्लेच्छ' पद से हूणों को मानकर कन्नौज के राजा अवन्तिवर्मा का पाठ भी उचित नहीं लगता । तृतीय पाठान्तर में राजा दन्तिवर्मा को स्वीकार किया गया है । दन्तिवर्मा पल्लवनरेश थे । इनका समय अष्टम शतक उत्तरार्ध है । किन्तु इन राजा दन्तिवर्मा ने म्लेच्छों को परास्त किया था-इसका कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है । साथ ही प्रो॰ ध्रुव ने कहा है कि पल्लव राजा कट्टर शैव थे, जबकि विशाखदत्त ने इन्हें विष्णु का अवतार माना है । अतः 'दन्तिवर्मा' का यह पाठभेद ठीक नहीं है ।

अन्ततः 'चन्द्रगुप्त' यह पाठ ही परिशेषात् उचित मालूम पड़ता है । इतिहास में तीन चन्द्रगुप्तों का वर्णन मिलता है । प्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य, दूसरे गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त प्रथम तथा तीसरे चन्द्रगुप्त मौर्य ही मुद्राराक्षस के नायक हैं । विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के राक्षस के मुख से चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त के लिए कटुशब्दों का प्रयोग किया है इसलिये चन्द्रगुप्त मौर्य विशाखदत्त के आश्रयदाता नहीं हो सकते । दूसरे गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त प्रथम ने म्लेच्छों को परास्त किया था-इस बात का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं हैं अन्ततः विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के आश्रय में थे-इसी बात को स्वीकार किया जा सकता है । चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों को परास्त किया था । विशाखदत्त ने शकों को म्लेच्छ कहा है । भरतवाक्य में चन्द्रगुप्त को विष्णु का अवतार कहा गया है । यह बात चन्द्रगुप्त द्वितीय पर पूर्ण लागू होती है । उन्हें भी विष्णु भक्त तथा विष्णुका अवतार माना जाता है ।

इस प्रकार इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रामदित्य के काल में (400ई॰) हुए थे। भरतवाक्य में प्रयुक्त 'अधुना' शब्द से विक्रमादित्य तथा विशाखदत्त की समानकालीनता सिद्ध होती है । मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुण्ढिराज पण्डित जैसे कुछ लोगों का कहना है भरतवाक्य में उक्त राजा चन्द्रगुप्त मौर्य ही हैं क्योंकि प्रसरत: वहाँ चन्द्रगुप्त मौर्य का ही नाम उचित लगता है । चन्द्रगुप्त मौर्य ने भी सेल्यूकस को परास्त किया था तथा सेल्यूकस को यूनानी होने से म्लेच्छ कहा जा सकता है । किन्तु ऐसा मानने पर भी विशाखदत्त को चन्द्रगुप्त मौर्य का आश्रित नहीं माना जा सकता है, क्योंकि नाटक में चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के लिये कटुवचनों का प्रयोग है । ऐसी दशा में तो विशाखदत्त का काल ही निर्धारित नहीं हो सकता है ।

इस प्रकार कुल मिलाकर विशाखदत्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (400ई॰) के ही काल का मानना न्यायसंगत है ।

1.3.3 विशाखदत्त का कृतित्व

मुद्राराक्षस के अतिरिक्त विशाखदत्त के अन्य दो ग्रन्थ हैं-देवीचन्द्रगुप्तम् तथा अभिसारित वच्चितकम् । 'देवीचन्द्रगुप्तम' में चन्द्रगुप्त द्वितीय के पराक्रम का भव्य वर्णन है ।

'अभिसारितवच्चितकम्' में वत्सराज उदयन के चरित्र का वर्णन है ।

मुद्राराक्षस का नामकरण

मुद्राराक्षस में राक्षस की मुद्रा (अंगुठी) की विशेष भूमिका है। इसी मुद्रा के द्वारा चाणक्य ने राक्षस को वश में किया। मुद्राराक्षस का ही यही अर्थ है-मुद्रया गृहीतः राक्षसः यस्मिन् तत् मुद्राराक्षसं नाटकम्। चाणक्य ने शकटदास से एक गुप्त पत्र लिखवाकर उस पर राक्षस की अंगूठी से चिन्ह लगाया तथा उसी पात्र के आधार पर मलयकेतु को राक्षस से अलग कर दिया। संस्कृत नाटकों में मुद्राराक्षस का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। यह सात अंकों में विभक्त है। इसका नायक धीरोद्धत ब्राह्मण चाणक्य है तथा प्रतिनायक अमात्य राक्षस है। चन्द्रगुप्त उपनायक तथा मलयकेतु उपप्रतिनायक है। इसमें वीररस प्रधान रस है। सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य की कूटनीतियों का विलास है। अपनी कूटनीतियों के जाल में चाणक्य राक्षस को फंसाकर उसे चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनने के लिये विवश कर देता है।

मुद्राराक्षस की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1.सामान्यतया संस्कृत नाटक प्रेमकथा पर आश्रित रहते हैं। कालिदास के तीनों नाटकों का आधार प्रेमकथा ही है, किन्तु मुद्राराक्षस में प्रेमकथा का सर्वथा अभाव है। इसलिये मुद्राराक्षस में नायिका ही नहीं है। यहाँ तक कि इस नाटक में स्त्रीपात्र भी केवल तीन हैं- मलयकेतु की प्रतिहारी शोणोत्तरा, विजया तथा चन्दनदास की पत्नी। किन्तु ये स्त्रीपात्र भी श्रृंगार का उद्दीपन नहीं करते हैं। इस नाटक में श्रृंगार भावना का पूर्णतः अभाव है। चाणक्य की कूटनीति के दांव-पेचों से सारा नाटक व्याप्त है।

2.नायिका के साथ-साथ इस नाटक में विदूषक का भी अभाव है। राजीनीति के दांव-पेचों में उलझे हुए दर्शकों को विदूषक का अभाव जरा भी नहीं खलता है।

3.मुद्राराक्षस की तीसरी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें बिना युद्ध के ही चाणक्य ने राक्षस को वश में कर लिया है- विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति। नाटक में एक भी अस्त्र-शस्त्र नहीं चला, न ही कोई मारा गया या घायल हुआ फिर भी केवल कूटनीति के आधार पर ही राक्षस की पराजय हो जाती है।

4. मुद्राराक्षस एक नवीन प्रकार की रचना है। यह नाटक के नियमों के पूर्णतः अनुरूप नहीं है, क्योंकि इसकी रचना कोई नाटय शास्त्रीय नियमों को मानकर चलने के लिये नहीं हुई, बल्कि जनमनोरंजन के लिए हुई है। यद्यपि विशाखदत्त नाटयशास्त्र के नियमों के पूर्णतः ज्ञाता थे, तथापि उन्होंने नवीन प्रयोग कर अपनी वैयक्तिक प्रतिभा दिखाने का सफल प्रयास किया है। मुद्राराक्षस में नाटकों में प्राचीन परम्परा के अनुसार कोई प्रख्यातवंशीय राजा नायक नहीं बना है, अपितु एक साधारण ब्राह्मण नायक बना है। इसका इतिवृत्त भी किसी प्रेमकथा पर आधारित न होकर ऐतिहासिक है। इस प्रकार विशाखदत्त ने अपनी इस रचना में नवीन प्रयोग किया है।

5. मुद्राराक्षस में सभी प्रमुख पात्रों का चरित्र अत्यन्त सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। राक्षस-चाणक्य तथा मलयकेतु-चन्द्रगुप्त का प्रतिद्वन्द्व प्रमुख रूप से वर्णित है। चन्द्रगुप्त चाणक्य का अंधभक्त है, जबकि मलयकेतु पग-पग पर राक्षस पर संदेह करता है। राक्षस तथा चाणक्य के परस्पर संघर्ष पर ही उन दोनों का चारित्रिक विकास निर्भर है।

6.मुद्राराक्षस की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता है-उसके इतिवृत्त की योजना । विशाखदत्त ने सम्पूर्ण नाटक में कथा के तीनों-बानों का जाल बड़ी कुशलता से बुना है । कथा के प्रारम्भ में सभी घटनाएँ अलग-थलग बढ़ती हुई दिखाई देती हैं तथा अन्त मे उन सभी घटनाओं का एक स्थान पर सामंजस्य होता है । सम्पूर्ण नाटक में कोई भी ऐसा पात्र नहीं है जो कि निरर्थक हो । चाणक्य के द्वारा नाटक के प्रारम्भ में प्रयुक्त सभी व्यक्ति अन्ततः राक्षस को वश में करने में सफल भूमिका निभाते हैं। कथावृत्त की ऐसी चातुर्यपूर्ण योजना विशाखदत्त की अनुपम विशेषता है।

विशाखदत्त की शैली

मुद्राराक्षस में विशाखदत्त का अभिनव रचना कौशल दिखलाई पड़ता है । मुद्राराक्षस की शैली प्रसादगुणयुक्त तथा प्रांजल है। इसकी भाषा मधुर तथा सरल है।

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभाम्
सन्ध्यारुणामिव कलां शशला छनस्य।
जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात् स्फुरन्तीं
को हर्त्तुमिच्छति हरेः परिभूय द्रंष्ट्राद्रम्।। -1/8

मुद्राराक्षस में शब्दविन्यास या तो असमस्त है या अल्पसमस्त । इसमें श्लोंकों की भी प्रचुर योजना है। इसका गद्यभाग भी अत्यन्त प्रभावशाली तथा संवाद बड़े रूचिकर हैं। जैसे-

''अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः।''

''कीदृशः पुनः तृणानामग्निा सह विरोधः।''

इसमें सभी पात्रों का चित्रण भी बड़ा स्वाभाविक है। इतिवृत्त की योजना में कवि नितान्त निपुण हैं।

1.3.4 मुद्राराक्षस का कथासार

प्रथम अंक में सर्वप्रथम नान्दी तथा प्रस्तावना होती है। सूत्रधार के द्वारा चन्द्रग्रहण के वर्णन के ब्याज से चाणक्य का प्रवेश किया जाता है। चाणक्य अपने शिष्य के साथ बैठकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने के लिये उद्यत राक्षस तथा मलयकेतु को वश में करने का विचार करता है। बिना राक्षस को नियंत्रित किये चन्द्रगुप्त का राज्य स्थिर नहीं हो सकता है। वह राक्षस को वश में करने के सम्बन्ध में अपनी योजनाओं की जानकारी देता है। उस समय चाणक्य के द्वारा प्रयुक्त गुप्तचर निपुणक वहाँ आकर सूचना देता है कि राक्षस के परिवारजन चन्द्रनदास नामक वैश्य के यहाँ सुरक्षित हैं। वहाँ से गुप्तचर को राक्षस की नामांकित मुद्रा मिली है, जिसे वह चाणक्य को दे देता है । चाणक्य मुद्रा प्राप्त करके प्रसन्न हो जाता है और शकटदास के द्वारा एक कपटपूर्ण लेख लिखवाकर उसे राक्षस की मुद्रा से मुद्रांकित कर देता है। शकटदास यह नहीं जान पाता कि लेख को चाणक्य ने लिखवाया है। फिर चाणक्य वह लेख सिद्धार्थक को देकर उसके कानों में गुप्त योजना बताता है और उसे कहता है कि वह शकटदास, जिसे चाणक्य ने मृत्युदण्ड की सजा दी है, उसे मृत्युस्थान से छुड़वाकर राक्षस के यहाँ पहुँचा दे। उसके पश्चात् चाणक्य चन्दनदास को बुलवाता है तथा उसे कहता है वह राक्षस के परिवारजनों को सौंप दे । चन्दनदास किसी भी कीमत पर राक्षस के परिवारजनों को सौंपने के लिये तैयार नहीं होता । चाणक्य उसे बन्धन में

डालने की आज्ञा देता है तथा अपने ही गुप्तचर जीवसिद्धि क्षपणक को देश निकाला देता है ताकि वह राक्षस के पास जा सके ।''सिद्धार्थक ने शकटदास को भगा दिया'-यह समाचार जानकर चाणक्य खुश हो जाता है और राक्षस को पकड़ने के लिये निश्चित होकर निकल जाता है।

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में सपेरे के वेश में विराधगुप्त प्रवेश करता है । कञ्जुकी राक्षस को मलयकेतु के द्वारा दिये गये आभूषण देता है । विराधगुप्त राक्षस को कुसुमपुर के समाचार बतलाता है-''राक्षस ने पर्वतेश्वर को विषकन्या के द्वारा मारा है- यह समाचार कुसुमपुर में फैलाया गया है । चन्द्रगुप्त ने अर्धरात्रि में नन्दभवन में प्रवेश किया है । राक्षस के द्वारा किये गये चन्द्रगुप्त वध के सारे षड्यन्त्रों को चाणक्य ने नष्ट कर दिया है । चन्दनदास कैदखाने में डाल दिया गया है ।'' यह सारा समाचार विराधगुप्त राक्षस को सुनाता है । उसी समय वहाँ शकटदास को लेकर सिद्धार्थकि उपस्थिति होता है । शकटदास अपनी बन्धन से मुक्ति का वृत्तान्त राक्षस को बतलाता है । राक्षस प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को मलयकेतु के द्वारा दिये गये आभूषण दे देता है । सिद्धार्थक उन आभूषणों को चुपके से राक्षस की मुद्रा से अंकित कर रख लेता है । शकटदास तथा सिद्धार्थक के चले जाने पर विराधगुप्त पुनः राक्षस के कुसुमपुर का वृत्तान्त सुनाता है । राक्षस विराधगुप्त को चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त में विवाद करवाने के लिये कुसुमपुर भेजा देता है । उधर राक्षस चाणक्य के गुप्तचर से ही अनजाने में कुछ आभूषण खरीद लेता हैं ये वही आभूषण हैं जो पर्वतेश्वर धारण किया करते थे ।

तृतीय अंक चन्द्रगुप्त कंचुकी से कौमुदी महोत्सव रोके जाने का कारण पूछता है । कंचुकी बताता है कि यह चाणक्य का आदेश है । चन्द्रगुप्त चाणक्य से मिलता है और उनके द्वारा कौमुदीमहोत्सव रोकने का कारण पूछता है । चाणक्य कहता है कि सचिवायत्तसिद्धि का राजा से कोई प्रयोजन नहीं है । तभी राक्षस का गुप्तचर वैतालिक के रूप से चन्द्रगुप्त के क्रोध के उत्तेजक श्लोक कहता है । चन्द्रगुप्त वैतालिक को सौ हजार सुवर्णमुद्रा देता है । चाणक्य चन्द्रगुप्त को मना करता है । चन्द्रगुप्त पुनः चाणक्य से कौमुदीमहोत्सव रोकने का कारण पूछता है । चाणक्य कहता है कि पहला कारण तो तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करना है और दूसरा कारण यह है कि सेना को तैयार कराने का समय है, उत्सव का नहीं । चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त में कृतककलह (नकली विवाद) होता है । चन्द्रगुप्त कहता है आपकी अपेक्षा राक्षस अधिक प्रशंसनीय है । चाणक्य अपना मन्त्रीपद् त्यागने की घोषणा करता है । चन्द्रगुप्त भी कहता है मैं चाणक्य के बिना राज्य का संचालन कर लूँगा ।

चतुर्थ अंक- राक्षस का गुप्तचर करभक राक्षस के पास आता है तथा उसे चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य के कलह की बात बतलाता है । उधर भागुरायण मलयकेतु को भड़काता है कि चाणक्य के चन्द्रगुप्त से अलग हो जाने पर राक्षस स्वामिपुत्र चन्द्रगुप्त से सन्धि कर सकता है । भागुरायण के साथ मलयकेतु मञ्ज पर आता है और राक्षस के साथ मलयकेतु की बातचीत होती है । सभी लोग चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने का निश्चय करते हैं । मलयकेतु स्वयं को अमात्याधीन न होने से धन्य मानता है । मलयकेतु तथा भागुरायण के चले जाने पर राक्षस शत्रु पर आक्रमण करने के

लिये शुभ मुहूर्त निकालने का निश्चय करता है। जीवसिद्धि क्षपणक वहाँ आता है और राक्षस को मुहूर्त बतलाता है। राक्षस उसके बताये मुहूर्त से सन्तुष्ट नहीं होता। क्षपणक क्षुब्ध होकर वहाँ से चला जाता है। राक्षस भी वहाँ से निकल जाता है।

पंचम अंक - सिद्धार्थक तथा क्षपणक की बातचीत से मालूम पड़ता है कि राक्षस के शिविर से निकलने या प्रवेश करने के लिये मुद्रित पत्र का पास में होना आवश्यक है। क्षपणक मुद्रितपत्र की प्राप्ति के लिये भागुरायण के पास जाता है। भागुरायण समझता है कि क्षपणक राक्षस का मित्र है, लेकिन क्षपणक राक्षस के प्रति घृणा प्रकट करता है। वह कहता है राक्षस ने पर्वतेश्वर को विषकन्या के द्वारा मारा है। मलयकेतु ये सारी बातें छुपकर सुन लेता है। क्षपणक के जाने पर मलयकेतु वहाँ आता है। सिद्धार्थ बिना मुद्रित पत्र के शिविर के बाहर जाने लगता है। राक्षस के सेवक उसे पकड़कर मलयकेतु तथा भागुरायण के पास ले आते हैं। सिद्धार्थ के पास से राक्षस की मुद्रा से मुद्रित पत्र (इसे चाणक्य ने शकटदास से लिखवाकर मुद्रित करवाया था) तथा अलंकारपेटिका मिलती है। पत्र में चन्द्रगुप्त से राक्षस की सन्धि की बात लिखी है। सिद्धार्थ कहता है कि यह पत्र तथा आभूषण उसे राक्षस ने चन्द्रगुप्त को देने के लिये दिया है। मलयकेतु यह सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो जाता है और राक्षस को मारने के लिये तैयार हो जाता है। भागुरायण उसे शान्त करता है। राक्षस वही आभूषण पहनकर वहाँ आता है, जो उसने चाणक्य के गुप्तचर से खरीदे थे। वस्तुतः ये आभूषण पर्वतेश्वर के थे। मलयकेतु राक्षस को उन आभूषण में देखकर उन्हें पर्वतेश्वर का घातक समझ लेता है। वह राक्षस को शिविर से बाहर निकाल देता है और मलयकेतु चित्रवर्मा आदि राजाओं को मार डालने का आदेश देता हैं मलयकेतु चन्द्रगुप्त आक्रमण करने के लिये चला जाता है और राक्षस चन्दनदास को छुड़ाने चला जाता है।

षष्ठ अंक- प्रारम्भ में सुसिद्धार्थक तथा सिद्धार्थक का वार्तालाप होता है। उनके वार्तालाप से मालूम होता है कि मलयकेतु को चन्द्रगुप्त के सैनिकों ने पकड़ लिया है तथा राक्षस कुसुमपुर की ओर गया हैं सुसिद्धार्थक तथा सिद्धार्थक वहां से निकल जाते हैं। एक पुरुष हाथ में रस्सी लेकर पर आता है। उसकी राक्षस से भेंट होती है। राक्षस उस पुरुष से उसका परिचय पूछता है, तब वह पुरुष बताता है कि आज चन्दनदास को अमात्यराक्षस के परिवारजों को रखने के आरोप में सूली पर चढ़ाया जा रहा है। उसकी मृत्यु को सहन न करने से उसका एक घनिष्ठिमित्र जिष्णुदास अग्नि में प्रवेश करने वाला है और वह जिष्णुदास मेरा परम मित्र है। मैं उसका प्राणविरह सहन नहीं कर पाऊँगा। तो जब तक जिष्णुदास अग्नि में प्रवेश नहीं करता, उसके पहले ही मैं रस्सी से लटककर आत्महत्या करने के लिये यहाँ आया हूँ। यह सुनकर राक्षस उसे बताता है कि मैं ही राक्षस हूँ। राक्षस उस पुरुष को जिश्णुदास को मरने से रोकने के लिये भेजता है और स्वयं चन्दनदास की रक्षा के लिये निकल जाता है।

सप्तम् अंक-दो चाण्डाल (जल्लाद) चन्दनदास को वध्यस्थान की ओर ले जाते है। चन्दनदास की पत्नी तथा पुत्र विलाप करते हैं। उन दोनों को सान्त्वना देता है। तभी राक्षस वहाँ उपस्थित होकर आत्मसपर्मण कर देता है। चाणक्य भी पर्दे के पीछे से वहाँ उपस्थित होता है और राक्षस का अभिवादन करता है। चाणक्य राक्षस से कहता है कि आपको चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने के

लिये यह सारा मेरी नीति का प्रयोग है। चन्द्रगुप्त मंच पर आकर राक्षस का अभिवादन करता है। राक्षस भी अन्ततः मित्ररक्षा के लिये चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार करता है। राक्षस की प्रार्थना पर मलयकेतु को उसके पिता का राज्य दे दिया जाता है। चन्दनदास मुख्यश्रेष्ठ बना दिया जाता है। चाणक्य अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने से शिखा बांध लेता है। अन्त में राक्षस के द्वारा भरतवाक्य कहने पर नाटक की समाप्ति हो जाती है।

1.4.5 प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

चाणक्य- मुद्राराक्षस के नायक चाणक्य हैं। यह श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं तथा अत्यन्त ही सादा जीवन व्यतीत करते हैं। वह पुरानी झोपड़ी में रहते हैं। ये चन्द्रगुप्त मौर्य के मन्त्री हैं तथा अपनी कुशलता राजनीतिज्ञता के बल पर इन्होंने राक्षस को वश में किया है। सम्पूर्ण नाटक का सूक्ष्मावलोकन करने पर चाणक्य की निम्नलिखित चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं-

1. दृढ़प्रतिज्ञ-चाणक्य अत्यन्त दृढ़निश्चयी हैं। ये एक बार जो मन में ठान लेते हैं वह कार्य करके ही दम लेते हैं। नन्द साम्राज्य को नष्ट करके मौर्य साम्राज्य को स्थापित करने के लिये वे यह प्रतिज्ञा करते हैं कि ''मैं अपनी शिखा तभी बाधूँगा, जब मौर्य साम्राज्य स्थापित हो जाएगा।''अपनी यह प्रतिज्ञा अन्ततः पूर्ण करते हैं। अमात्य राक्षस जैसा व्यक्ति भी चाणक्य के सामने हताश हो जाता है। राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाकर ही चाणक्य दम लेते हैं।

2. महान तेजस्वी तथा प्रचण्ड क्रोधी- चाणक्य बड़े ही तेजस्वी और महान् पुरुष थे। नन्द जैसे व्यक्ति जो कि ऐश्वर्य में कुबेर के समान थे तथा शक्ति में इन्द्र के समान थे, वह भी चाणक्य के तेज के सामने नहीं टिक पाये। वह प्रचण्ड क्रोधी थे। उनका या चन्द्रगुप्त का अनिष्ट करना अत्यन्त क्रुद्ध सिंह के मुख से जबरदस्ती तोड़कर दांत निकालने के समान भयंकर है चाणक्य ने यह घोषणा की है कि मेरे क्रोध के सामने कोई व्यक्ति टिक नहीं सकता। मेरी शक्ति से मुकाबला करने वाला व्यक्ति आग में गिरने वाले पतिंगे की तरह विनष्ट हो जाएगा-

सद्यः परात्मपरिणामविवेकमूढः
कः शालभेन विधिना लभतां विनाशम्।।-1/10

चाणक्य की शिखा नन्दकुल को डसने वाली नागिन है-

नन्दकुल कालभुजगीं.....शिखा मे ।।-1/9

3. अत्यन्त बुद्धिमान्- नन्द का विनाश तथा शूद्रापुत्र चन्दगुप्त को राजा बनाना-यह चाणक्य की ही बुद्धि का परिणाम है। अपनी बुद्धि के प्रयोग से बनाये गये जाल में वे राक्षस को इस तरह फंसते हैं कि राक्षस को बहार निकलने का एक ही रास्ता दिखाई देता है। वह है चन्दगुप्त के मन्त्रिपद का स्वीकार। चाणक्य ने अपनी चतुरता के बल से ही राक्षस के नाम से एक लेख लिखवाया तथा उस पर राक्षस की ही मुहर लगवायी। यह लेख भी राक्षस के प्रियमित्र चन्दनदास के द्वारा चाणक्य ने लिखवाया। भागुरायण को मलयकेतु का मित्र बनवाकर उसके द्वारा राक्षस तथा मलयकेतु के बीच कलह करावाया। यह सब चाणक्य की बुद्धिमत्ता का ही परिणाम है।

4. कार्यपुट- चाणक्य अत्यन्त कार्यकुशल हैं। किसे क्या काम नहीं सौंपना चाहिये? कौन दण्डनीय है तथा कौन पुरस्कारणीय है? इस बात में चाणक्य अत्यन्त निपुण हैं।

5. स्वाभिमानी-चाणक्य अत्यन्त स्वाभिमानी है। वह कोई भी बड़ा से बड़ा कार्य अकेले करने में समर्थ हैं। उनकी चुनौती है कि जिस कार्य को सैकड़ों सेनाएँ भी एक साथ नहीं कर सकतीं, उसे कार्य को चाणक्य अपनी बुद्धि के बल पर कर सकते हैं-

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्म।।-1/25

6. कुशल राजनीतिज्ञ-सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रकट होती है उसकी कुशलता राजनीतिज्ञता। वे बड़े ही कूटनीतिज्ञ थे। गुप्तचरों का जाल बिछाकर राक्षस के क्रियाकलापों को वे सदा जानते रहते थे। चाणक्य की राजनीति का वर्णन भागुरायण करता है-

अहो चित्राकार नियतिरिव नीतिर्नयविदः।-5/3

चाणक्य की गुप्त बातें स्वयं चन्द्रगुप्त भी नहीं जान पाता था। उनके द्वारा एक ही कार्य में प्रयुक्त अनेक गुप्तचर भी परस्पर एक-दूसरे को नहीं जानते थे। विषकन्या द्वारा पर्वतक की हत्या तथा राक्षस पर हत्या का आरोप लगवाना, मलयकेतु तथा राक्षस में विरोध उत्पन्न करना इत्यादि चाणक्य की कूटनीतिज्ञता के उदाहरण हैं।

7. गुणग्राही-चाणक्य गुणग्राही है। अमात्यराक्षस के सद्गुणों के कारण ही राक्षस उसे चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाना चाहते थे। चाणक्य का विरोधी राक्षस जैसा व्यक्ति भी उसकी प्रशंसा करता है। इस प्रकार मुद्राराक्षस के अनुशीलन से भारत के महान सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के मन्त्री महान् राजनीतिज्ञ चाणक्य की उपुर्यक्त विशेषताएँ स्पष्ट होती है।

राक्षस-अमात्यराक्षस 'मुद्राराक्षस' नाटक का प्रतिनायक है। इसका चरित्र एक 'आदर्शचरित्र' है। यह भी श्रोत्रिय ब्राह्मण है तथा नन्द का स्वामिभक्त मन्त्री हैं राक्षस इसका नाम है तथा अमात्य (मन्त्री) होने के कारण इसे 'अमात्यराक्षस' कहा जाता है। सम्पूर्ण नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपस्थिति रहता है। प्रतिनायक होने पर भी नाटक के अन्त में भरतवाक्य कहने का श्रेय राक्षस को ही प्राप्त है। उसका सारा जीवन संघर्ष से भरा हुआ है। वह चन्द्रगुप्त को नष्ट करने का प्रयत्न अन्त तक करता है, किन्तु चाणकय की कूटनीतियों के समक्ष उसे पराजय स्वीकार करनी पड़ती है। समस्त नाटक का आलोचना करने पर अमात्यराक्षस की निम्नलिखित चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं।

1. अत्यन्त स्वामिभक्त - अमात्यराक्षस अपने स्वामी नन्द का अत्यन्त भक्त है। नन्दकुल का विनाश करने वाले चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त से वह अन्त तक प्रतिशोध लेने का प्रयत्न करता है। स्वामी की आत्मा को सन्तुष्ट करने के लिए वह अपने परिवार की भी परवाह नहीं करता। स्वयं चाणक्य भी अमात्यराक्षस की स्वामिभक्ति की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-

भर्तुर्ये प्रलयऽपि पूर्वसुकृतासश्च निःसश्या
भक्त्या कार्यधुरां वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्त्वादृशाः।।-(1/14)

राक्षस में प्रज्ञा, पराक्रम तथा भक्ति-इन तीनों की त्रिवेणी हैं नन्दकुल के विनाशकों को समाप्त कर देने तक राक्षस ने सभी सुख सुविधाओं का परित्याग कर दिया था -

चिरात्प्रभूत्यार्यः परित्यक्तोचिशरीरसंस्कारः।

2. राजनीतिज्ञ - राक्षस कुशल राजनीति हैं, भले ही वह चाणक्य की तरह कूटनीतिज्ञता में निपुण नहीं, फिर भी चन्द्रगुप्त का नाश करने के लिये वह हर सम्भव प्रयास करता है। चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त के बीच कलह कराने के लिये भी वह स्तुति पाठकों को भेजता है। उसके गुप्तचर चन्द्रगुप्त पर नजर रखे रहते हैं। सारे प्रयास करने पर भी भाग्य उसका साथ नहीं देता।

3. अत्यन्त उदार तथा सरलहृदयी- राक्षस अत्यन्त सरलहृदय वाला है। अपनी सरलता के कारण ही वह चाणक्य भागुरायण आदि से धोखा खाता हैं वह सरलतावश भागुरायण को अपना हितैषी समझता है, किन्तु वास्तव में भागुरायण चाणक्य का गुप्तचर निकलता है। राक्षस अत्यन्त ही भावुक प्रवृत्ति का है। द्वितीय अंक में विराधगुप्त की अवस्था देखकर वह स्वयं भी रो पड़ता है। उसके पराजय का कारण उसका सरल हृदय है। चाणक्य से परास्त होने पर अन्ततः वह कहता है**'हन्त रिपुभिर्मे हृदयमपि स्वीकृतम्।।''**

चन्दनदास को बचाने के लिये वह अपने शरीर की भी परवाह न करके कुसुमपुर आ जाता है।

4. वीर तथा दृढ़निश्चयी- राक्षस शस्त्रविद्या में अत्यन्त निपुण है। उसने अकेले ही चन्द्रगुप्त की सेना और चाणक्य की बुद्धि दोनों को परेशान कर रखा था। यह बात भी स्वयं चाणक्य ने ही स्वीकार की है। वह नन्द के अमात्य प्रधान के साथ ही साथ उसका प्रधान सेनापति भी था। स्वयं राजा नन्द भी उसकी वीरता पर भरोसा रखते थे-

यत्रेशा मेघनीला चरति गजघटा राक्षसस्तत्र यायात्
एतत्पारिप्लवाम्भः प्लुति तुरगबलं वार्यताम् राक्षसेन।
पत्तीनां राक्षसोऽन्तं नयतु बलमिति प्रेशयन्मह्यमाज्ञाम्
अज्ञासीः प्रीतियोगात् स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्रम्।।

उसे अपनी तलवार पर पूरा भरोसा था। संसार के सभी कार्य वह तलवार के बल पर करने में समर्थ था-

निस्त्रिंवषोऽयं सजलजलदव्योमसाशमूर्ति-
र्युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण-6/19

राक्षस दृढ़निश्चयी है। वही अन्त तक चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त को परास्त करने का प्रयत्न करता रहता है।

5. शास्त्रज्ञाता-राक्षस शास्त्रज्ञाता है। उसे ज्योतिष आदि शास्त्रों का अच्छा ज्ञान है। वह कर्म तथा पौरूष की अपेक्षा भाग्य पर अधिक विश्वास करता है। अपनी पराजय का कारण वह भाग्य को ही ठहराता है। उसकी स्मरण शक्ति चाणक्य जैसी नहीं। उसने चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के पीछे अपने इतने अधिक गुप्तचर लगाये थे कि वह स्वयं ही नहीं जान पाता था कि किस गुप्तचर को किस कार्य में लगाया गया है। फिर भी सम्पूर्ण नाटक को देखने पर यह कहा जा सकता है कि राक्षस सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व से सम्पन्न व्यक्ति था।

चन्द्रगुप्त-'मुद्राराक्षस' नाटक का उपनायक चन्द्रगुप्त है। वह राजा नन्द के द्वारा एक शूद्रा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। वह बाल्यकाल से ही बड़ा मेधावी तथा प्रतिभावान् था। उसे राजा बनाने का श्रेय चाणक्य को ही है। सम्पूर्ण नाटक को देखने पर चन्द्रगुप्त की निम्नलिखित चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं-

1. सुयोग्य राजा- चन्द्रगुप्त अत्यन्त ही सुयोग्य तथा प्रजाप्रेमी राजा है। राक्षस को उसकी तेजस्विता का आभास उसके बचपन में ही हो गया था-

बाल एव लोकेऽस्मिन सम्भावितमहोदयः।-7/12

वह राजनीति में भी निपुण है तथा सभी राजकर्मों को जानता है। वह अत्यन्त वाक्पटु भी है। चाणक्य के साथ कृतककलह होने पर वह चाणक्य के प्रश्नों का उत्तर चतुरता के साथ देता है।

2. अत्यन्त विनम्र- चन्द्रगुप्त बड़ा ही विनम्र स्वभाव का है। चाणक्य की सभी आज्ञाओं को वह नम्रता के साथ स्वीकार करता है, जब चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को नकली झगड़ा करने के लिये कहा था, तब चन्द्रगुप्त ने किसी तरह चाणक्य की आज्ञा स्वीकार की, परन्तु चाणक्य के साथ झगड़ा करना उसे पाप करने की तरह लगता था। अन्त में जब चन्द्रगुप्त राक्षस से मिलता है, तो उसे भी विनम्रतापूर्वक अभिवादन करता है।

3. परम गुरुभक्त - चन्द्रगुप्त अपने गुरु चाणक्य का अत्यन्त आदर करता है। गुरु की आज्ञा से वह अपने गुरु से कृतककलह करना भी स्वीकार कर लेता है।

4. उदासीन प्रवृत्ति वाला- चन्द्रगुप्त के राज्य का सारा भार गुरु चाणक्य के ऊपर ही है। इसलिये वह स्वयं राज्य के प्रति उदासीन रहता है। राक्षस भी कहता है कि चन्द्रगुप्त सचिवायत्त सिद्धिवाला है। अर्थात् मन्त्री के ऊपर अपने राज्य का सारा भार रखकर निश्चिन्त रहता है। इसी कारण चन्द्रगुप्त को राज्यकर्म अत्यन्त कष्टदायक प्रतीत होता है-

''राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्।''

5. वीर तथा पराक्रमी-चन्द्रगुप्त शूरवीर तथा पराक्रमी योद्ध है। बिना युद्ध के शत्रु पर विजय प्राप्त करना चन्द्रगुप्त के लिये लज्जा की बात है-

''विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति लज्जित एवास्मि।''वह बचपन से ही वीर है।

6. उत्सवप्रिय - चन्द्रगुप्त प्रकृति प्रेमी तथा उत्सवप्रिय राजा है। कौमुदीमहोत्सव की शोभा देखने की उसे बड़ी ही उत्कण्ठा है। किन्तु चाणक्य के द्वारा कौमुदी महोत्सव रोक देने से चन्द्रगुप्त को निराश होना पड़ता है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त में उपर्युक्त विशेषताएं स्पष्ट होती हैं। चाणक्य, जो कि सम्पूर्ण नाटक में चन्द्रगुप्त को वृशत कहता है, अन्ततः चन्द्रगुप्त को ''भी राजन् चन्द्रगुप्त।'' कहकर सम्बोधित करता है।

मलयकेतु- मलयकेतु मुद्राराक्षस का उपप्रतिनायक है। यह पर्वतेश्वर का पुत्र है। मुद्राराक्षस में मलयकेतु का चरित्र विशेष प्रभावशाली नहीं दिखाया गया है। तथापि इसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. स्वाभिमानी-मलयकेतु अत्यन्त स्वाभिमानी था। अपने पिता के वध का बदला लेने के लिये वह हर सम्भव प्रयास करता है। इसी कारण वह राक्षस की सहायता लेकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने का निश्चय करता है।

2. वीर तथा पराक्रमी- मलयकेतु वीर तथा पराक्रमी है। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं पिता पर्वतेश्वर के श्राद्वादि तभी करूंगा, जब शत्रुओं का वध हो जायेगा। शत्रुओं का नाश न होने पर उसे अपना पौरुष व्यर्थ प्रतीत होता है। वह आत्मग्लानि से भर जाता है। वह शीघ्रातिशीघ्र कुसुमपुर पर आक्रमण करना चाहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मलयकेतु वीर योद्धा था।

3. शंकालु प्रवृत्ति वाला-मलयकेतु अत्यन्त शंकालु स्वभाव वाला था। वह भावावेश में आकर कुछ भी कर डालता था। अपन परम हितैषी अमात्य राक्षस पर वह संदेह करता था, जबकि उसके शत्रु भागुरायण, जो कि मलयकेतु का मित्र बना हुआ था, उसकी बातें मलयकेतु को सत्य प्रतीत होती हैं। वह राक्षस की निष्कपट बातों तथा आचरणों को भी कपटपूर्ण समझने लगता है।

4. विवेकहीन-मलयकेतु विवेकशून्य है। भागुरायण उसके मन में राक्षस में प्रति दुर्भावना भर देता है, जिससे वह राक्षस को ही अपना शत्रु मानने लगता है। वह प्रसादी तथा अहंकारी है। वह बिना विचार किये काम करता है। वह यह मानकर अत्यन्त खुश होता है कि वह राक्षस के अधीन नहीं है। वह अत्याश्चर्यजनक रूप से विवेकहीन है। उसे यह भी समझ में नहीं आता कि राक्षस अपने शत्रु चन्द्रगुप्त से कैसे सन्धि कर लेगा? अपने ही हितैषी कौलूत चित्रवर्मा आदि राजालोगों को वह मरवा डालता हैं अपनी विवेकहीनता के कारण ही वह अन्ततः चन्द्रगुप्त का बन्दी बन जाता है। इस प्रकार मुद्राराक्षस के उपप्रतिनायक मलयकेतु के चरित्र में उपुर्यक्त विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

चन्द्रनदास-मुद्राराक्षस में चन्दनदास का चरित्र अत्यन्त प्रभावशाली, प्रशंसनीय तथा परोपकार से परिपूर्ण है। यह मणिकारों का राजा है। कुसुमपुर का यह जाना माना धनिक है। यह अमात्य राक्षस का मित्र है। मुद्राराक्षस को देखने पर चन्दनदास के चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. राक्षस का परम मित्र तथा स्नेही-चन्दनदास अमात्यराक्षस का परम मित्र है। अमात्यराक्षस पर संकट आने पर वह अपने परिवारजनों को चन्दनदास के ही घर में सुरक्षित रख देता है। चन्दनदास भी राक्षस के परिवारजनों को अपने घर से किसी सुरक्षित जगह पर भेज देता है।

2. निर्भय-चन्दनदास अत्यन्त निर्भय है। वह चाणक्य के द्वारा कठोर दण्ड देने के भय से भी भयभीत नहीं होता और स्पष्ट उत्तर दे देता है कि यदि राक्षस के परिवारजन मेरे घर में होते, तो भी मैं उन्हें समर्पित नहीं करता फिर जब राक्षस परिवारजन मेरे यहाँ नहीं हैं तो मैं उन्हें कहाँ से दूँगा ?

3. अत्यन्त त्यागी-चन्दनदास मित्र के परिवारजनों की रक्षा के लिये अपने प्राण देने के लिये भी तैयार हो जाता है। चाणक्य स्वयं उसकी प्रशंसा करते हुए कहता है कि-

सुलभेश्वर्थलाभेषु परसंवेदने जनः।

क इदं दुष्कर कुर्यादिदानीं शिविना बिना ।।-(1/23)

अमात्यराक्षस भी उसकी तुलना राजा शिवि के साथ करता है। चन्दनदास अपना आदर्श अपनी पत्नी को बताता है-**''आर्ये! अयं मित्रकार्येण में विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण तदलं विशादेन।**''इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चन्दनदास बलिदान की मूर्ति है। मित्र के कार्य के लिये वह सूली पर चढ़ने से भी डरता। इसीलिये अन्त में चाणक्य उसे व्यापारिक संघ का प्रधान बना देता है।

1.4 मुद्राराक्षस का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक परिचय

मुद्राराक्षस अपने ढंग का अनुपम नाटक है जिसमें लेखक ने परम्परागत नाट्य-रूढ़ियों का परित्याग करके नवीन मार्ग का प्रवर्तन किया है। लेखक नाट्यशास्त्र का महापण्डित होकर भी अपने मौलिक गुण के कारण एक शक्तिशाली नवीन नाट्य-पद्धति पर चलता है जिसका अनुकरण तक लोग नहीं कर सके। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का व्यावहारिक रूप देकर विशाखदत्त ने इस नाटक की सर्जना की है। इसमें नाट्य-सुलभ प्रेम-कथा का परित्याग कर कूटनीति-विषयक वस्तु-विन्यास किया गया है, राजा को नायक न बनाकर निरीह ब्राह्मण चाणक्य को नायक बनाया गया है, नायिका को स्थान न देकर प्रतीकात्मक नायिका चाणक्य की बुद्धि का प्रयोग है, वीररस के अभिनव रूप कूटनीति-वीर का निवेश करके विदूषकादि पात्रों के बहिष्कार के अतिरिक्त हास्य या श्रृंगार रस का स्वल्प-प्रयोग भी नहीं है। यथार्थ के कठोर धरातल पर कथानक लुढ़कता है, रक्तपात के बिना ही केवल बुद्धि का खेल दिखाकर नायक की विजय वर्णित है - ऐसे अभिनव वीररस-प्रधान नाटक के रूप में मुद्राराक्षस का संस्कृत नाट्य-जगत में अपूर्व स्थान है।

विशाखादत्त ने इस नाटक को घटना-प्रधान बनाया है, चरित्रमूलक नहीं। सभी पात्र अपनी-अपनी विशिष्टताओं के साथ घटनाओं को आगे बढ़ाने में सन्नद्ध हैं। सभी घटनाओं को मुख्य फल के लाभ की दिशा में त्वरित गति से प्रेरित किया गया है। एक भी अप्रासंगिक या अनावश्यक कथांश या वाक्य तक इसके विकास-क्रम में प्रयुक्त नहीं है। इस प्रकार पूरा नाटक कसा हुआ है। घटनाओं के पर्त जैसे-जैसे खुलते हैं, कुतूहल और उत्सुकता का शमन होता जाता है किन्तु उत्सुकता के भी नये आयाम बनते हैं जिनका निवारण क्रमशः होता रहता है। इसीलिए कार्यान्विति की दृष्टि से इसके घटना-चक्र की महत्ता है।

राजनीतिक-विषयक नाटक में रहस्य-रोमांच का समावेश करते हुए लेखक ने अपनी अद्भूत नाट्यकाल के कारण इसे श्रृंगार -प्रधान नाटकों के समान रोचक बनाया है। नाटक की पृष्ठभूमि की पूर्ति के लिए प्रथम अंक में चाणक्य का लम्बा स्वागत भाषण (1/11 के पूर्व से 1/16 तक) एवं द्वितीय अंक में खण्ड-खण्ड करके विराधगुप्त (राक्षस के गुप्तचर का प्रतिवेदन) (2/13 के पूर्व से 2/16 के पूर्व तक) प्रस्तुत किये गये हैं। चाणक्य के भाशण में कोई संवाद नहीं, पूरा भाषण एकांश (न्दपज) है जबकि विराधगुप्त के प्रतिवेदन पर राक्षस की प्रतिक्रियाएँ दिखायी गयी हैं। कूटनीति में प्रवीण दोनों मन्त्रियों (चाणक्य तथा राक्षस) की नीतियों के घात-प्रतिघात की घटनाएँ

नाटक को सार्थक तथा गतिशील बनाती हैं। इनके स्वागत-भाषणों से सामाजिक को इनका वास्तविक कार्य समझने में सुविधा होती है।

विशाखदत्त ने राक्षस के मुख से नाटक-कर्ता और राजनीति में खेलनेवाले की समानता प्रकट करायी है- कर्ता व नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा (4/3 अन्तिम चरण)। दोनों को समान रूप से क्लेशका अनुभव करना पड़ता है; दोनों ही संक्षिप्त कार्योपक्षेप (आरम्भ) करके उस कार्य का विस्तार चाहते हैं, गर्भित बीजों के अत्यन्त गहन और गूढ़ फल को उद्भिन्न करते हैं, बुद्धि का प्रयोग करके विमर्श (कर्तव्याकर्तव्य का विष्लेशण, विमर्ष सन्धि का निर्माण) करते हैं एवं फैले हुए कार्य-समूह का उपसंहार भी कर लेते हैं। इस प्रकार नाट्य-रचना और राजनीतिक दाव-पेंच समान ही है, जब विधि-सम्मत (शास्त्रीय) नाट्य-रचना कठिन है, तब स्वतन्त्र एवं प्रगतिवादी रचना की कठिनाई का क्या कहना? लेखक ने इतिवृत्त-निर्माण में तथा उसके विकास में पूरी स्वाधीनता दिखायी है।

मुद्राराक्षस में कुल 29 पात्र है, एकमात्र स्त्रीपात्र चन्द्रनदास की पत्नी है जो सप्तम अंक में चन्दनदास के मृत्युदण्ड-दृश्य में करूण-रस का उद्भव करती है। शेष सभी पात्र अपनी-अपनी विशिष्टता रखते हुए भी चाणक्य के हाथों की कठपुतली हैं। इन दोनों पात्रों के संघर्ष का ही प्रतिफल पूरे नाटक में हुआ है। चाणक्य प्रखर कूटनीतिज्ञ, शाठ्यनीति का प्रयोक्ता, निरन्तर सावधान, कर्मठ पुरुषार्थवादी, राजनीति के खेलों (दाँव-पेंच, जोड़-तोड़) में परम प्रवीण, बहुत बड़ी परीक्षा के बाद किसी पर विश्वास करने वाला, दम्भ किन्तु अत्यन्त साधारण स्तर का जीवन जीने वाला अमात्य है; उसमें राक्षस के गुणों को पहचानने की क्षमता है इसीलिए स्वयं चन्द्रगुप्त का अमात्य न बनकर राक्षस को उस पद पर स्थापित करने में कूटनीति का प्रयोग करता है। वह प्रधान पात्र या नायक है, उसे ही अपनी नीतियों के प्रयोग का फल मिलता है। दूसरी ओर राक्षस कूटनीति होते हुए भी ऋजुनीति का प्रयोक्त है। वह भाग्यवादी, कपटी मित्रों पर भी विश्वास करनेवाला, अपने घर के भेदियों को न समझने वाला, नीति का प्रयोग करके निश्चिन्त हो जाने वाला, उदार मित्र के लिए त्याग करने वाला एवं चाणक्य के अनुसार प्रज्ञा-विक्रम-भक्ति का समुदित रूप है।

ये दोनों अमात्य क्रमश: चन्द्रगुप्त ओर मलयकेतु को आधार बनाकर नीति-कौशल दिखाते हैं। ये दोनों पात्र परस्पर विरोधी चरित्र के हैं। चन्द्रगुप्त योग्य राजा है किन्तु चाणक्य के हाथों में समर्पित है। मलयकेतु स्वतन्त्र बुद्धि वाला, पुरुषार्थी किन्तु मूर्ख और उद्दण्ड है। इसीलिए भावुक राक्षस उससे दूर चला जाता है। बुद्धिवादी चाणक्य के हाथों में खेलने वाले चन्द्रगुप्त का राज्य शक्तित्रय-सम्पन्न होकर स्थिर बन जाता है। शकटदास और चन्दनदास राक्षस के विश्वसनीय मित्र हैं, मित्र के लिए सर्वस्व त्याग करते हैं।

इस नाटक में कूटनीति-वीररस है जो अन्य किसी संस्कृत नाटक में नहीं है, शास्त्रों में विवेचित तक नहीं हुआ है। 'मुद्राराक्षस की वीरसाभिव्यक्ति में समसामयिक राजनीतिक जीवन की उन्नतिशीलता के लिए उत्सुक एक कर्मठ राजनीतिक नेतृत्व की अदम्य आत्मोसर्ग-भावना और उत्साह की प्रबल प्रेरणा का हाथ है और यही वह रहस्य है कि संस्कृत नाटककार किसी अन्य

मुद्राराक्षस की रचना न कर सके। इस नाटक में राष्ट्रकी सुरक्षा के लिए कर्तव्य-भावना का ऐसा प्राबल्य है कि उसके समक्ष रति (प्रेम) आदि के भाव शून्यवत् हैं। इसीलिए इसमें सभी पात्र अपूर्व उत्साह से भरे हैं, अपने-अपने कार्यों के प्रति तन्मयता से समर्पित हैं। जय-पराजय की भावना से ऊपर यह कर्तव्यपालन का नाटक है जो अपने प्रयोजन में पूर्णतः सफल है।

नायक का प्रश्न-मुद्राराक्षस के नायक को लेकर प्रायः तीन मत प्रचलित हैं जिनमें राक्षस, चन्द्रगुप्त और चाणक्य को नायक कहा गया है। सामान्यतः नायक के विषय में परम्परा से यही कहा गया है-

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो व गुणवान्नायको मतः।। (साहित्यदर्पण)

इस सिद्धान्त के अनुसार राजकुल में उत्पन्न व्यक्ति ही नायक की कोटि में आता है। आधुनिक लोग फलप्राप्ति करने वाले को नायक बताते हैं तो तर्क की दृष्टि से नाटक में प्रधान भूमिका धारण करने वाला नायक होता है। इसीलिए तीन पात्रों का नायकत्व विभिन्न मतों का आधार है।

जहाँ तक राक्षस के नायकत्व का प्रश्न है वह उसके मन्त्रिपद प्राप्त करने अर्थात् फललाभ की घटना पर आश्रित है, जो राक्षस भूतपूर्व राजा (धननन्द) का अमात्य था, वह इस नाटक के अन्त में चन्द्रगुप्त का अमात्य बन जाता है-इसलिए मुख्य फल का अधिकारी होने से नायक हुआ। किन्तु इस पर आक्षेप होता है कि जिस फल को राक्षस प्राप्त करता है, उसके लिए न तो उसे स्पृहा है ओर न वह इसके लिए चेष्टाशील ही है। वस्तुतः चाणक्य की महानुभावता ओर गुणग्राहकता का यह परिणाम है कि राक्षस पर यह फल (मन्त्रिपद-लाभ) आरोपित होता है। अतः फललाभ का तर्क उस पर असंगत है। फललाभ के प्रति ईच्छा या चेष्टा आवश्यक है। राक्षस जन्म से ब्राह्मण है, क्षत्रिय नहीं अर्थात् राजवंश का नहीं।

चन्द्रगुप्त का नायकतव कुछ अधिक महत्त्व रखता है क्योंकि वह नन्द का पुत्र है, राजवंश का है। उसमें राज्य की दो शक्तियाँ हैं-प्रभुशक्ति और उत्साह-शक्ति। उसे तीसरी शक्ति (मन्त्रशक्ति)की प्राप्ति चाणक्य के बुद्धिबल से नाटक के अन्त में हो जाती है। राजकुल से सम्बन्ध एवं फललाभ की दृष्टि से उसे नायक कहा गया है। किन्तु यह मत भी दोषपूर्ण है। चन्द्रगुप्त राजा अवश्य है किन्तु इस नाटक में उसे राजकुलोत्पन्न नहीं माना गया है। चाणक्य तो उसे सदा 'वृशल' (शूद्र) कहकर सम्बोधित करता है। वह कुलीन नहीं, अपितु कुलहीन है। राक्षस राजलक्ष्मी को कोसते हुए कहा है-

पृथिव्यां कि दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः?
पति पापे, मौर्य यदसि कुलहीनं वृतवती ? (मुद्रा०2/7 पृ०)

अतः परम्परावादियों का यह मत खण्डित हो जाता है कि वह कुलीन था। दूसरी बात यह है कि उसका चरित्र इस नाटक में विकसित नहीं हुआ है। वह एक गौण ही है केवल तृतीय और सप्तम अंकों में वह मंच पर आता है। ऐसी स्थिति में चाणक्य को ही नायक कहा जा सकता है, यही नाट्यकार की लालसा है। उसने इस राजनीतिक नाटक की रचना में रूढ़िगस्त एवं जड़ीभूत नाट्य-परम्परा को नहीं माना, स्वयं नाट्यशास्त्र का वह पण्डित जो था, 'पथि यदि कुपथे वा

वर्तयामः स पन्थाः' का निर्माता था। लेखक नाटक के आरम्भ से ही चाणक्य का पक्षधर है, सभी पात्रों के ऊपर वह उसे दिखाता है। मुद्राराक्षस से इतिवृत्त की विकास ही चाणक्य के पक्ष में और विपक्ष में होने वाले घटना-क्रमों के प्रवर्तन के रूप में होता हैः क्रमशः विपक्ष सिकुड़ता जाता है और पक्ष उस पर भारी पड़ने लगता । 'प्रतिहत-परपक्षा आर्यचाणक्यानीतिः' (6/1) कहकर नाटककार ने भी इसका समर्थन किया है। विशाखदत्त की नाट्यशाला का अनुपम रत्न चाणक्य ही है जो सम्पूर्ण कथानक को और तद्नुसार पात्रों को भी अपनी मुट्ठी में रखता है। लेखक ने नायिका तो नहीं रखीं, किन्तु कूटनीति-प्रधान नाटक में प्रीतकात्मक बुद्धि को ही चाणक्य की अनवरत सहचरी के रूप में प्रस्तुत किया है। चाणक्य कहता है कि मेरे पास से सभी लोग चले जायें किन्तु नन्दों के उन्मूलन में शक्ति का प्रदर्शन कर चुकी केवल मेरी बुद्धि ही पास रहे तो सब देख लूँगा-

ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठिन्ति भवन्तु तेऽपि भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।
एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।।

विशाखदत्त ने नाट्य के अनेक उपादानों में स्वाधीनता दिखायी है तो नायक की रूढ़ि के भश् में भी उनकी स्वाधीनता आश्चर्यजनक नहीं है। फलप्राप्ति की बात उठायें तो राक्षस के अमात्य बनने से न स्वयं राक्षस को वैसी प्रसन्नता होती है और न चन्द्रगुप्त की ही, जैसी प्रसन्नता अपनी प्रति (मौर्यवंश का सर्वतोभावेन प्रतिष्ठा न) पूर्ण करने से चाणक्य को होती है। चाणक्य ही इस कार्य के लिए उत्सुक था और नाटक के आरम्भ से ही तद्विशयक प्रयत्नों में लगा था। आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम-इन पाँच अवस्थाओं की दृष्टि से विचार करें तो सर्वत्र चाणक्य ही मिलेगा। राक्षस के गुणों के पारखी भी वही है, जो राक्षस चन्द्रगुप्त की हत्या और चाणक्य के निर्वासन के प्रति कृतसंकल्प था, उसका हृदय-परिवर्तन करके चन्द्रगुप्त की शरण में आने को विवश करना चाणक्य की बुद्धि के कौशल का अद्भुत चमत्कार था। स्वयं राजसत्ता का सुख छोड़कर राष्ट्र को सामर्थ्यवान् बनाने की दुर्लभ भावना से वह आद्यन्त भरा हुआ है। निःस्पृह ब्राह्मण को नायक बनाकर विशाखदत्त ने नायक की इस निरुक्ति को चरितार्थ किया है- नयति घटनाचक्रं फलप्राप्तिपर्यन्त इति नायकः। अपनी सहचरी बुद्धि की क्षमता पर उसे पूर्ण विश्वास है कि राक्षस का निग्रह वह आरण्यक गज के समान चन्द्रगुप्त के कार्य के लिए कर लेगा-

बुद्ध्या निगृह्य वृशलस्य कृते क्रियाया-
मारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि। (1/27उ०)

इस प्रकार मुद्राराक्षस का नायक चाणक्य ही है जो अपने विचित्र रहस्यमय व्यक्तित्व से पूरे नाटक के घटनाक्रम पर छाया रहता है।

1.5 सारांश

मुद्राराक्षस सात अंको का राजनीतिक नाटक है। मुद्रा (राक्षस की अँगूठी) के द्वारा राक्षस को वश में करने का मुख्य कथानक होने से इस 'मुद्राराक्षस' (मुद्रया गृहीतो राक्षसों मुद्राराक्षसः, तमधिकृत्य कृत नाटकं मुद्राराक्षसम्) कहते हैं। कूटनीति-विशारद चाणक्य (कौटिल्य) नन्दवंश का नाश, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, करके मौर्यवंश के तरुण चन्द्रगुप्त को राजा बना चुका है। अपनी कूटनीति के बल पर नन्दवंश के स्वामिभक्त अमात्य राक्षस को वश में करके वह चन्दगुप्त को मन्त्री बनने के लिए विवश कर देता है। इस कार्य में चाणक्य की गुप्तचर व्यवस्था तथा राक्षस की मुद्रा से अंकित एक कूटलेख की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। राक्षस की ऋजुनीति एवं कौटिल्य की शाठ्यनीति के परस्पर संघर्षों से यह नाटक भरा है जिसमें शाठ्यनीति की विजय होती है। इस इकाई के माध्यम से विशाखदत्त के मुद्राराक्षस एवं अन्य ग्रन्थों की सहायता से उनके जीवन पर प्रकाश डाला गया है उनकेक कृतित्त्व मुद्राराक्षस से साहित्यिक एवं ऐतिहासिक स्वास्थ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसकी सहायता से आप विशाखदत्त एवं उनके द्वारा रचित मुद्राराक्षस के विषय में इस इकाई के अध्ययन के बाद जान गये होंगे।

बोध प्रश्न

(अ) विशाखदत्त के पिता का नाम क्या था ?

(क) अन्नभट्ट

(ख) भास्करदत्त या पृथु

(ग) विभ

(घ) भानुदत्त

(ख) मुद्राराक्षस कितने अंकों में विभक्त है?

(क) 5

(ख) 10

(ग) 7

(घ) 12

(स) नायिका रहित नाटक का नाम बताइये

(क) हर्षचरित

(ख) वासवदत्ता

(ग) अभिज्ञानशाकुन्तल

(घ) मुद्राराक्षस

निम्न में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) विशाखदत्त का समय ---------- माना गया है।

(ख) मुद्राराक्षस के नायक का नाम.....है।

(ग) .....के गुरु का नाम चाणक्य है।

3. निम्न प्रश्नों में सही के सामने (√) तथा गलत के सामने (×) चिन्ह लगायें।

(क) राक्षस ब्राह्मण वर्ण का है। ( )

(ख) चाणक्य ने शक वंश का नाशकिया ( )

(ग) इस नाटक में वीर रस का प्रयोग ( )

1.6 शब्दावली

अभिनेता	-अभिनय करने वाला
नायक	-प्रमुख पात्र
अप्रासंगिक	-प्रसंगरहित
प्रयुक्त-प्रयोग	किया हुआ
प्रविण	-निपुण
विश्रुत	-भूलने योग्य नहीं

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.

अ (ख)

ब (ग)

स (घ)

2.

(क) 400 से 450ई॰

(ख) चाणक्य

(ग) चन्द्रगुप्त

3.

(क) (√)

(ख) (ग)

(ग) (√)

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा (ऋषि)

(2) मुद्राराक्षस नाटक-महाकवि विशाखदत्त

(3) संस्कृत साहित्य का वृहद इतिहास-पं॰बलदेव उपाध्याय

1.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

(1) संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा (ऋषि)

(2) मुद्राराक्षस नाटक-महाकवि विशाखदत्त

(3) संस्कृत साहित्य का वृहद इतिहास-पं॰बलदेव उपाध्याय

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) मुद्राराक्षस का कथासार प्रस्तुत कीजिए।

(2) मुद्राराक्षस के आधार पर नायक चाणक्य का चरित्र चित्रण प्रस्तुत करें।

इकाई - 2. भर्तृहरि जीवन परिचय एवं शतकत्रय का विस्तृत विवेचन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भर्तृहरि: जीवन परिचय एवं कृतियाँ
    2.3.1 भर्तृहरि का जीवन परिचय
    2.3.2 भर्तृहरि की कृतियाँ
2.4 भर्तृहरि द्वारा रचित शतकत्रय का विस्तृत विवेचन
    2.4.1 नीतिशतक
    2.4.2 श्रृंगार शतक
    2.4.3 वैराग्य शतक
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने विशाखदत्त का परिचय प्राप्त किया। इस इकाई में आप भर्तृहरि के जीवन वृत्त का अध्ययन करेंगे कि यह राजा विक्रमादित्य के बड़े भाई थे किन्तु इनके सामाजिक विकास का इतिहास आज भी किंवदंतियों तथा लोक कथाओं और उसकी मान्यताओं के माध्यम से ही आम जनमानस के सामने उभर कर आता है।

जाति के आधार पर जो कि प्राचीन वर्ण व्यवस्था से सम्बद्ध है के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि भर्तृहरि के पिता गन्धर्व जाति के थे, उनका नाम वीरसेन था। इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वीरसेन की चार सन्ताने थीं जिनमें भर्तृहरि, विक्रमादित्य, सुभट्टवीर्य एवं मेनावती का उल्लेख मिलता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भर्तृहरि के विषय में जान पायेंगे तथा उनके कर्तृत्व का वर्णन कर सकेगे।

2.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के माध्यम से छात्र इस विख्यात कवि का परिचय प्राप्त कर सकेगे।
- इसके द्वारा छात्रों को शतकत्रय का भी ज्ञान सरलता पूर्वक हो सकेगा।
- इस इकाई के माध्यम से छात्रों को नीतिपरक बातों को सहज रूप से समझाया जा सकता है।

2.3 राजा भर्तृहरि का सामाजिक जीवन परिचय

व्यक्ति विशेष के साथ यह कम ही दिखलाई पड़ता है कि उसमें सरस्वती और लक्ष्मी का वास साथ-साथ हो। ऐसा इसलिए माना जाता है कि हिन्दू धर्म दर्शन में अनेक स्थानों पर इनमें आपस में वैमनस्यता का उल्लेख मिलता है। इस सन्दर्भ में तो इन्हें (सरस्वती और लक्ष्मी) को सौत माता तक की उपाधि प्रदान की जाती है। इस आधार पर दोनों माताओं का साथ रहना निश्चित रूप से अद्भुत संयोग ही माना जाता है। स्वभावगत विश्लेषण भिन्न होने का एक प्रमुख कारण यह भी कहा जाता है कि एक बुद्धि तथा दूसरे को वैभव के प्रतीक के रूप में उजागर कर विद्वान दोनों को अलग ही रखते हैं। सामाजिक जीवन में भी यह पाया जाता है कि सम्पन्न व्यक्ति, सेठ, साहूकार राजा महाराजा विद्वान नहीं होते अपितु व्यवस्था को चलाने के लिए हर क्षेत्र विशेष के विद्वानों का एक पुंज अपने साथ रखते हैं जबकि इसके विपरीत कवि, लेखक, कलाकार, गायक, शिल्पकार, विद्वान धन से विहीन पाये जाते हैं।

यहॉ इस संयोग का सीधा प्रभाव व्यक्ति पर पड़ने से तात्पर्य है कि वह व्यक्ति विद्वान भी होगा और सम्पन्न भी होगा। वैश्विक इतिहास को यदि हम छोड़ दे और भारतीय इतिहास को देखें ऐसे अनेक राजा महाराजाओं का उल्लेख मिलेगा जो विद्वान और सम्पन्न थे किन्तु यह गिनती के ही मिलेगे। राजा भर्तृहरि ऐसे ही पूर्ण प्रकृति पुरूषों की संज्ञा में आते हैं जिनपर लक्ष्मी और सरस्वती की समान कृपा थी। यह संस्कृत के प्रकाण्ड़ विद्वान थे साथ ही उनकी प्रसंशा एक

प्रसिद्ध कवि और परिपूर्ण शास्त्री के रूप में की जाती है। भर्तृहरि एक विशाल साम्राज्य के शासक थे जिसकी राजधानी उज्जयिनि भी जिसे वर्तमान में उज्जैन के नाम से जाना जाता है। मालवा राज्य पर राजा भर्तृहरि का शासन था जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। राज्य और शासन व्यवस्था पर राजा भर्तृहरि का ध्यान समान रूप से था। भर्तृहरि के छोटे भाई राजा विक्रमादित्य थे। यह नाम उनकी प्रसिद्धि के पश्चात् ही प्राप्त हुआ जबकि इस नाम से पूर्व उनको विक्रम के नाम से जाना जाता था। विक्रम के विषय में ऐसा विचार था कि वह विद्वान, न्यायप्रिय, धर्मात्मा राजनीति के ज्ञाता और प्रतिभाशाली तथा प्रभावशाली राजा थे। यही कारण था कि राजा भर्तृहरि ने इनको अपना प्रधानमंत्री बनाया। दोनों भाईयों के मध्य प्यार और सर्मपण की मिसाल मिलती रही है। ऐसा कहा जाता है कि ऐसा प्रेम राजा रामचन्द्र और लक्ष्मण जैसा ही था। विश्वास शब्द इन दोनों से ही आरम्भ होता था। भर्तृहरि विक्रम से पुत्रवत् स्नेह करते थे और विक्रम राजा भर्तृहरि से पितावत श्रद्धा और सम्मान रखते थे।

राजा भर्तृहरि ने दो विवाह किये थे परन्तु इन दोनों विवाहों के पश्चात् भी आपने पिंगला नाम की राजकुमारी से विवाह किया। पिंगला अप्सराओं की भांति सम्पूर्ण सौन्दर्य को समेटे हुए थीं। असाधारण सौन्दर्य की धनी पिंगला पर राजा भर्तृहरि इस प्रकार से मोहित हुए कि वह विद्या, विवेक, संयम को त्याग कर दास स्वरूप जीवन व्यतीत करने लगें। पिंगला यद्यपि राजा के समक्ष तो पतिव्रता की मूर्ति स्वरूप थी किन्तु उनके मन में घुड़साल का दारोगा बसे थे। वह घुड़साल के दरोगा की पूजा मन में करती थीं, जबकि घुड़साल का दरोगा नगर की वेश्या पर मुग्ध था। राजा भर्तृहरि के राज्य में एक निर्धन ब्राह्मण रहता था जो ईश्वर की अराधना में लीन रहता था एक दिन साक्षात् ईश्वर ने दर्शन देकर कहा कि हे! राजन मैं तुमको एक फल देता हूँ जो तुम्हें निरोगी और चिर आयु रखेगा। वह ब्राह्मण फल लेकर राजा के पास आया और राजा ने उसको उपहार स्वरूप धन देकर वह फल ले लिया और उस फल को पिंगला को दे दिया कि इससे तुम सदैव सुन्दर और युवा बनी रहो किन्तु पिंगला ने वह फल घुड़साल के दरोगा को दे दिया दरोगा ने वह फल वेश्या को दिया और वेश्या ने वह फल पुनः राजा को दिया और सारी सच्चाई राजा के सम्मुख आ गयी। राजा भर्तृहरि इससे अत्यन्त दुःखी हुए और सारा राज-पाठ अपने छोटे-भाई को देकर स्वयं जंगल की ओर चले गये।

2.3.2 भर्तृहरि की कृतियाँ

भर्तृहरि संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वानों में गिने जाते थे। उनकी यह विद्धता उनके द्वारा रचित अनेक पुस्तकों, ग्रन्थों से ही प्राप्त होता है। भर्तृहरि को जो भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई उनमें नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक का उल्लेख प्रमुखता से मिलता है। आपके तीनों शतकों का विश्लेषण वर्गीकरण के आधार पर निम्न प्रकार से किया जाता है।

नीतिशतक :- यह सर्वविदित रूप में प्राप्त होता है कि भर्तृहरि उज्जयिनी के राजा थे। इनकी राज व्यवस्था तथा नीतियों से प्रजा, जनता एवं पदाधिकारी सभी लाभान्वित तथा सुखी होने का अनुभव व्यतीत करते हैं। भर्तृहरि की विद्वता पर किसी प्रकार का संशय किया ही नहीं जा सकता था। आपने नीतिशतक के अन्तर्गत व्यवस्था संचालन की प्रथम इकाई मानव का चयन

किया। वह उसके व्यवहार का सूक्ष्म अध्ययन यह प्रकट करना चाहते थे कि जैसा व्यक्ति वैसा व्यवहार तथा इन दोनों के अनुरूप वैसी नीति का क्रियान्वयन सम्मिलित होना चाहिए। भर्तृहरि ने नीतिशतक में सर्वप्रथम सृष्टि के विभाजक नियामक स्त्री पुरूष को मोहने के लिए बनायी गयी है। वह उनके व्यवहार का चित्रण करते हुए कहते हैं कि वास्तव में वह बात किसी से करती है हॉव-भाव किसी और को दिखाती हैं जबकि विचार किसी अन्य के प्रति रखती हैं। विद्याधन को सर्वोत्तम धन के रूप में स्वीकारते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि विद्याधन चुराने की वस्तु नहीं है क्योंकि यह चुराने वाले व्यक्ति को दिखाई नहीं देती है । विद्या से प्रत्येक का कुछ न कुछ कल्याण होता है यह आपेक्षितों को नियमित देने से भी बढ़ती ही रहती है, यह अन्त तक समाप्त नहीं होने वाली वस्तु है अतः हे राजाओं जिनके पास भी यह धन है किसी प्रकार का घमण्ड़ अहंकार विद्या के लिए मत आने दो। विद्या अर्थात् सरस्वती के पश्चात् लक्ष्मी की चर्चा करते हुए कहते हैं कि लक्ष्मी वैभव का प्रतीक है जिनको यह प्राप्त होती है वह धन्य हो जो हैं किन्तु इस परम को प्राप्त करने के पश्चात् किसी जाति, विषय और धर्म के पाण्डित्य का अपमान न करें क्योंकि यह धन सम्पत्ति इन विद्वानों को किसी बंधन में नहीं बांध सकती हैं। यह उनके वैसे ही है जैसे कमल, डण्ठल से निकलने वाले धागों से मदमस्त हाथी को बांधने का असफल प्रयास है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा भर्तृहरि ने नीतिशास्त्र के अन्तर्गत धर्म और सामाजिक जीवन को संतुलित बनाने का प्रयास किया है।

श्रृंगार शतक :- राजा भर्तृहरि सांसारिक सुन्दरता से प्रभावित थे, राजा भर्तृहरि ने दो विवाह किये थे इन दोनों विवाहों के पश्चात् भी आपने तीसरा विवाह पिंगला नामक राजकुमारी से किया है जो अत्यन्त सुन्दरी तथा सौन्दर्य में वह अप्सराओं को भी मात दिये हुए थीं। उनके सौन्दर्य से प्रेरित होकर इन्होंने श्रृंगारशतक को जमीनी आधार प्रदान किया। अपने श्रृंगारशतक के अन्तर्गत सर्वप्रथम कामदेव को प्रणाम किया और इस बात को स्वीकारा कि यह कामदेव भगवान की देन है कि विराट पुरूष भी मृगनयनियों के वश में हो जाता है। आपने यह कहा है कि स्त्रियों का सबसे बड़ा गहना उनकी भौहों की चंचलता, आँखों का तिरक्षापन तथा लज्जा में परिवर्तित होने वाली हँसी है जिसे वह समय-समय पर अस्त्रों के रूप में प्रयोग करती हैं। स्त्रियों के नयनों की व्याख्या करते हुए राजा भर्तृहरि कहते हैं कि इन नयनों का ही प्रबल प्रभाव है जो धरती पर सभी दिशाओं में खिले हुए कमल की भांति सुन्दर बनाती हैं। अर्थात् देखने वाली सभी सुन्दर वस्तुओं में सबसे सुन्दर चित्र मृगनयनियों के द्वारा देखने की कला से ही प्रचारित होता है।

श्रृंगारशतक के अन्तर्गत कामदेव की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा जाता है कि कामदेव केवल राजा, महाराजाओं तथा धनी व्यक्तियों, सम्पन्न गुणों वालों को ही प्रभावित करते हुए नहीं पकड़ते अपितु मरे हुए व्यक्तियों को भी मारते हैं। इसका प्रभावपूर्ण विस्तृत वर्णन करते हुए यह उजागर किया जाता है कि जब श्रृंगार एक नशा के रूप में व्यक्ति पर छा जाता है तो वह बेहाल और व्याकुल तथा विभिन्न व्याधियों से पीड़ित होते हुए भी केवल और केवल वासना की आसक्ति को स्वीकार करता है। कामदेव के इस प्रभाव को प्रकट करते हुए राजा भर्तृहरि कहते हैं

कि नारी अमृत और विष दोनों है नारियों का प्यारा कोई नहीं होता है यह राजा भर्तृहरि के श्रृंगार शतक के अंतिम पक्ष को दर्शाता है और अन्त में आप यह भी स्वीकार करते हैं कि वेश्या विवेक रूपी कल्पना के लिए कुल्हाडी के समान है अतः कुलीन पुरूषों को वेश्याओं से दूर ही रहना चाहिए और उन्हें यह मानना चाहिए कि वियोग में संयोग होता है और संयोग में वियोग होता है।

वैराग्य शतक :- अपने नीतिशास्त्र के अन्तिम पक्ष में यह माना कि धीर का धैर्य नष्ट नहीं होता है अर्थात् धैर्य पूर्ण स्वभाव वाला मनुष्य कितना ही दुःख में पड़ा हो पर उसका धैर्य समाप्त नहीं किया जा सकता है इसकी तुलना करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि यदि आग का मुँह नीचे की ओर कर दिया जाय तो भी उससे उठने वाली लपटे नीचे की ओर नहीं जाती हैं। नीति शास्त्र का अन्तीम श्लोक भर्तृहरि ने अपने वैराग्य शतक के आरम्भिक रूप-रेखा को तय करने के लिए ही बनाया होगा। पिंगला के छल से जागृत होने के पश्चात् कवि, साहित्यकार भर्तृहरि ने अपने छोटे भाई राजा विक्रमादित्य को उज्जयिनी का शासन देने के बाद वैराग्य को ही जीवन दर्शन का आधार बनाया और साधुवादी दृष्टिकोण को अपनाकर सुन्दर उपदेश देना आरम्भ कर दिया। वह धार्मिक आधार पर नवजीवन को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि बह्म ज्ञान के अतिरिक्त सभी ज्ञान केवल एक सामाजिक व्यापार है। ज्ञान, धर्म और तपस्या के माध्यम से ही संसार सागर से पार हुआ जा सकता है जाने का उपाय है।

2.4 भर्तृहरि द्वारा रचित शतकत्रय का विस्तृत विवेचन

विस्तृत रूप में राजा भर्तृहरि द्वारा रचित तीनों शतकों का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

2.4.1 नीति शतक

भर्तृहरि का व्यवस्थित सामाजिक जीवन, उस काल का आदर्श सामाजिक जीवन था। इसे प्रशंसनीय प्रभावशाली और सुगम बनाने हेतु भर्तृहरि ने व्यवस्थित नीति का क्रियान्वयन सामान्य रूप में किया। व्यवस्थित नीति क्रम को बनाते समय राजा भर्तृहरि सबसे पहले अनन्त ब्रह्म स्वरूप चेतन प्रकाश को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि जो दिशाओं द्वारा आदिकाल से घिरा हुआ नही है अथवा सीमित नहीं है जो अनन्त है एक मात्र चेतन अथवा प्रकाश ही जिसकी मूर्ति एवं एक मात्र अनुभव ही जिसके होने का प्रमाण है ऐसे शान्त तेज वाले उस परमब्रह्म को नमस्कार है। इस प्रणाम के पश्चात आप आत्म (श्लोक) चिन्तन की ओर मुड़ते हुए विचार करते हैं कि मैं लगातार जिस नारी के विषय में सोचता रहता हूँ वह नारी मेरे प्रति उदासीन है। वह नारी किसी दूसरे पुरूष को चाहती है वह पुरूष किसी अन्य नारी के प्रति आसक्त है कोई अन्य नारी मेरी भलाई करके सन्तुष्ट होती है उन सभी आशक्त प्राणियों सहित भर्तृहरि स्वयं को भी धिक्कारते हैं -

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्त:।
अस्मत् कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ।।

इस श्लोक से ऐन्द्रिक संग के प्रति वैराग्य दिखाई देता है। वह अपने अनुभव चक्षु के माध्यम से कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति को सरलता से प्रसन्न किया जा सकता है विशेष ज्ञानी पुरूष को कठिनता से प्रसन्न किया जा सकता है किन्तु जो मनुष्य थोड़े ज्ञान के कारण स्वयं को बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है उसे ब्रह्मा जी भी नहीं प्रसन्न नहीं कर सकते हैं इस श्लोक में-

अज्ञ: सुखमाराध्य: सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञ: ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि च तं नरं न रंजयति ।।

इस प्रकार अहंकार ज्ञानप्राप्ति में सर्वाधिक बाधक है। वह अज्ञानता को मूर्खता से जोड़ते हुए कहते है कि मूर्ख व्यक्तियों की अराधना कर उन्हें किसी भी प्रकार से प्रसन्न नहीं किया जा सकता है यदि मुर्ख व्यक्ति दुष्ट होतों ऐसे व्यक्तियों का सुधार सम्भव ही नहीं हो सकता किन्तु यदि आपके पास मधुर शहद के समान मीठे वचन हो तो ऐसे दुष्टों को सन्तुष्ट किया जा सकता है। वह मूर्खों के गुणों और विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मा जी ने मुर्खता को छिपाने का एक मात्र गुण बताया है मौन जो बिल्कुल अपने अधीन है। विषेष रूप से सबकुछ जानने वालों के समाज में मौन मुर्खों का आभूषण है। अपने अन्दर आये अहंकार को उजागर करते हुए राजा भर्तृहरि कहते हैं कि जब मैं थोड़ा जानता था तब हाथी के समान घमण्ड में अन्धा हो गया था। उस समय इस भाव से मेरा मन भरा हुआ था कि मैं सब कुछ जानता हूं जब विद्वान लोगों की संगत में मैं कुछ जाना तो पता चला कि मैं तो मूर्ख हूँ ऐसा प्रतीत होते ही ज्वर के समान मेरा घमण्ड़ मिट गया। वह विवेक को मानव का सर्वोत्तम आभूषण मानते हैं जबकि अविवेक के पतन की ओर संकेत करते हुए गंगा स्वर्ग से शिवजी के शीश पर आयी। भगवान शिव के शीश से हिमालय पर्वत पर आयी। ऊँचे हिमालय पर्वत से धरती पर आयी और धरती से सागर में पहुँची। इस प्रकार यह गंगा क्रमशः नीचे स्थान प्राप्त करती रहीं यह भी सत्य है कि जिनका ज्ञान नष्ट हो जाता है उनका सैकड़ो प्रकार से पतन होता है। अज्ञानता को मूर्खों के आभूषण के रूप में स्वीकारते हुए राजा भर्तृहरि ने यह भी कहा कि अग्नि को जल से बुझाया जा सकता है छाते से सूर्य के तीव्र प्रकाश को कम किया जा सकता है मद् से मतवाले हाथी को अंकुश से तथा गाय और गधे जैसे पशुओं को डंडे से वश में किया जा सकता है। औषधियों के सेवन से रोग और भाँति-भाँति के मंत्रों के प्रयोग से विष दूर हो जाता है। शास्त्र में वर्णित सभी की दवा है किन्तु मूर्खता को दूर करने की कोई औषधि नहीं होती है। मनुष्य की रूचि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य साहित्य संगीत और कला से हीन है वह बिना सींग, पूँछ का पशु है जो बिना घास खाये हुए भी सौभाग्य के रूप में जीवित है। किन्तु जिनके पास विद्या, तप, ज्ञान, दान, शील एवं गुण नहीं है वह इस मृत्युलोक की धरती पर बोझ बने हुए है मनुष्य के रूप में वह पशु के समान घूमते हैं। मूर्खों की संगति को दुर्भाग्य पूर्ण मानते हुए कहते हैं कि दुर्गम पर्वतों में जंगली लोगों के साथ घूमना उत्तम है किन्तु देवराज इन्द्र के महल में भी मूर्ख लोगों के साथ रहना अच्छा नहीं है। विद्वानों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिनकी सुन्दर कविताएँ शास्त्रों से सुशोभित शब्दों वाली है एवं जिसकी विद्या शिष्यों को देने योग्य है ऐसे प्रसिद्ध कवि जिस राजा के देश में निर्धन बनकर रहते हैं उस राजा की मूर्खता है। विद्या की नीतिगत प्रशंसा

करते हुए राजा भर्तृहरि कहते हैं कि विद्या चुराने वालों को दिखाई नहीं देती हैं जबकि यह सदा कुछ न कुछ कल्याण करती ही रहती है। इसे यदि लगातार भिखारियों को भी दिया जाय तो यह बढ़ती ही जायेगी और यह कल्प के अन्त में भी समाप्त नहीं होगी। इस प्रकार की विद्या नामक धन जिनके पास है उनके सम्मुख घमण्ड नहीं किया जा सकता है और इनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता है। लक्ष्मी को विद्वानों से अलग मानते हुए कहते हैं कि वह विद्वानों को बांध नहीं सकती है। अपमान की निन्दा करते हुए कहते हैं कि जिन्होने परम ज्ञान को प्राप्त कर लिया है, उन पंडितों का अपमान मत करों क्योंकि तिनके के समान छोटी और तुच्छ सम्पत्ति पंडितो को बांध नहीं सकती है। विद्वानों के गुणों को छिना नहीं जा सकता है। इसका वर्णन करते हुए राजा भर्तृहरि कहते हैं कि विधाता बहुत अधिक क्रोधित होने पर हंस को कमलों के समूह वाले तालाब से घूमने का सुख छीन सकता है परन्तु दूध और पानी को अलग करने वाली प्रसिद्ध चतुरता को विधाता नहीं छीन सकता है। पुरूष के सच्चे आभूषण की चर्चा करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि भुजबन्द और चन्दा के समान उजले हार मनुष्य को सुशोभित नहीं करते। स्नान करना, चन्दन लगाना, फूल माला पहनना और सजाये हुए बाल भी पुरूष की शोभा नहीं बनाती हैं। शुद्ध रूप में धारण की गयी एकमात्र विद्या ही मनुष्य की शोभा बढ़ाती है जबकि शेष सभी गहने सदैव नष्ट होते रहते हैं केवल विद्यारूपी गहना ही सच्चा गहना है जबकि विद्या के बिना मनुष्य की चर्चा करते हुए कहते है कि विद्या मनुष्य के अधिक सौन्दर्य का नाम है यह सुरक्षित और छिपे हुए धन के रूप में जानी जाती है विदेशों में जाने पर विद्या का ही आदर होता है धन का आदर नहीं होता है अर्थात् जो विद्या से हीन है वह मनुष्य नहीं पशु है। भर्तृहरि ने नीति निर्देश मे सम्पत्तियों और विपत्तियों का वर्णन करते हुए कहा है कि यदि क्षमा है तो कवच की आवश्यकता नहीं है, यदि क्रोध है तो मनुष्यों को शत्रुओं की आवश्यकता नहीं है यदि जाति बिरादरी है तो मनुष्यों को आग की आवश्यकता नहीं है यदि मित्र है तो दिव्य औषधि जैसा कोई फल नहीं हो सकता है यदि आपके साथ दुष्ट लोग है तो साँपों की आवश्यकता नहीं हो सकती है। यदि उत्तम विद्या है तो धन की आवश्यकता नहीं होती है। यदि आपके पास लज्जा है तो भूषणों की क्या आवश्यकता है। इतना ही नहीं सम्पूर्ण लोक में सुख की कामना करते हुए कहते है कि जो लोग अपने परिजनों के प्रति उदारता, सेवको के प्रति दया, दुष्टों के प्रति दुष्टता, सज्जनों के प्रति प्रेम, राजाओं के प्रति नीति, विद्वानों के प्रति सरलता, शत्रुओं के प्रति शूरता, गुरूजनों के प्रति क्षमा, एवं नारियों के प्रति धृष्टता का व्यवहार करते हैं जो पुरूष कलाओं में कुशल नहीं होते हैं उन्हीं के कारण लोक की स्थिति है। सत्संगति की महिमा को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि नीति भी सत्संगति को अपनाती है। सज्जनों की बुद्धि की जड़ता को दूर करती है, वाणी में सत्य सींचती है अर्थात् सत्य बोलना सिखाती है, सम्मान प्रतिष्ठा की उन्नति करती है पाप दूर करती है मन में प्रसन्नता का बोध कराती है और यह सभी दिशाओं में कीर्ति फैलाती है, अर्थात् सत्संगति मनुष्यों पर सभी प्रकार का उपकार करती है।

सत्संगति के पश्चात् राजा भर्तृहरि कल्याण के मार्ग को बताते हुए कहते हैं कि दूसरे प्राणियों की हत्या से दूर रहना, दूसरे से धन छिनने में संयम, सत्य बोलना, समय पर शक्ति के अनुरूप दान

देना, दूसरों की युवतियों से सम्बन्धित बातों में चुप रहना, तृष्णा रूपी स्रोतों का विनाश, गुरूजनों के प्रति नम्रता एवं सभी प्राणियों पर कृपा करना यही सभी शास्त्रों में कल्याण का एकमात्र सफल होने वाला मार्ग है। भर्तृहरि ने समाज में व्यक्तियों के स्थानों का निर्धारण उनकी कार्य क्षमता के आधार पर किया है। वह विघ्न को कार्य और कारण की कुंजी के रूप में दर्शाते हैं। आपका विचार है कि विघ्नों के कारण नीच लोगों के द्वारा कोई काम आरम्भ नही किया जाता है। मध्य श्रेणी के लोग काम आरम्भ कर देते हैं पर विघ्न आने पर उसे छोड़ देते हैं। किन्तु उत्तम श्रेणी के लोग विघ्नों के द्वारा बार-बार प्रतिरोध होने पर भी काम को प्रारम्भ करके अधूरा नहीं छोड़ते। जन्म और कर्म की सफलता का आंकलन करते हुए कहते हैं कि इस परिवर्तनशील संसार में कौन मरता नहीं है तथा कौन जन्म नहीं लेता है किन्तु यहॉ उसी का जन्म लेना सार्थक है जिसके जन्म लेने से वर्ष की उन्नति होती है। वह महापुरूषों के चरित्र का वर्णन करते हुए कहते हैं कि शेषनाग अपने फनों कें समूह पर रखे हुए चौदह लोकों के समूह को धारण करते हैं। वे प्रेरक शेषनाग कच्छपराज द्वारा अपनी पीठ के बीच में धारण किये जाते हैं। उन कच्छपराज को भी सागर आदरपूर्वक अपनी गोद में छिपा लेता है। आश्चर्य है कि महापुरूषों के चरित्र की विभूतियाँ सीमा रहित हैं। पिता और पुत्र के मध्य कर्त्तव्यों की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि घमण्ड से भरे हुए इन्द्र के वजो के प्रहारों से हिमालय के पुत्र मैनाक का प्राण नाश उत्तम था। वज्र से निकलती हुए अग्नि के कारण उसके प्रहार भारी थे। पिता के कष्ट में विवश होने पर मैनाक का सागर के जल में गिरना उचित नहीं था। राजा भर्तृहरि महान लोगों के स्वाभाव की चर्चा करते हुए कहते हैं कि हाथों में प्रशंसनीय दान, सिर पर गुरूजनों के चरणों में प्रणाम करना, मुख से सच्ची वाणी, विजय प्राप्त करने वाली भुजाओं में अतुलनीय शक्ति, हृदय में स्वच्छ भावना एवं कानों से सुनी हुई विद्या ये स्वाभाविक रूप से महान् पुरूषों के ऐसे आभूषण हैं जो धन सम्पत्ति के बिना भी प्राप्त हो जाते हैं।

महान लोगों के व्यक्तित्व का निर्धारण करते हुए राजा भर्तृहरि कहते हैं कि हाथों में प्रशंसनीय दान, सिर पर गुरूओं के चरणों में प्रणाम करना, मुख में सच्ची वाणी, विजय प्राप्त करने वाली भुजाओं में अतुलनीय शक्ति, हृदय में स्वच्छ भावना एवं कानों में सुनी हुई विष ये स्वभाविक रूप से महान पुरूषों के ऐसे आभूषण हैं जो धन, सम्पत्ति के बिना भी प्राप्त हो जाते हैं। अपनी चित्त दशा के आधार पर अन्य महान चित्त वाले व्यक्तियों का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि महान पुरूषों का मन सुखों में कोमल के समान कोमल और आपत्तियों में महापर्वत की शिलाओं के समूह के समान कठोर होता है। पुत्र, पत्नी और मित्र के कर्त्तव्यों का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि जो अपने उत्तम चरित्र से पिता को प्रसन्न करे, ऐसे पुत्र जो पिता का ही भला चाहें , ऐसी पत्नी जो आपत्ति और सुख में समान व्यवहार करे ऐसा मित्र, इन तीनों को संसार में पुण्य करने वालों को ही मिलता है। सज्जनता का विश्लेषण अपने नीतिशतक में करते हुए स्पष्ट रूप से कहते हैं कि नम्रतापूर्वक उन्नति करते हुए, दूसरों के गुणों के वर्णनों द्वारा अपने गुणों को प्रसिद्ध करते हुए, दूसरों की भलाई के लिए विस्तृत एवं महान कार्यों को आरम्भ करके स्वार्थ पूरे

करते हुए निन्दा के कठोर अक्षरों के कारण वाचाल मुख वाले दुष्टों के क्षमा के द्वारा ही दोषी ठहराते हुए, आश्चर्यपूर्ण चरित्र वाले संसार में आदरणीय सज्जन किसके पूज्य नहीं होते हैं। परोपकारी की प्रशंसा का वर्णन नीतिशतक के अन्तर्गत किया गया है वह परोपकार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि फल आने के कारण पेड़ झुक जाते हैं। नये जल के कारण बादल धरती पर लटकते हैं सज्जन पुरूष समृद्धियाँ पाकर सभ्य बनते हैं। परोपकारियों का तो यह स्वभाव ही है। सच्चे आभूषण को अपनाने के लिए कहते हैं कि कान विद्या से ही शोभा पाते हैं कुण्डल से ही नहीं, हाथ दान से ही शोभा पाते हैं, कंगन से नहीं इसी प्रकार दूसरों की भलाइयों में लगे लोगों की देह परोपकारों से शोभा पाते हैं चन्दन से नहीं। सच्चा मित्र कैसा होता है और उसका सामाजिक जीवन में कैसा योगदान होता है वह किस प्रकार से अपने इष्ट मित्रों को सहयोग प्रदान करता है इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि वह अपने मित्रों को पाप करने से रोकता है, हितकारी कार्यों में लगाता है उसकी गुप्त बातों को छिपाता है गुणों को प्रकट करता है। मित्र आपत्ति में पड़े हुए मित्र को नहीं छोड़ता है और समय पर उसकी सहायता करता है सज्जनता सच्चे मित्र का लक्षण बताते हैं।

2.4.2 श्रृंगारशतक

इसका वर्णन करने से पहले ही कवि ने कामदेव की वन्दना की है-

शम्भुस्वयंम्भुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियन्त सततं गृहकुंभदासा
वाचामगोचरचरित्रपवित्रिताय
तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय

जिसके द्वारा शम्भु, ब्रह्मा एवं विष्णु मृगनयनी नारियो के घर में काम करने वाले दास बना दिये जाते है एवं जिसके विचित्र चरित्र वाणी से नही कहे जा सकते उस भगवान कामदेव के लिए नमस्कार है।

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया
पराङ्मुखैहा-कटाक्ष-वीक्षणैः।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः।।

कामवासना को दर्शाते हुए कहते हैं कि मन्द मन्द मुस्कान से काम वासना प्रकट करने वाली भावना से लज्जा से भय से मुहँ फेरकर छोडी गई आडी तिरछी चितवन से मधुर मादक वचनो से ईर्ष्या के कारण की गई कलह से एवं लीला से कहाँ तक कहा जाये स्त्रियाँ सभी प्रकार से पुरूषो को बन्धन में डालने वाली है।

चतुरता के साथ भौहे चलाने के कारण आधी बन्द आँखें की तिरछी चितवने स्नेह भरी बातें लज्जा में परिवर्तित होती हँसी प्रदर्शन के रूप में धीरे-धीरे चलना और ठहरना ये सबस्त्रियों के आभूषण भी है और आयुध भी है। सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कही सुन्दर टेढ़ी भौहों के कारण कही लज्जा का रूप धारण करने वाले कटाक्षों से कही भय के कारण त्रसित

भावों से एवं कही लीला विलासों से पूर्ण नवयुवतियों के जो चंचल नेत्रों वाले ये मुखरूपी कमल है इनके कारण सभी दिशाएँ खिले हुए नीले कमलो से स्पष्ट रूप में भरी-भरी दिखाई देती है। सुन्दरयुवतियों का वर्णन करते हुए राजा कहते है कि चन्द्रमा के समान उज्जवल मुख, कमलों की हँसी उडाने में समर्थ आँखे सोने का अपमान करने वाला रंग, भौरियों को जीतने वाले केश, हाथी के गंडस्थलों की शोभा चुराने वाले स्तन, भारी नितम्ब एवं मन को हरने वाली वचनों की कोमलता-ये सब युवतियों के स्वभाविक आभूषण है। यौवन के वर्णन में वह यह जोड़ते है कि यौवन का स्पर्श करने वाली मृगनयनी का ऐसा कौन सा भाव है जो सुन्दर नही है। उसके मुख में कुछ-कुछ मुसकान रहती है। आँखों की शोभा सरल और तरल होती है। बातों का आरम्भ विलासपूर्ण नवीन उक्तियों के कारण सरस होता है। उसकी गति का आरम्भ कोपलों के समान लीलापूर्ण एवं चंचल होता है। मृगनयनियों की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि देखने योग्य वस्तुओं के योग्य क्या है? मृगनयनियो का प्रेम के कारण प्रसन्न मुख। सूँघने योग्य पदार्थो में भी उत्तम क्या है? उनके मुख का पावन सुनने योग्यों में उत्तम क्या है ? उनका वचन। स्वाद लेने योग्य पदार्थो में उत्तम क्या है? उनके कोपल के समान कोमल होठ का रस। छूने योग्य पदार्थो में उत्तम क्या है ? उनका नवयौवन। इस प्रकार सभी जगह मृगनयनियों का वैभव ही है।

वह कहते हैं कि तरूणियाँ किसकी मन नहीं हरतीं:- इन तरूणियों को हिलते हुए कंगनो के साथ करधनी के घुँधरूओं की झंकार राजहंसियों को भी पराजित कर देती है। ये युवतियाँ डरी हुई भोली-भाली हिरनी के समान अपनी चितवनो से किसका मन वर्ष में नही कर लेती ? अर्थात् सभी का मन वश में कर लेती है।

रमणी किसको वश में नहीं करती :- जिनका शरीर कुंकुम के घोल से लिपटा है, जिनके गोरे रंग के स्तनों पर हार रहा है और जिनके चरण कमलो में नूपुर रूपी हंस शब्द कर रहे है ऐसी रमणी, धरती पर किसे वश में नहीं कर लेती ? अर्थात् सभी को वश में कर लेती है।

कवियों का बोध उल्टा है :- निश्चय ही वे कविवर उल्टे ज्ञान वाले थे, जिन्होने कामिनियों को सदा अबला कहा। जिन्होने अपनी अत्यधिक चंचल पुतली की चितवनो से इन्द्र आदि को भी जीत लिया, वे अबलाएँ किस प्रकार है ?

कामदेव कामनियों का आज्ञाकारी है :- निश्चय ही कामदेव उस सुन्दर भौहों वाली की आज्ञा मानने वाला है, क्योकि वह अपने नेत्र को घुमाकर जिसकी ओर संकेत करती है, उसी पर आक्रमण करता है।

नारी देह वैरागियों को भी क्षुब्ध करती हैं:-हे सुन्दरी तेरे केश बँधे हुए है अथवा संयमित (संयम से रहने वाले) है। तेरी दोनों आँखे कानों के भी अत्यधिक समीप तक पहुँचने वाली अथवा वेदज्ञान में पारंगत है। तेरे मुँह का भीतरी भाग भी स्वाभाविक रूप से साफ अथवा पवित्र दाँतों अथवा ब्राहणों के समूह से भरा हुआ है। तेरे स्तन रूपी दोने घड़े मोतियों अथवा मुक्त पुरूषो के नित्य निवास करने के कारण सुन्दर है। इस प्रकार तेरा शान्त शरीर भी हमारे मन में क्षोभ उत्पन्न करता है।

धनुर्विद्या की अनोखी चतुरता:-हे सुन्दरी तेरे भीतर यह कौन सी अद्वितीय धनुर्विद्या की

कुशलता दिखाई देती है जो अपने गुणों अथवा धुनष की डोरियों से ही लोगों के मनों का हरण कर लेती हो, बाणों से नही।

मध्यस्थ संताप क्यों देता है:-हे सुन्दरी तेरे उभरे हुए भारी स्तन, तरल नयन, चंचल भौहें एवं कोपल के समान लाल यह होठ कामान्ध लोगों को व्यथा करे तो कोई बात नहीं है। तेरी रोमावली तो स्वंय कामदेव के द्वारा लिखी हुई सौभाग्य के क्षरों की पंक्ति है। यह मध्यस्था अथवा कमर पर स्थित रहकर अधिक ताप देती है, इसका क्या कारण है ? मध्यस्थ को तो किसी का विरोध नही करना चाहिए।

मृगनयनी के बीना संसार अन्धकारमय है :- दीपक, अग्नि, तारो, सूर्य, एवं चन्द्रमा के होते हुए भी उस मृगनयनी के बिना यह संसार मेरे लिए अन्धकारपूर्ण लगता है।

रत्नमयी रमणी :- चन्द्रमा के समान सुन्दर अथवा चन्द्रकान्त मणि जैसे मुख का कारण, महानील अर्थात् बहुत काले अथवा महानील मणि जैसे केशों के कारण और कमल के समान लाल अथवा पद्मराग मणि जैसे हाथों के कारण वह रत्नों से भरी हुई के समान शोभा पाती हैं।

ग्रहमयी सुन्दरी :- अपने गुरू (भारी अथवा देव गुरू बृहस्पति जैसे) स्तन भार के कारण, चन्द्र के समान चमकते हुए मुख के कारण और धीरे-धीरे चलने वाले अथवा शनैश्चर के समान चरणों के कारण वह सुन्दर ग्रह पूर्ण के समान शोभा पाती है।

पुण्य किये बिना इच्छा पूरी नहीं होती :- उसके स्तन यदि कठोर जंघाएँ अधिक मनोहर हैं, मुख है चारू, बात मेरे मन ये क्यों तुझे कष्टकर हैं। यदि इनमें तेरी इच्छा है तो तू पुण्य कर्म कर ले, बिना पुण्य के कभी न कोई जो इच्छा पूरी कर ले।

किसका सेवन करना चाहिए :- श्रेष्ठ ईर्ष्या-द्वेष का भाव त्याग कर, कार्य का विचार करके एवं मर्यादा का पालन करते हुए यह बतावें की पर्वतों के नितम्ब अर्थात् गुफाओं का सेवन करना चाहिए अथवा मदमत्त काम भाव के कारण मतवाली युवतियों के नितम्बों का सेवन करना चाहिए।

तिरक्षी चितवन वाली स्त्रियाँ क्या नहीं करती हैं :-ये नारियाँ मनुष्यों के दयालु हृदय में पहुँच कर उन्हें मोहित करती हैं। इसके पश्चात् उन्हें मतवाला बना देती हैं, फिर उन्हें धोखा दे देती हैं। इसके बाद उन्हें डराती हैं, फिर ये मनुष्यों को रमण कराती हैं और अन्त में फटकार लगाकर उन्हें दुःखी बनाती हैं। इस प्रकार ये तिरछी चितवन वाली नारियाँ क्या-क्या नहीं करती अर्थात् सब कुछ करती हैं। पंडितों को दो गतियाँ हैं :- परिणाम मे चंचल इस सारहीन संसार में पंडितों की दो ही दशाएं होती है।

निशा में तन्वी का वन विचरण :- कोई दुबली युवति वन के वृक्षों की छाया में ठहर-ठहरकर विचरण कर रही थी। वह स्तनों के ऊपर हाथ से उठाये हुए दुपट्टे से चन्द्रमा की किरणों को बचा रही है।

बढ़ती अभिलाषा :- उस सुन्दरी का दर्शन न होने पर दर्शन मात्र की कामना होती है। उसे देखकर आलिंगन करने के एकमात्र सुख की इच्छा जागती है। उस बड़ी-बड़ी आँखों वाली रमणी का आलिंगन कर लेने पर हम चाहते हैं कि हमारे शरीर कभी अलग न हों।

वास्तविक स्वर्ग :- सिर पर मालती के खिलने वाले फूलों की माला, शरीर पर कुंकुम से मिला हुआ चन्दन एवं सीने पर मनोहर प्रियतम-यही वास्तविक स्वर्ग है। शेष को तो लोग व्यर्थ ही स्वर्ग कहते हैं।

उच्च कुल की कामिनी का संभोग :- पहले रस न आने के कारण थोड़ी सा नहीं नहीं करती, पश्चात् सम्भोग के प्रति उसकी रूचि होने लगती है, फिर लज्जापूर्वक शरीर को ढ़ीला छोड़ देती हैं। इसके पश्चात् धैर्य त्याग देती हैं। इसके पश्चात प्रेम से पूर्ण चाहने योग्य एवं एकान्त की आत्मनिर्भर काम क्रीड़ा में कुशल हो जाती है। अन्त में निःशंक होकर अंग खींचने आदि का सुख देती है। इस प्रकार उच्च कुल की स्त्री का संभोग अत्यन्त रम्य है।

सौभाग्यशाली पुरूष :- सीने पर पड़ी हुई बिखरे केशों वाली, बन्द आँखों वाली एवं कुछ-कुछ खुली आँखों वाली, संभोग के कारण उत्पन्न पसीने से भीगे हुए गालों वाली नारियों के होठों का रस सौभाग्यशाली पुरूष ही पीते हैं।

काम देव का सच्चा पूजन:- जो पुरूष आलस्य के कारण आधी बन्द आँखों वाली नारियों के साथ सम्भोग के आनन्द में साझेदारी करता है। स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध में परस्पर निश्चित यही सच्चा काम पूजन है।

ब्रह्मा का अनुचित कार्य:- यह बात अनुचित एवं क्रम विरूद्ध है जो पुरूषों को वृद्धावस्था में भी काम सम्बन्धी विकार उत्पन्न होते हैं। यह भी अनुचित है कि नारियों के स्तन ढके जाने पर भी वे जीवित रहती है एवं सम्भोग की इच्छा उत्पन्न होती रहती है।

जीवित एवं मृतक का संगम :- काम भावना संसार में यही यही फल है कि संभोग करने वाले स्त्री पुरूषों के मन एक हो जायें। यदि स्त्री एवं पुरूषों में से एक का मन कहीं दूसरी जगह लगा हो तो उनका मिलना अथवा संभोग लाशों के मिलन के समान है।

मृगनयनियों की स्वच्छन्द बातें :- हिरनी के समान नयनों वाली सुन्दर स्त्रियों के प्रेम के कारण मधुर, गम्भीर प्रेम से पूर्ण, रस के कारण आलस्यपूर्ण, मधुर बातों से युक्त, मोहित करने वाली, सम्पत्तियों को प्रकाशित करने वाली प्राकृतिक रूप से सुन्दर विश्वास के योग, काम वासना को उत्पन्न करने वाली एवं एकान्त में की गयी स्वच्छन्द बातें मन को हरती है।

एक स्थान पर आवास बनाओं:-या तो पापों का विनाश करने वाले जल में निवास स्थान बनाना चाहिए या युवती स्त्री के मनोहर एवं हार से सजे हुए स्तनों के मध्य में।

युवतियाँ कब तक रूठी रहती हैं:- प्रेमी पुरूषों के सामने युवतियों के हृदय में रूठने का भाव तभी तक रह सकता है, जब तक चन्दन के वृक्षों के कारण सुगन्धित स्वच्छ वायु नहीं चलती।

बसन्त की रात में गुणों का उदय:- हवायें सुगन्ध से भर जाती हैं, शाखाओं मे बहुत से नये अंकुर निकल आते है कोयल आदि पक्षियों के मधुर एंव सुप्त के लिए उत्कंठित शब्द प्रिय प्रतीत होने लगते हैं एवं युवतियों के मुख रूपी चन्द्रमा पर कभी-कभी होने वाले सम्भोग के किसका गुणोदय नहीं हो जाता अर्थात् सबका गुणोदय होता है।

विपत्ति की चर्चा करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि यह बसन्त की कोयल के मधुर कूजन एवं मलय पर्वत से आने वाली हवाओं के द्वारा वियोगी पुरुषों का वध करता है। विपत्ति में अमृत भी विष

बन जाता है। चैत्र की रात्रियों के सुख का वर्णन करते हुए आपने कहा है कि सुप्त क्रीड़ा के कारण अलसायी हुई प्रियतमा के साथ कुछ समय निवास करना, मन में कोयल की कूक का सुन्दर शब्द पड़ना, खिले फूलों वाली लताओं का मण्डप, कुछ उत्तम कवियों के साथ गोष्ठी एवं चन्द्रमा के किरण का आनन्द लेना इस प्रकार की चैत्र की विचित्र रातें कुछ ही लोगों को नेत्र और हृदय को सुख पहुँचाती है।

2.4.3 वैराग्य शतक

वैराग्य शतक

चूड़ोत्तँसित चन्द्र चारू कलिका-चंचच्छिखाभास्वरो
लीलादग्ध विलोलो काम शलभः श्रेयोदशाग्रे स्फुरन्।
अन्तः स्फूर्जदपार मोहतिमिर प्राम्भारमुच्चाटयन्
चेतः सद्यनि योगिनां विजयते ज्ञान प्रदीपो हरः।।

शीश के आभूषण बने हुए चन्द्रमा की सुन्दर किरणों से प्रकाशमान शीश वाले, तेजस्वी, कामदेव रूपी चंचल पतंगे को सरलता से जलाने वाले, कल्याणकारियों में अग्रगण्य, मन में बढ़ते हुए अज्ञान रूपी अपार अन्धकार को नष्ट करते हुए, भगवान् शंकर रूपी श्वेत ज्ञान दीपक योगियों के भवन में विजयी हों।

तृष्णा को नमस्कार

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं घ्माता गिरे र्धातवो
विस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः।
मन्त्राराधन तत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काण वराटकोऽपिन मयातृष्णे सकामा भव ।।

मैंने खजाना मिलने की आशा में सारी धरती खोद डाली, सोना मिलने की आशा में पर्वत की सब धातुएँ फूँक डालीं, सागर को पार कर लिया एवं राजाओं को यत्नसे सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। मन्त्र सिद्धि करने में लगे हुए मन से मैंने मरघट में बहुत-सी रातें बिताईं, पर मुझे कानी कोड़ी भी नहीं मिली। हे लालच तू मुझे अब तो छोड़ दे। मृत्यु से भयभीत-

निवृत्ता भोगेच्छा पुरूषबहुमानोऽपिगलितः
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवित समाः।
शनैर्यष्टयुत्थानं घनतिमिर रूद्धे च नयने
अहो मूढः कायस्तदपि मरणापाय-चकितः।

भोगों की इच्छा समाप्त हो गई है। पुरूष होने का अत्यधिक गर्व भी गल गया है बराबर की अवस्था वाले जो मित्र प्राणों के समान प्रिय थे, वे सब मर गये हैं। दुर्बलता में लाठी के सहारे धीरे से उठा जाता है। दोनों आँखों में घना अधेंरा रहता हैं आश्चर्य का विषय है कि दुष्ट अथवा मूर्ख लोग मृत्यु रूपी हानि के कारण दुःखी हैं।

विधाता का खेल

हिंसा शून्यं अयत्न लयमशनं धात्रा मरूत् कल्पितं

व्यालानाम् पशवस्तृणांकुर भुजः सृष्टाः स्थली शायिनः।
संसारणिव लंघन क्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणाम्
तामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ।।

विधाता ने स्वयं ही साँपों का भोजन वायु के रूप में बिना यत्न के मिलने वाला और हिंसारित बनाया है। उसने पशुओं को तिनके और अंकुर खाने वाला तथा धरती पर सोने वाला बनाया है। पर संसार रूपी सागर को पार करने में समर्थ बुद्धि वाले मनुष्यों का स्वभाव उसने ऐसा बनाया है, जिसे खोजते हुए ही मनुष्यों के सभी गुण समाप्त हो जाते हैं। विभिन्न कारणों से त्याग में वंचित ही रहे -

क्षान्तं न क्षमया गृहोचित सुखं त्यक्तं न सन्तोषतः
सोढो दुःसह शीतवाततपन-क्लेशो न तप्तं तपः।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमित प्राणैर्न शम्भोः पदं
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वंचिताः ।।(वै0 रा0 6)

हमने सहन तो किया, किन्तु क्षमा के कारण नहीं, विवशता के कारण। घर में मिलने वाला उचित सुख हमने त्यागा अवश्य, पर सन्तोषपूर्वक नहीं, अपितु दरिद्रता के कारण। हमने असहनीय ठण्डा, गर्मी और हवा का क्लेश सहन तो किया, पर तपस्या नहीं की। हमने सांस रोककर रात-दिन धन का ध्यान किया, पर प्राणायाम करके भगवान् शंकर का ध्यान नहीं किया। इस प्रकार हमने कर्म तो वे सभी किये जो मुनि जन करते हैं, पर वैसा फल नहीं मिला, जैसा मुनियों को मिलता है।

चन्द्र-सूर्य की दीनता अग्रिम श्लोक में प्रदर्शित की गयी है -

येनैवाम्बरखण्डेन संवीतो निशि चन्द्रमाः।
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः।।(नीतिश0 101)

जिस आकाश रूपी वस्त्र के टुकड़े से रात में चन्द्रमा अपना शरीर ढँकता है, उसी से दिन में सूर्य अपना शरीर ढँकता है। इन दोनों की दुर्गति आश्चर्य का विषय है। विषयों का त्याग नहीं-

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेक वारं
शय्या च भूः परिजनो निजदेह मात्रम्।
शय्या च भूः परिजनों निजदेह मात्रम्।
विशीर्णशतखण्डमयि च कन्था
हा हा तथापि विषयान्न परित्यजन्ति ।।(वैरा0 श0 15)

भीख माँगकर खाना, वह भी स्वादरहित और एक बार हो पाता है। बिस्तर के रूप में धरती अर्थात् धरती पर सोना, परिवार केवल अपना शरीर है। वस्त्र के रूप में पुराने और सैकड़ों टुकड़ों से बनी कथरी है। शोक का विषय है कि मनुष्य फिर भी विषयों को नहीं छोड़ता। दुर्जनों की उद्दण्डता सहन नहीं कर सकता -

फलमलशनाय स्वादु पानाय तोयं
क्षितिरपि शयनार्थे वाससे वल्कलं च

नव धन-मधु-पान भ्रान्त सर्वेन्द्रियाणाम्
अविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ।।

खाने के लिए फल पर्याप्त हैं, स्वादिष्ट पानी पीने के लिए है, सोने के लिए धरती की पीठ है और पेड़ की छाल के वस्त्र हैं । मैं नवीन धन रूपी मदिरा से मतवाली सभी इन्दियों वाले दुष्टों की उद्दंडता को सहने के लिए उत्साहित नहीं हो पाता हूँ। राजसभा में विद्वानों का क्या काम -

न नटा न विटा न गायका: न च सव्येतरवादचुचव: ।
नृपमीक्षितुमत्र के वयं स्तनभारानमिता न योषित: ।।(वैरा0श0 56)

न हम परस्त्रीगामी विट हैं, न नर्तक है, न गायक हैं, न दूसरों के द्रोह करने वाले हैं और न स्तनों के बोझ से झुकी हुई नारी हैं । राज दरबार में हमारा क्या काम, अर्थात् राज दरबार में तो बिट, नट, गायक, और नारियों की आवश्यकता है । काल को नमस्कार है-

सा रम्या नगरी महान्स नृपति: सामन्तचक्रं च तत्
पार्श्वे तस्य च सा विदग्ध परिषत्ताष्चन्द्र बिम्बानना: ।
उदवृत्ता: स च राज-पुत्रनिवहस्ते वन्दिन स्ता: कथा:
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नम: ।।

वही सुन्दर नगरी, वही महान् राजा, वही सामन्तों का समूह, उस राजा के समीप वही विद्वानों की सभा, वे ही चन्द्रमुखी नारियाँ, वे अत्यन्त चतुर राजकुमार, वे कुशल बन्दी जन, वे कथाएँ-यह सब जिस काल के कारण नष्ट होकर स्मरण का विषय रह गया, उस काल को नमस्कार है ।

बोध प्रश्न

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) भर्तृहरि के छोटे भाई का नाम था -

(अ) राज्यवर्धन (ब) विक्रमादित्य (स) चन्द्रगुप्त (द) समुद्रगुप्त

(ख) वाक्यपदीय किसकी रचना है-

(अ) भतृहरि (ब) सुबन्धु (स) दण्डी (द) कालिदास

(ग) भर्तृहरि किससे प्रभावित होकर शतकत्रय की रचना किया

(अ) मधुबाला (ब) रदनिका (स) वसन्तसेना (द) पिंगला

(2) निम्नप्रश्नों में सही (√) के सामने सही तथा गलत के (×) का चिन्ह लगइये-

(क) शतकत्रय की रचना आचार्य दण्डी ने की थी (×)

(ख) भर्तृहरि उज्जयिनि के राजा था। (√)

(ग) राजा भर्तृहरि ने तीन विवाह किया था (×)

(3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) भर्तृहरि के पिता का नाम.....था ।

(ख) श्रृंगारशतक.....की रचना है ।

(ग) वैराग्य में .....श्लोक है ।

2.5 सारांश

भर्तृहरि के नाम से श्रृंगार शतक वैराग्य शतक और नीतिशतक नामक तीन शतक प्रसिद्ध है-तथा इन तीनों कृतियों ने भर्तृहरि को पर्याप्त लोकप्रियता भी प्रदान की है। इन्हीं शतकों के आधार पर हम भर्तृहारि के जीवन की यह कल्पना कर सकते है कि वह प्रधान रूप से भोगासक्त थे, पर उससे उबकर कभी-कभी सन्यास ले लेते थे फिर भी गृहस्थ आश्रम की ओर लौटते थे। साथ ही उनके वर्णनों से यह भी प्रतीत होता है कि उनका राजकीय जीवन से अवश्य प्रगाढ़ सम्बन्ध रहा होगा और उन्होंने राजधानी के वैभव एवं विलास की उपादेयता व हेयता का विवेचन भी किया है। भर्तृहरि के तीनों शतकों में काव्य प्रतिभा का भी वाक् निदर्शन है और उनमें एक की प्रांजल शैली तथा सुन्दर पद-ललित्य के भी दर्शन होते है तथा उदाहरणों की अनुरूपता एवं सूक्तियों की कमनीयता के कारण उन्हें लोक में पर्याप्त प्रसिद्धि भी प्राप्त हुई है। इस इकाई के माध्यम से आप उनके जीवन परिचय तथा उनके द्वारा रचित शतकत्रय का विस्तृत ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।

2.6 शब्दावली

स्मितेन	मुस्कुराहट से,
लज्ज्या	लज्जा से
विलासपूर्ण	कामवासना से युक्त
कपोल	गाल
तेजस्वी	अत्यन्त तेज वाला
बौद्धारः	ज्ञानी जन
सुभाषित	अच्छी बाते
श्मशान	मरघट मे

2.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

(1) क (ब) (ख) अ (ग) द

(2) क (×) (ख) (√) (ग) (√)

(3) क वीरसेन (ख) भर्तृहारी (ग) सौ श्लोक

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शतकत्रयम्-गंगासहाय प्रेमी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास-पं॰ बलदेव उपाध्याय
3. नीतिशतक-श्रीमती शोभा सत्यदेव

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भर्तृहरि के जीवन परिचय एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए ?
2. भर्तृहरि के शतकत्रय का विस्तृत परिचय दीजिए ?

इकाई - 3. पण्डित राज जगन्नाथ का विस्तृत परिचय एवं साहित्य में योगदान

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 प० राज जगन्नाथ का जीवन परिचय
3.4 पं० राज जगन्नाथ का साहित्य में योगदान
    3.4.1 पं० राज जगन्नाथ का कृतित्व
    3.4.2 पं० राज जगन्नाथ की काव्य सम्बन्धी अवधारणा
    3.4.3 पं० राजजगन्नाथ की रस सम्बन्धी अवधारणा
    3.4.4 पं० राजजगन्नाथ की काव्य गुण सम्बन्धी अवधारणा
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने विशाखदत्त एवं भर्तृहरि के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का अध्ययन किया। इस इकाई में आप पण्डितराज जगन्नाथ के विषय में अध्ययन करेंगे। काव्यशास्त्र की परम्परा में पण्डितराज जगनाथ का स्थान शीर्षस्थानीय है। यह दक्षिणात्य ब्राह्मण विद्वान की दृष्टि से मम्मट तथा विश्वनाथ की श्रेणी के विद्वान थे। पण्डितराज दिल्लीश्वर शाहजहाँ तथा उसके पुत्र दारा के प्रेमपात्र रहे हैं दोनों के संबंध में आपने प्रशंसापरक रचनाएं की है।

शाहजहां ने इन्हें पण्डितराज की उपाधि से विभूषित किया। इस आधार पर इनका समय हम सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध स्वीकार कर सकते है। काव्य-शास्त्र की दृष्टि से आपकी 'रसगंगाधर अपूर्ण होने पर भी विद्वत्तापूर्ण कृति है। इस ग्रन्थ में दो 'आनन' है, प्रथम आनन् में अन्य विद्वानों ने काव्य लक्षणों का खण्डन कर 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' की काव्य को लक्षण प्रतिपादित किया गया है। काव्य हेतुओं में प्रतिमा में मुख्य मानकर काव्य के उत्तमोतम्, मध्यम, अधम भेद माने है। द्वितीय आनन में ध्वनि भेदों के सहित अभिधा, लक्षणा एवं स्तर अलंकारों का विवेचन किया है।

इस इकाई के माध्यम से पं. राज जगन्नाथ के जीवन एवं उनके प्रमुख कार्यों के बारे में अध्ययन करने के उपरान्त यह पूर्ण रूप से निर्धारित कर सकेगें कि काव्यशास्त्र में पण्डित राज जगन्नाथ का योगदान किस प्रकार से अतुलनीय है।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई के माध्यम से आप पं0 राज जगन्नाथ के विषय में सुलभता से जान सकेगें।
- जगन्नाथ जी का साहित्य में योगदान क्या है ,बता सकेगें।
- काव्यशास्त्र में पण्डितराज का महत्व बता सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई का सारांश लिख सकेंगे।

3.3 पण्डितराज जगन्नाथ का परिचय

आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ नैसर्गिक कवित्वसम्पन्न काव्यशास्त्रीय आचार्य थे। आन्ध्रप्रदेश इनकी जन्मभूमि थी। यह तैलंग ब्राह्मण थे। यह जगन्नाथकृत आसफविलास के आरम्भ में ही लिखा है-''तैलश्कुलावतंसेन पण्डितराज जगन्नाथेन''। इनके पिता पेरुभट्ट महान् विद्वान् थे, इसका प्रमाण प्राणभरण के आदि में लिखा है-''श्रीमत्पेरमभट्सूरितनयः। जिन्होंने ज्ञानेन्द्रभिक्षु से वेदान्त, माहेन्द्र पण्डित से न्याय-वैशेषिक, खण्डदेव उपाध्याय से मीमांसा और शेष वीरेश्वर का अध्ययन किया था और सर्वविद्याधर थे। इसका वर्णन रसगंगाधर के आदिभाग में उपलब्ध है। पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने पिता से अध्ययन किया था और उनके गुरु शेष वीरेश्वर से भी पढ़ा था। ''अस्मदगुरु पण्डितवीरेश्वराणाम्''- मनोरमाकुचमर्दन के प्रारम्भ में वर्णन है। ये व्याकरण, दर्शन और साहित्यशास्त्र के उच्चकोटि के विद्वान् थे। ये प्रतिभाशाली,

प्रत्युत्पन्नमति, समयपरीक्षक, युगद्रष्टा और प्रभावशाली पण्डित थे । तरुण होते ही ये विद्वान् हो गये और विद्वान् होते ही दिल्लीश्वर-शाहजहाँ के कृपापात्र होकर पण्डितराज की पदवी प्राप्त कर ली-इन्होंने भामिनीविलास में लिखा है-''दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः''। इन्होंने 'आसफविलास' के आरम्भ में लिखा है कि-''मर्त्तिमतेव नवाब आसफखानमनः प्रसादेन द्विजकुलसेवा-हेवाकि-वाङ्मनःकायेन माथुरकुलसमुद्रन्दुना रायमुकुन्देनादिष्टेन श्रीसार्वभौमश्री शाहजहाँ-प्रसादादधिगमत- 'पण्डितराज' पदवी विराजितेन तैलंगकुलावतंसेन पण्डितराजजगन्नाथेन आसफविलासाइत्येयंमाख्यायिका विरमीवत्''।

वहाँ कुछ दिन शाहजहाँ तथा उसके पुत्र दाराशिकोह के आश्रय में अपना 'नवीनवयः' (युवावस्था का पूर्वार्ध, 30 वर्ष तक) सुखपूर्वक बिताया था-''दिल्ली-वल्लभ-पाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयं''(भामिनीविलास)। जगदाभरण में जगन्नाथ ने दाराशिकोह का वर्णन किया है । इससे जान पड़ता है कि 1640 ई० के बाद ये दिल्ली से निकल पड़े, उस समय यदि इनकी आयु 30 वर्ष माने तो इनका जन्मसमय 1610 ई० अनुमानित होता है ।

ये अप्पयदीक्षित और भट्टोजिदीक्षित के उत्तरसम-सामयिकविरोधी थे तथा इनके ग्रन्थों पर स्वतन्त्ररूप से खण्डन-ग्रन्थ लिख गये थे । अप्पयदीक्षित के भ्रातुष्पौत्र एवं शिष्य नीलकण्ठ दीक्षित ने 1638 ई० में नीलकण्ठविजय काव्य की रचना की थी, जिस समय दीक्षितजी परम वृद्ध रहे होंगे । सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजिदीक्षित के गुरु शेषकृष्ण के पुत्र शेषवीरेश्वर पण्डितराज के एवं उनके पिता पेरुभट्ट के गुरु थे । बादशाह शाहजहाँ के साथ पण्डितराज ने कश्मीर की यात्रा की थी और वहाँ के नवाब आसफखान द्वारा बादशाह के सत्कारादि का वर्णन इन्होंने 'आसफविलास' में किया है । विद्वान् होते ही जगन्नाथ राजाश्रय को प्राप्त करने बीकानेर गये । वहाँ के राजा जगत सिंह की प्रशंसा में इन्होंने जगदाभरणकाव्य (53 पद्यमात्र) की रचना की । इन्हीं जगत सिंह के पिता कर्ण सिंह के आदेश से मैथिल गशनन्द कवीन्द्र ने कर्णभूषण (रसनिरूपण) ग्रन्थ की रचना की थी । किंवदन्ती है कि वहाँ से ये जयपुरनरेश जय सिंह की सभा में पधारे । वहाँ मुल्लाओं के दो आक्षेपों के निराकरण हेतु पण्डितसभा हुई थी; पर समाधान नहीं हो रहा था । पण्डितराज ने समाधान का वचन दिया और कहा कि 'एक आक्षेप का उत्तर मैं तुरन्त दे सकता हूँ और दूसरे का उत्तर अरबी-फारसी पढ़कर दूँगा । वहाँ इन्हें फारसी पढ़ाने की व्यवस्था की गई और कुछ ही दिनों में ये दस भाषा के पारंगत हो गए। उक्त आक्षेपों का उत्तर देने हेतु इन्हें दिल्ली बादशाह के दरबार में भेजा गया। इनके समाधान से सभी प्रसन्न हो गये ।

आक्षेप-(1) राजा जय सिंह आदि वास्तविक क्षत्रिय नहीं है, क्योंकि परशुराम ने जब इक्कीस बार पृथ्वी को निः क्षत्रिय कर दिया तो क्षत्रिय आये कहाँ से ?

समाधान-परशुराम ने जब पहली बार पृथ्वी को निः क्षत्रिय कर दिया, तो दूसरी बार के लिए क्षत्रिय कहाँ से आए ? यह इक्कीस बार कहना ही प्रमाणित करता है कि संहार के बाद भी बहुत क्षत्रिय बचे रहे, जो इन राजाओं के पूर्व थे ।

आक्षेप-2, अरबी भाषा संस्कृत से प्राचीन है ।

समाधान-मुसलमानों के 'हदास' धर्मग्रन्थ में लिखा है कि-'मुसलमान हिन्दुओं से विपरीत

आचरण करें, यही उनका धर्म है'। इस वाक्य से ही सिद्ध होता है कि हिन्दू धर्म मुसलमानों के धर्म से प्राचीन है और स्वतः सिद्ध है कि उन हिन्दुओं की भाषा भी अरबी से प्राचीन है। दिल्ली दरबार में रहकर पण्डितराज ने एक परमरमणीय यवनी से प्रेम किया और बादशाह की कृपा से वह इन्हें प्राप्त हो गई। इसका प्रमाण यह है कि-

न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदापि।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तहस्त, 'लवंगी कुरंगी दृगंगी करोतु ।।

यह समाचार देशभर में फैल गया और इन्हें पण्डितों ने जातिच्युत घोषित कर दिया। इन पण्डितों में अप्पयदीक्षित और भट्टोजिदीक्षित प्रमुख थे। अतः इनसे बैरभाव हो गया था कुछ दिनों के बाद यह यवनी, जिसका नाम 'लवंगी' था, असमय में ही विदश्ता हो गई और पण्डितराज ने विरक्तभाव से दिल्ली को छोड़ दिया। ये यवनी सम्पर्क से अपने को स्वयं पापी समझने लगे-

सुरधुनिमुनिकन्ये! तारथेः पुण्यवन्तं
स तरित निजपुण्यैस्तत्र किं ते महत्त्वम्।
यदि हि यवनकव्या-पापिनं मां पुनीहि
तदिह तव महत्त्वं तन्महत्त्वं महत्त्वम् ।। (रसलहरी)

कुछ समय पण्डितराज ने नेपाल के समीप कूचविहार (कामरूप) के राजा प्राणनारायण (1633-66ई०) के आश्रय में भी रहे, जहाँ 'प्राणाभरण' की रचना की। यह ग्रन्थ वही है जिसे पूर्व में 'जगदाभरण' कहा गया है, फर्क इतना ही है कि वहाँ जगत सिंह के स्थान में 'प्राणनारायण' रख दिया गया है। इस राजा का वंश इस प्रकार है-विश्व सिंह-मल्लदेव (नरनारायण)-लक्ष्मीनारायण-वीरनारायण- प्राणनारायण। इनमें मल्लेदव के आश्रित काव्यकौमुदीकार देवनाथ ठक्कुर (काव्यप्रदीपकार गोविन्द ठक्कुर के पुत्र) थे। वहाँ से लौटकर ये काशी में रहने लगे। अन्य राजाओं का आश्रय इन्हें तुच्छे दिखने लगा। ये लिखते हैं-

दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः।
अन्यैनृपालैः परिदीयमानं शाकायं वा स्याल्लवणाय वा स्यात् ।।

रसगंगाधर के मंगलाचरण आदि से ज्ञात होता है कि पण्डितराज वैष्णव थे, हालॉकि अन्य देवताओं की स्तुति भी इनको प्राप्त है। इनका जीवन यद्यपि उल्लासमय रहा, पर इन पर बड़े-बड़े अनर्थपात हुए-युवावस्था में ही पाणिगृहीती 'करुण विलास' में उन्होंने लिखा है-

धृत्वा पदस्खलनभीतिवशत् करं मे
या रूढत्रवत्यसि शिलाशकलं विवाहे।
सा मां विहाय कथमद्य विलासिनि! द्याम्
आरोहसीति हृदयं शतधा प्रयाति ।।

स्वजातीय पत्नी और पाणिगृहीता (यवनी प्रेयसी) का देहान्त हो गया। युवक पुत्र स्वर्गवासी हो गया। यह रसाशधर-प्रत्यनीक अलंकार के उदाहरण में पुत्रशोक का वर्णन। यवनीसम्पर्क-दोष से पण्डितों द्वारा अपमानित हुए और अन्त में विरक्त होकर गंगा के शरण में गंगालहरी की रचना करते हुए गंगालाभ कर लिया। ये ब्रह्मतेज से युक्त थे किंवदन्ती है कि जब यवनी इनके

शयनकक्ष में आयी तो उसे हुआ कि मैं जल जाऊँगी और वह लौट गई। बादशाह के दरबार में पण्डितराज के इस ब्रह्मतेज को कम करने का प्रश्न उठ गया। किसी पण्डित के कहने से इन्हें हुक्के के पानी से नहलाया गया और तब यवनी इनके पास जा सकी। पण्डितराज बहुत गर्वीले स्वभाव के थे और यह गर्व उनका यथार्थ था, परन्तु विद्वत्समाज इन्हें शास्त्रोद्धत कहता है। वे न केवल 'अलंकारान् सर्वान् अपि मलितगर्वान् रचयुत'' जैसी उक्ति रखते हैं, अपितु अपनी कविता की स्वयं ही अत्यधिक प्रशंसा करते हैं-

धुर्यैरपि माधुर्यैर्द्राक्षा-क्षीरेषु-माक्षिक-सुधानाम्।
वन्द्यैव माधुरीयं पण्डितराजस्य कवितायाः।।

ये न केवल अप्पयदीक्षित या भट्टोजिदीक्षित का खण्डन दर्पपूर्ण वाणी से करते हैं, वरन् आनन्दवर्धन, मम्मट आदि की तीखी आलोचना में भी ये पीछे नहीं रहे। परन्तु अन्तिम अवस्था में इन्हें अपने कृत्यों पर पश्चाताप हुआ कि क्यों हमने विद्वानों का अनादर किया ? क्यों यवनीसम्पर्क किया ? और इस विरक्ति के साथ संसार से ऊबकर भगवती भागीरथी गंगा के शरण में पहुँचे। पर उस समय में भी अपनी प्रकृति (स्वभाव) ने इन्हें नहीं छोड़ा और ये गर्व से गंगा नदी की सबसे ऊपरी सीढ़ी पर बैठ गये ओर बोले-'माता गंगा के लिए मैं इतनी दूर से आया हूँ तो यह माता पुत्र के लिए थोड़ी दूर भी ऊपर नहीं होंगी ? पण्डितराज गंगालहरी के एक-एक पद्य रचते व सुनाते थे और गंगा एक-एक सीढ़ी ऊपर आ रही थी और अन्तिम पद्य समाप्त होते ही एक ऐसा तरंग आया जो पण्डितराज को समेटे हुए प्रवाह में विलीन कर लिया, माता ने पुत्र को गोद में ले लिया। इनके सम्बन्ध में और भी कुछ-लवंगी के ऊपर यह इतने आसक्त थे कि उसके बिना इन्हें तनिक भी चैन नहीं था और स्वर्ग का सुख भी तुच्छ प्रतीत होता था-

यवनी नवनीतकोमलाशी शयनीये यदि नीयते कदाचित्।
अवनीतलमेव साधु मन्ये न वनी माधवनी विनोदहेतुः ।।
यवनीरमणी विपदः शमनी कमनीयतया नवनीसमा।
उहि-ऊहि वचोऽमृतपूर्णमुखी स सुखी जगतीह यद गता।।

इत्यादि अनेक श्लोक पण्डितराज ने इस यवनकन्या के विषय में कहे है। अपना यौवनकाल इन्होंने इस यवनकन्या के साथ दिल्ली में बिताया। ढलती उमर में यौवन का नशा उतरने पर इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए 'मधुपुरी मध्ये हरिः सेव्यते' मथुरा आकर कृष्ण की आराधना में लग गये और अन्त समय में (अर्थात् काशी जाने से पूर्व) 'यमुनावर्णनम्' तथा 'यमुना लहरी' की रचना की थी। अलंकारशास्त्र के सम्बन्ध में इन्होंने जो ग्रन्थ लिखा, उसका नामकरण 'रसगंगाधर' है। यह प्रौढ़ और विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है। इनमें सारे उदाहरण उन्होंने स्वयं अपने बनाकर दिये हैं। इससे स्पष्ट है ग्रन्थरचना क्रम में सबसे अन्त है इस बात का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है-

निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित्।
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धः

कस्तुरिकाजननशक्तिभृता मृगेण।।

किन्तु दुर्भाग्य है कि पण्डितराज का यह ग्रन्थ अधूरा है। इसमें केवल दो आनन हैं। प्रथम आनन में अन्य सब काव्यलक्षणों का खण्डन करके 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' को काव्य का लक्षण स्थापित किया है । काव्य के हेतुओं में प्रतिभा को ही मुख्य हेतु ठहराया गया है और 1. उत्तमोत्तम, 2. उत्तम, 3. मध्यम तथा 4. अधम ये चार काव्य के भेद बतलाये हैं। द्वितीय आनन में ध्वनि के भेदों को दिखलाकर अभिधा तथा लक्षणा का विवेचन किया है। उसके बाद 70 अलंकारों का वर्णन किया है। उत्तरालंकार के विवेचन के बाद यह ग्रन्थ बीच में ही समाप्त हो गया है।

3.4 पं० राजजगन्नाथ जी का साहित्य में योगदान

इनका योगदान आगे स्पष्ट किया गया है।

3.4.1 पण्डितराज जगन्नाथ कृत रचनायें

1. श्रृंगारविलास-180 पद्य।
2. आसफविलास-गद्याख्यान, शाहजहाँ की काश्मीरयात्रा एवं वहाँ के नवाब आसफखान से मुलाकात।
3. करुणविलास (पत्नी वियोग में विलाप) 19 पद्य।
4. प्रास्ताविक विलास-122 पद्य।
5. शान्तिविलास-निर्वेद पद्य-44।
6. जगदाभरण-53 पद्य। विकानेर के राजा जगत सिंह की प्रशंसा।
7. प्राणाभरण-53 पद्य कामरूप (कुचविहार) के राजा प्राणनारायण की प्रशंसा । यह 'जगदाभरण' में ही नाम परिवर्तन करके प्रस्तुत किया गया है।
8. यमुनावर्णन-गद्य, अनुपलब्ध, रसगंगाधर के मध्यम काव्य के उदाहरण में इसकी पंक्ति उद्धृत है।
9. लहरी-पंचक-

(1) गंगालहरी-53 पद्य, इसे पीयूषलहरी भी कहते हैं-

''इमां पीयूष लहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम्''॥

(2) यमुना लहरी-11 पद्य, इसे अमृतलहरी कहते हैं।

(3) करुणालहरी-55 पद्य, कृष्ण की स्तुति।

(4) लक्ष्मीलहरी-41 पद्य।

(5) सुधालहरी-30 पद्य, सूर्यस्तुति।

10. भामिनीविलास-588 पद्य।
11. चित्रमीमांसा खण्डनम्-अप्पयदीक्षितकृत चित्रमीमांसा अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ का खण्डन।
12. मनोरमाकुचमर्दनम्-भट्टोजिदीक्षित प्रौढमनोरमा (व्याकरणशास्त्रीय व्याख्या ग्रन्थ) का खण्डन।
13. रसगंगाधर-अलंकारशास्त्रीय महान् ग्रन्थ।

3.4.2 काव्य सम्बन्धी अवधारणा

कवि के कर्म को काव्य कहते है। किसी विषय का चमत्कारपूर्ण वर्ण करने वाला विद्वान 'कवि' कहलाता है और उसकी कृति (रचना) को काव्य कहते है। इसी अभिप्राय को व्यक्त करते हुए मम्मट ने कहा है कि लोकोत्तरवर्णन में निपुण कवि का कर्म कृति काव्य है।

'लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम्'।

इस प्रकार अलौकिक चमत्कारपूर्ण वर्णन में निपुण कवि की सौन्दर्यपूर्ण रचना (कृति) ही काव्य है। सर्वप्रथम अग्निपुराणकार ने काव्य का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए कहा है कि ''अभीष्ट अर्थ को संक्षेप में प्रतिपादन करने वाली पदावली को 'वाक्य' कहते हैं और स्फुट अलंकार से युक्त, गुणवत् एवं दोष-रहित वाक्य को 'काव्य' कहते है''।

संक्षेपपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद् दोषवर्जितम् ।।

(अग्निपुराणोक्तो काव्यालंकारशास्त्रम्)

इस प्रकार अग्निपुराणकार के अनुसार स्मुरद् अलंकार, गुणवत् एवं दोष-रहित इष्ट अर्थ को प्रतिपादन करनेवाली पदावली (वाक्य) 'काव्य' है।

अग्निपुराणकार के पश्चात् दण्डी ने अग्निपुराण के लक्षण में से 'संक्षेपाद्वाक्यम' के स्थान पर 'शरीर तावत्' जोड़कर इष्ट अर्थ से व्यवच्छिन्न पदावली की काव्य का शरीर बताया है।

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'।

इसके अतिरिक्त दण्डी के 'तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्जन' तथा 'तैः शरीर च काव्यानामलंकारश्च दर्शिताः इन वाक्यों के उल्लंघन के द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है कि दण्डी ने अग्निपुराण के अनुसार ही अलंकारयुक्त, दोष-रहित मनोहर अर्थ की प्रतिपादिका 'पदावली' की काव्य माना है। भामह ने भी 'सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्' तथा 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम' शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' लिखकर उपर्युक्त कथन को स्वीकार किया है। वामन उपर्युक्त काव्यलक्षण को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''काव्यं ग्राह्यरात्'। सौन्दर्यमलंकार व दोषगुणालंकारहानादानाभयाम्। रीतिरात्मा काव्यस्य। विशिष्टपदरचना रीतिः। विशेषो गुणात्मा। अत्र च काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयों शब्दार्थयोर्वते।'' इस प्रकार वामन के मतानुसार दोष के परित्याग और गुणालंकार से युक्त सुन्दर शब्द और अर्थ काव्य हैं। आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा और शब्दार्थयुगल को काव्य का शरीर माना है (शब्दार्थशरीर तावत्काव्यम्) उनके मतानुसार सहृदयहृदयश्लाघ्य अर्थ व्यंग्यार्थ है और वह व्यंग्यार्थ रसादिरूप है और वह रसादिरूप व्यंग्यार्थ काव्य की आत्मा है और व्यंग्यार्थ से युक्त शब्द और अर्थ काव्य का शरीर है। राजशेखर ने काव्य-पुरुष की कल्पना कर शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर और इसको काव्य की आत्मा कहा है (रसा आत्मा)। कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है और वैदग्धीभणिति रूप शब्दार्थ को काव्य माना है -

शब्दार्थो सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदारह्लादकारिणि ।।

भोज ने अग्निपुराण का अनुसरण करते हुए निर्दोष, गुणयुक्त, अलंकारों से अलंकृत और रस-युक्त वाक्य को काव्य माना है।

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलतम्।

मम्मट एक ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने सुव्यवस्थति एवं परिमार्जित काव्य लक्षण प्रस्तुत किया है-

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।

मम्मट ने दोष-रहित, गुणसहित, सर्वत्र सालंकाररहित शब्द और अर्थ को काव्य माना है।

जयदेव मम्मट पर आक्षेप करते हुए कहते हैं कि जो मम्मट अनलंकृती (अलंकार-रहित) शब्द और अर्थ को काव्य स्वीकार करते हैं वे अग्नि को शीतल क्यों नहीं मानते ?

अंगीकरोति यः कार्य काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमलकृती ।।

विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यो के मतों को खण्डन करके रसात्मक वाक्य को काव्य स्वीकार किया है (रसात्मकं वाक्यं काव्यम्) विश्वनाथ के अनुसार शौद्धोदनि ने भी रसादिमद् वाक्य को काव्य माना है (काव्यं रसादिमद्वाक्यम्) । उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर विश्वनाथ ने रसादिमद् वाक्य को काव्य स्वीकार किया है।

पण्डितराज जगन्नाथ का काव्यलक्षण

पण्डितराज, जगन्नाथ ने 'रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है-

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

रमणीय अर्थ वह है जिसके बार-बार अनुसन्धान से अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। लोकोत्तरत्व लौकिक सुख से भिन्न चमत्कार का पर्याय आन्तरिक अनुभव की वस्तु है। जैसे 'आपके लड़का पैदा हुआ है अथवा ''मैं आपको धन दूंगा, इत्यादि वाक्यों से हमे आनन्द तो प्राप्त होता है किन्तु यह आनन्द लोकोत्तर (अलौकिक) नहीं है। अपितु लौकिक है अतः इसे हम काव्य नहीं कह सकते। अतः जिस शब्द अथवा जिन शब्दों के अर्थ की भावना करने से किसी अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, उसे 'काव्य' कहते हैं।

मम्मट के काव्य-लक्षण पर आक्षेप करते हुए पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं कि जो काव्यप्रकाशकार आदि प्राचीन आचार्य शब्द और अर्थ दोनों को काव्य मानते हैं, वह उचित नहीं है। क्योंकि यदि शब्दार्थयुगल को काव्य मानते हैं तो लोक व्यवहार में 'काव्य उच्च स्वर से पढ़ा जा रहा है, काव्य से अर्थ समझा जाता है, काव्य सुना, किन्तु अर्थ समझ में नहीं आया इत्यादि सार्वजनिक व्यवहार से शब्द को ही काव्य कहा जा सकता है । यदि कहा जाय कि व्यवहार में काव्य के लिए केवल शब्द का प्रयोग लक्षण से कर लेना चाहिए, ठीक है, यह हो सकता है। किन्तु तभी, जब किसी दृढ़तर प्रमाण से यह सिद्ध हो जाय कि काव्य शब्द का प्रयोग शब्दार्थयुगल के लिए होता है, वही ता हमें नहीं दिखाई देता और बिना प्रमाण के कोई बात प्रामाणिक नहीं होती। अतः लोक व्यवहार में प्रमाण के द्वारा हमारे मत में केवल शब्दार्थ-विशेष ही काव्य सिद्ध होता है, शब्द और अर्थ में नहीं। अतएव वेद, पुराण आदि के लक्षणों में भी यही स्थिति है, अन्यथा बड़ी दुर्व्यवहार हो जायेगी।

अब दूसरा प्रश्न उठता है कि उन स्वाद (रस) का उद्बोध नही काव्य का प्रयोजन है और यह आस्वादोद्बोधक शब्द और अर्थ दोनों में समान भाव से रहता है, अतः शब्द और अर्थ दोनों को ही काव्य मानना उचित है। इस पर पण्डितराज कहते हैं कि यदि आस्वादोद्बोधक शब्द और अर्थ दोनों में समान भाव से रहता है, अतः शब्द और अर्थ दोनों को ही काव्य मानना उचित है। इस पर पण्डितराज कहते हैं कि यदि आस्वादोद्बोधक वस्तु को काव्य मानते है तो आस्वादोद्बोधक होने के कारण राग भी काव्य कहलाने लगेगा, क्योंकि ध्वनिकार, आदि आचार्यों ने राग को रस-व्याज्जक माना है और अधिक क्या कहें? नाट्य के नृत्य, गीत, बाद्य आदि सभी अंगकाव्य मान लिये जाये, क्योंकि वे भी रसोद्बोधन में समर्थ है। और जो मम्मट आदि आचार्य शब्द और अर्थ दोनों को काव्य मानते हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या शब्द और अर्थ दोनों के सम्मिलित रूप को काव्य कहेंगे अथवा अलग-अलग? यदि दोनों के सम्मिलित रूप को काव्य कहते हैं तो जिस प्रकार दो एक के सम्मिलित रूप को दो के अवयवभूत प्रत्येक एक को दो नहीं कह सकते, उसी प्रकार श्लोक के एक वाक्य को को काव्य नहीं कह सकते, जबकि व्यवहारतः श्लोक के एक वाक्य को भी काव्य कहा जाता है। यदि आप कहें कि दोनों अलग-अलग काव्य हैं, तो एक ही श्लोक में दो काव्य का व्यवहार होने लगेगा। अतः वेद, पुराण, शास्त्र के समान काव्य को भी शब्दनिष्ठ मानना उचित होगा।

नागेशभट्ट 'उचिता' इस प्रतीक को लेकर पण्डितराज के मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार 'काव्य पढ़ा' या 'काव्य सुना' यह व्यवहार होता है, उसी प्रकार 'काव्य समझा' यह भी व्यवहार होता है और समझना अर्थ का होता है, शब्द का नहीं। वेदादि शास्त्र भी शब्दार्थोभय वृत्ति के प्रतिपादक हैं। अतएव 'तदधीते तद्वेद' इस सूत्र का भाष्य संगत होता है। उक्त सूत्र के भाष्य में पातंजलि ने वेदादि को शब्दार्थोभयनिष्ठ माना है। जिस प्रकार दो के अवयव एक को दो नहीं कहा जाता सकता (एको न द्वौ), इसी प्रकार शब्दार्थोभयनिष्ठ काव्य के अवयव शब्द और अर्थ प्रत्येक के लिए शब्द व्यवहार नहीं हो सकता। यहँ पर लक्षणा के द्वारा काम चल जायगा। अतः शब्द और अर्थ के सम्मिलित रूप से काव्य मानने में कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार काव्यलक्षण में गुण और अलंकार का सन्निवेश भी उचित नहीं प्रतीत होता। क्योंकि 'उदितं मण्डलं विभोः इस वाक्य को दूती के द्वरा अभिसरण विधि में अभिसारिका के द्वारा अभिसर निषेध में विरहिणी के द्वारा जीवनभाव (प्राण छोड़ने) के अर्थ में कहे जाने पर भी गुणालंकार के अभाव में काव्य नहीं होगा। इसी प्रकार 'गतोऽस्तमर्कः इस वाक्य के सन्ध्या के समय किसी दूती के द्वारा नायिका से कहे जाने पर अभिसरण के विधान में व्यङ्ग्यार्थ होने पर भी गुणालंकार के अभाव में काव्य नहीं होगा। जबकि उसमें काव्यत्व है। दूसरे जिसे आप काव्य कहते हैं उसे भी कोई काव्य मानने के लिए तैयार न होगा। क्योंकि 'चमत्कार ही काव्य का जीवन है' वह दोनों में समान है। दूसरे गुणत्व और अलंकारत्व का अनुगम है क्योंकि आज तक यह निश्चित नहीं हो सका है कि गुण अलंकार क्या हैं, कितने हैं? इस प्रकार जो अनगिनत (अनिश्चित) है, उनका लक्षण में सन्निवेश करना उचित नहीं है।

यदि यह कहा जाय कि जैसे कि एक ही वृक्ष के मूल (जड़) में पक्ष का संयोग है और दूसरे स्थान पर (शाखा में) संयोग का अभाव है, फिर भी सर्वत्र संयोग न होने पर, एक स्थान पर संयोग होने के कारण 'वृक्षः संयोगी' (यह वृक्ष संयोग वाली है) यह व्यवहार होता है। उसी प्रकार एक ही वाक्य अंशभेद से दोष-रहित, होने के कारण 'दुष्ट काव्य कहलायेगा। किन्तु यह कथन भी ठीक नहीं है। क्योंकि जैसे 'वृक्ष के जड़ में पक्षी बैठा है और शाखा पर नहीं' सब लोगों को यह प्रतीति होती है। उसी प्रकार 'इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में काव्य है और उत्तरार्द्ध में नहीं' इस प्रकार के दृष्टान्त के द्वारा सार्वजनिक अनुभव न होने से दोषाभाव की अव्याप्यवृत्तिता सिद्ध होती है। अतः उक्त दृष्टान्त के अनुसार 'दोष-रहित दुष्ट' यह व्यवहार नहीं हो सकता है।

एक बात और भी है कि जिस प्रकार धैर्य आदि आत्मा के धर्म है, उसी प्रकार गुण भी काव्यात्मा रस के धर्म है और जिस प्रकार हारादि अलंकार शरीर को शोषित करते है, उसी प्रकार अनुप्रासोपमादि अलंकार काव्य-शरीर को अलंकृत करने वाले हैं। अतः जिस प्रकार शौर्यादि अथवा हारादि शरीर के निर्माण में उपयोगी नहीं है उसी प्रकार गुण और अलंकार भी काव्य के स्वरूप निर्धारण में उपयोगी नहीं है।

अब पण्डितराज जगन्नाथ, साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ, के काव्य-लक्षण की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि यदि विश्वनाथ कविराज रसात्मक वाक्य को 'काव्य मानते हैं तो वस्तु-प्रधान अथवा अलंकार प्रधान काव्य-काव्य नहीं कहलायेगे। यदि आप कहें कि यह हमको अभीष्ट है, हम उन्हें काव्य नहीं मानेंगे। सो यह भी उचित नहीं है, क्योंकि महाकवियों की चिरकाल से चली आ रही व्यावहारिक परम्परा उच्छिन्न हो जायेगी। उन लोगों ने समय-समय पर जो जल के प्रवाह, वेग, पतन, उच्छलन एवं भ्रमण तथा वानरों एवं बालकों की क्रीड़ाओं का वर्णन किया है, क्या वे सभी काव्य नहीं हैं ? यदि यह कहा जाय कि वहाँ वस्तु-प्रधान एवं अलंकार-प्रधान रचनाओं में भी परम्परा किसी न किसी प्रकार रसो का स्पर्श है ही, ऐसा मान लेने पर भी वे काव्य नहीं कहलायेगें क्योंकि ऐसी स्थिति में 'गौश्चरति' मृगो धावति' इत्यादि वाक्य भी काव्य कहलाने लगेंगे, क्योंकि विश्व की समस्त वस्तुएँ विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव हो सकती हैं। क्योंकि वहाँ किसी न किसी तरह रस का स्पर्श (सम्बन्ध) रहता ही है। अतः 'रसात्मक वाक्य' को काव्य मानना उचित नहीं है।

काव्य का कारण

पण्डितराज जगन्नाथ केवल प्रतिभा को काव्य हेतु मानते है। उनके अनुसार काव्य बनाने के लिए अनुकूल शब्दों एवं अर्थों की तत्काल उपस्थिति ही प्रतिभा है। 'प्रतिभा को ही आचार्यों ने शक्ति नाम से भी अभिहित किया हैं प्रतिभा और शक्ति एक ही सत्य हैं पण्डितराज के काव्य-हेतु पर विचार करने के पूर्व काव्य-हेतु के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती आचार्यो के मतों पर दृष्टिक्षेप करना आवश्यक प्रतीत होता है। पण्डितराज के पूर्ववर्ती आचार्यो में दो दल विद्यमान थे। एक दल था, जो केवल प्रतिभा को ही काव्य का प्रमुख कारण मानता था। इस मत के अनुयायी आचार्य वामन, रुद्रट, राजशेखर, पण्डितराज आदि है। दूसरा दल प्रतिभा के साथ-साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को जोड़कर प्रतिभा, व्युत्पत्ति ओर अभ्यास तीनों को काव्य का कारण मानता है। इस

मत के पोषक आचार्य भामह, दण्डी, बाणभट्ट, मम्मट, जयदेव आदि है।

सर्वप्रथम अग्निपुराणकार महर्षि व्यास ने काव्य-हेतुओं पर विचार किया है। उनके मतानुसार संसार में कवित्व-शक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। यदि शक्ति भी हो तो व्युत्पत्ति होना दुर्लभ है और व्युत्पत्ति का ज्ञान भी हो तो विवेक (अभ्यास) अत्यन्त दुर्लभ है-

कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।
व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः।।

अग्निपुराणकार के पश्चात भामह ने शक्ति (प्रतिभा) पर अधिक बल देते हुए काव्यविदुपासन एवं अनयनिबन्धावलोकन के द्वारा (निपुणता, व्युत्पत्ति) तथा काव्यक्रियादरः(विवेक, अभ्यास) तीनों को काव्य का हेतु माना है-

काव्यं तु जाये जातु कस्यचित्प्रतिभावतः।
शब्दभिधेये विज्ञाय कृत्य तद्विदुपासनम्।।
विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः।।

भामह के पश्चात् दण्डी ने नैसर्गिकी प्रतिभा के साथ-साथ निर्मलश्रुत (व्युत्पति) और अमन्दाभियोग (अभियास) तीनों को काव्य का हेतु माना है-

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्यः कारणं काव्यसम्पदः।
अमन्दश्चाभियोगऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः।।

रुद्रट ने शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों का काव्य का हेतु स्वीकार किया है-

त्रितयमदिं व्याप्रियते शक्तिव्युत्पत्तिरभ्यासः।।

आचार्य मम्मट ने शक्ति, निपुणता (युत्पति) और अभ्यास तीनों के सम्मिलित रूप को काव्य का हेतु स्वीकार किया है। इनके अतिरिक्त बाग्भट्ट, विद्याधर, अलंकारशेखर के रचियता केशव मिश्र आदि आचार्यो ने भी शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को काव्य का हेतु माना है। इस प्रकार त्रिहेतुवादी आचार्यों का मत है कि शक्ति (प्रतिभा), व्युत्पत्ति (निपुणता) और अभ्यास ये तीनों ही काव्य के निर्माण में हेतु हैं, कारण हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि एक वर्ग के आचार्य केवल प्रतिभा (शक्ति) को ही काव्य का एकमात्र हेतु मानते हैं। सर्वप्रथम प्रतिभा को ही काव्य का प्रमुख हेतु मानते हुए भामह कहते हैं कि प्रतिभा-सम्पन्न कवि ही सर्वथा निर्दोष काव्य की रचना कर सकता है। रुद्रट ने प्रतिभा को ही मात्र काव्य का हेतु माना है। वह प्रतिभा (शक्ति) दो प्रकार की होती है-

(1) सहज और (2) उत्पाद्य। इनमें सहज प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त अथवा अदृष्टजन्य होती है और उत्पाद्य प्रतिभा व्युतपत्तिजन्य होती है। उनके बाद वामन ने भी केवल प्रतिभा को ही काव्य का हेतु माना है (कवित्वबीजं प्रतिभानम्)। उनके अनुसार प्रतिभा ही कवित्व का बीज है। वह प्रतिभा पूर्वजन्म का संस्कार विशेष है जो ईश्वर प्रदत्त होती है, जिसके बिना काव्य बन पाता, यदि बन भी जाय तो वह उपहास का पत्र होता है (कवित्वबीजं संस्कारविशेषः कश्चित्। सस्माद्विना काव्यं ने निष्पद्यते, निष्पन्ने वा हास्यायतनं स्यात्)।

राजेशखर का कथन है कि केवल प्रतिभा (शक्ति) ही काव्य का हेतु है (सा (शक्तिः) केवलं काव्ये हेतुरिति यायाबरीयः) । उन्होंने अपने मत की पुष्टि में मेधावी, रुद्र तथा कुमारदासादि का उदाहरण प्रस्तुत किया है जिन्होंने जन्मान्ध से ही केवल प्रतिभा के द्वारा काव्य का निर्माण किया था । राजशेखर के अनुयायी बाणभट्ट (द्वितीय) ने यहाँ तक कहा है कि प्रतिभा ही केवल काव्य-निर्माण में हेतु है व्युत्पत्ति और अभ्यास तो उसी के संस्कारक हैं काव्य के हेतु नहीं हैं (प्रतिभैव च कबीनां काव्यकरणाकरणम् । व्युत्पत्तिभ्यासौ तस्या एवं संस्कारकाकरों न तु काव्यहेतुः) ।

पण्डितराज का मत

पण्डितराज जगन्नाथ का कहना है कि प्रतिभा ही एकमात्र वह शक्ति है जिसक कारण कवि काव्य-निर्माण में समर्थ हो सकता है। प्रतिभा के बल पर ही कवि भूत, भविष्य, वर्तमान की वस्तुओं एवं अनुभूत रमणीय प्रसंगों को चित्रवत् प्रस्तुत करके उसे सामान्य लोगों को लिए ग्राह्य बना देता है । पण्डितराज ने कवि की प्रतिभा के द्विविध कारणों का उल्लेख किया है-(1) किसी देवी-देवता या किसी महापुरुष के प्रसार से प्राप्त अदृष्ट शक्ति और (2) विलक्षण व्युत्पत्ति एवं काव्य-निर्माण के अभ्यास से प्राप्त शक्ति । किन्तु ये तीनों सम्मिलित रूप में हेतु नहीं हैं क्योंकि कई बालकों में भी व्युत्पत्ति और अभ्यास के बिना भी केवल महापुरुषों के प्रसाद से प्रतिभा उत्पन्न हुई देखी जाती है । यदि यह कहा जाय कि वहाँ हम पूर्वजन्म के विलक्षण व्युत्पत्ति और अभ्यास मान लेंगे किन्तु गौरवप्रमाणाभाव और कार्य के बिना तीनों के कारण मानन में उनकी उनकी जन्मान्तरीय कल्पना उचित नहीं प्रतीत होती । इस प्रकार पण्डितराज के मतानुसार मात्र प्रतिभा ही काव्य का हेतु है, व्युत्पत्ति और अभ्यास तो प्रतिभा के कारण है । इस प्रकार प्रतिभा के दो हेतु हैं-अदृष्टजन्य प्रतिभा और व्युत्पत्ति एवं अभ्यासजन्य प्रतिभा । इस प्रकार व्युत्पत्ति और अभ्यास प्रतिभा के कारण है काव्य के हेतु नहीं है ।

पण्डितराज के अनुसार काव्य-रचना के अनुकूल शब्दों और अर्थों की स्वाभाविक उपस्थिति 'प्रतिभा' हैं व्यक्तिविवेककार का कथन है कि ''कवि का रसानुकूल शब्दार्थों के चित्त में लीन हो जाना प्रतिभा है जो परमतत्त्व के स्पर्श से जागृत होती है ।''

(रसानुगुणशब्दार्थचिन्तनास्तिमितचेतसः।
क्षणं स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञैव प्रतिभा मता।।)

कवि कर सर्जनात्मक प्रतिभा के सम्बन्ध में अग्निपुराण का कथन है कि ''कवि अपार काव्य-संसार का रचयिता है, उसे जैसा कविता है, वही रूप प्रदान करता है । यदि कवि शृशरी से परिपूर्ण हो जाता है और यदि वह बीतराग है, तो काव्य-जगत वीतराग दिखाई देता है । इस प्रकार प्रतिभा काव्य-निर्माण का हेतु है जो अदृष्टजन्य होती है ।

काव्य के भेद

पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य के चार भेद किये हैं-

(1) उत्तमोत्तम

(2) उत्तम

(3) मध्यम

(4) अधम

(1) जहाँ पर शब्द और अर्थ अपने को गौण बनाकर किसी चमत्कारजनक अर्थ को अभिव्यक्ति करते हैं, उसे 'उत्तमोत्तम' काव्य कहते है।

(2) जहाँ पर व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कार जनक नहीं होता, उसे 'उत्तम काव्य' कहते हैं, , अर्थात् जहाँ पर व्यंग्यार्थ गौण (अप्रधान) हो जाता है और वाच्यार्थ अधिक चमत्कार जनक होता है, उसे उत्तम काव्य कहा जाता है। उसे ही मम्मट ने 'गुणीभूतव्यंग' काव्य कहा है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने व्यंग्यार्थ के अप्रधान (गौण) होने पर 'गुणीभूतव्यंग्य' कहा है।

(3) जहाँ पर वाच्यार्थ का चमत्कार व्यंग्य अर्थ में चत्मकार के साथ न रहे अर्थात् जहाँ व्यंग्य का चमत्कार स्फुट प्रतीयमान न हो, वाच्यार्थ का चमत्कार स्पष्ट प्रतीयमान हो वह 'मध्यम काव्य' होता है।

(4) जहाँ पर अर्थ का चमत्कार शब्द के चमत्कार को पुष्ट करने के लिए हो, उसे 'अधम' काव्य कहते हैं। मम्मट ने इसे 'शब्दचित्र' काव्य कहा है।

पण्डितराज जगन्नाथ का कहना है कि जहाँ पर ध्वनि-सौन्दर्य तथा अर्थचमत्कार से पूर्णतया विहीन शब्द का चमत्कार हो वहाँ 'अधमाधम' नामक पंचम-कोटि का काव्य भी माना जा सकता है। जैसे, एकाक्षर-पद्य, अर्थावृत्ति यमक, पù्बन्ध आदि। जिनका प्रयोग प्राचीन कवियों ने किया है। किन्तु काव्य-लक्षण को ध्यान में रखते हुए मैने उन्हें काव्य की कोटि में परिगणित नहीं किया है। कुछ आचार्य काव्य के चार भेद नहीं मानते उन्होंने उत्तम, मध्यम, और अधम इन तीन भेदों को ही स्वीकार किया है और शब्दचित्र एवं अर्थचित्र दोनों को एक ही श्रेणी (अधमकाव्य) में परिगणित किया है। किन्तु पण्डितराज का कथन है कि शब्दचित्र और अर्थचित्र दोनों को अधम काव्य की श्रेणी में रखना उचित नहीं है।

ध्वनि-काव्य के भेद

उपर्युक्त वर्गीकरण के पश्चात् जगन्नाथ ने उत्तमोत्तम ध्वनि भेद के असंख्य भेदों को दो वर्गों में विभाजित किया है-अभिधामूला ध्वनि और लक्षणमूला ध्वनि। इनमें अभिधामूला ध्वनि को विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि-काव्य और लक्षणामूला ध्वनि को अविवक्षितवाच्य ध्वनि कहते हैं। इनमें अभिधामूला ध्वनि के तीन पक्ष है- रसध्वनि, वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि। इनमें रसध्वनि को असलंक्ष्यक्रमध्वनि भी कहते है। इसमें वाड्.ग्य के पौर्वापर्य का ज्ञान नहीं रहता। 'रसध्वनि' शब्द से रस, भाव, रसाभास, भावभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसिन्ध और भावशबलता आदि का ग्रहण होता है। दूसरे लक्षणामूला ध्वनि के दो भेद होते हैं- अर्थान्तरसड्.क्रमितवाच्य और अत्यन्तरिस्कृत वाच्य। इस प्रकार ध्वनिकाव्य के पाँच भेद होते हैं। इनमें रसध्वनि' परम रमणीय होता है।

3.4.3 रसम्बन्धी अवधारणा

पण्डितराज जगन्नाथ ने मम्मट और अभिनवगुप्त के मत को प्रस्तुत कर फिर अपना मत प्रस्तुत किया है। 'रसो वै सः' इत्यादि श्रुति के अनुसार रत्यादि-विशिष्ट आवरण-रहित चैतन्य का नाम 'रस' है और चैतन्य के आवरण का भास हो जाना रस-चर्वणा है, रस का आस्वाद हैं यह

आस्वाद काव्य के व्यंज्जन-व्यापार के द्वारा उत्पन्न होता है। इस रस के आस्वादन में अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

कहा जाता है कि आरम्भ में रस-सिद्धान्त का चिन्तन प्रमुख रूप से नाट्याश्रित था, काव्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग आगे चलकर हुआ। आरम्भ में काव्यांग के रूप में तो बोध रस के महत्त्व का सहज बोध था, किन्तु सिद्धान्त के रूप में उसकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकी थी। (देखिये-संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास-डे, पृ॰ 19) काव्याश्रित रस के सम्बन्ध में प्रथम चर्चा अग्निपुराण में हुई, सम्भवतः तभी से काव्याश्रित रस-सिद्धान्त में चर्चा का विषय बना। किन्तु भरत के नाट्ययाश्रित रस-सिद्धान्त को काव्याश्रित रस-सिद्धान्त के मूल स्रोत के रूप में देखा जा सकता है।

अग्निपुराणकार ने रस और काव्य के परम्परा सम्बन्ध की एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है जिसे विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। अग्निपुराण में 'वाग्वैदग्ध्य की प्रधानता होने पर भी रस को काव्य की आत्मा कहा गया है (वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्)। रस के सम्बन्ध में अग्निपुराणकार ने एक विचित्र, किन्तु मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसके अनुसार परब्रह्म परमात्मा की सहज आनन्द की अभिव्यक्ति का नाम चैतन्य, चमत्कार अथवा रस है (चैतन्चमत्काररसाख्या)। उस चैतन्य रूप परब्रह्म का प्रथम विकार महत्त तत्त्व है, उस महत्त तत्त्व से अभिमान या अहंकार की अनुभूति होती है, महत्तत्त्व के समान अहंकार भी त्रिगुणात्मक है। जब रजस् एवं तमस् के संस्पर्श से रहित सत्त्व का उद्रेक होता है तब सहृदयों के द्वारा रसानुभूति होती है, यही अनुभूति ही आस्वाद है। यही चैतन्य, चमत्कार अथवा रस है। अग्निपुराण का यह रस-सिद्धान्त काव्याश्रित और नाट्याश्रित दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

अग्निपुराण के पश्चात् आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त ने काव्य में रस के महत्त्व को स्वीकारा और रस को काव्याश्रित सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठापित किया। किन्तु आनन्दवर्धन ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार नहीं किया। जबकि अभिनवगुप्त ने रस-सिद्धान्त को अधिक महत्व दिया और रस को काव्य का जीवन कहा (रसेनैव सर्वं काव्य जीवति)। उनके मतानुसार रस से शून्य काव्य कोई चीज नहीं है। (नहि तच्छून्यं काव्यं किच्चिदस्ति) । इसलिए रस ही वस्तुतः काव्य की आत्मा है, वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि तो सर्वथा रस के प्रति पर्यवसित होते हैं। (रस एवं वस्तुतात्मा। वस्त्वलंकारध्वनी तु रसं प्रति पय्रवस्येते)। विश्वनाथ ने इस रस-सिद्धान्त को जिसे अग्निपुराणकार ने आत्मा का रूप दिया और अभिनवगुप्त ने प्रतिष्ठा की तथा अधिक विकसित रूप में व्यवस्थित किया, उसे काव्य का जीवन बताया (रसात्मकं वाक्य काव्यम्) विश्वनाथ ने रस को सहृदय संवेद्य, अलौकिक काव्यार्थतत्त्व कहा है, किन्तु रस का आस्वादन सबको नहीं होता। रस का अनुभव उसी को होता है जिसके हृदय में सत्त्व का उद्रेक होता हैं रजोगुण और तमोगुण के संस्पर्श से रहित चित्त सत्त्व कहलाता है, उस सत्त्व के उद्रेक से सहृदयों के द्वारा अनुभूत रस अखण्ड, स्वयं प्रकाश एवं आनन्दमय इत्यादि स्वसंवेदनरूप है। उस समय किसी ज्ञेय वस्तु का संस्पर्श नहीं रहता। यह अनुभव अलौकिक चमत्कार अर्थात् सहृदय के चित्त का विस्तार है और वह चमत्कार ही रसानुभूति का प्राण है। पण्डितराज जगन्नाथ

ने अभिनवगुप्त एवं मम्मट के मत को उद्धृत कर अपना मत प्रस्तुत किया हैं मम्मट के अनुसार विभावादि व्यक्त स्थायीभाव रस है। 'व्यक्त' है अज्ञान रूप आवरण का नाश होने से चैतन्य का प्रकाशित होना। जिस प्रकार शराब आदि के द्वारा पिहित दीपक उस आवरण के हटा देने पर पदार्थो को प्रकाशित करता है और स्वयं भी प्रकाशित होता है। उसी प्रकार स्वप्रकाशानन्द रूप आत्म-चैतन्य भी आवरण के हट जाने पर विभावार्वाद संवलित इत्यादि को प्रकाशित करता है और स्वयं भी प्रकाशित होता है। इस प्रकार मम्मट और अभिनवगुप्त के अनुसार ''अज्ञान रूप आवरण से रहित चिद्धिशिष्ट (चैतन्य से युक्त) इत्यादि स्थायीभाव रस है। वस्तुतः 'रसो वै सः इत्यादि श्रुति के अनुरूप इत्यादि विशिष्ट आवरण रहित चैतन्य ही रस है और चैतन्य के आवरण का भग्न हो जाना अर्थात् उसका अज्ञान हट जाना ही रस की चर्वणा (आस्वाद) है अथवा अन्तःकरण की वृत्ति का आनन्दमय हो जाना चर्वणा है। यह चर्वणा ब्रह्म के आस्वाद रूप समाधि से विलक्षण है। क्योंकि रसजन्य आत्मानन्द आलम्बनविभावदि के विषयों से संवलित है और समाधिजन्य आत्मानन्द विषयों के अभाव से युक्त होता है। यह आस्वाद (चर्वणा) काव्य के व्यंजना व्यापार के द्वारा उत्पन्न होता हैं अब यह प्रश्न होता है कि रसास्वादन में सुख की प्रतीति होने में क्या प्रमाण है? तो यह भी प्रश्न उठता है कि समाधिजन्य सुख के भान होने में क्या प्रमाण है? दोनों में प्रश्न समान है। यदि यह कहा जाय कि समाधिजन्य सुख के विषय में ''सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्'' इत्यादि शाब्द प्रमाण है तो यहाँ भी रसास्वाद के विषय में भी ''रसो वै सः। स ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति'' यह श्रुति प्रमाण है और दूसरा सहृदयों का अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण है।

भट्टनायक का मत

भट्टनायक ने अभिधा शक्ति के अतिरिक्त भावकत्व और भोजकत्व दो नवीन व्यापारों को स्वीकार किया है। उसके अनुसार अभिधा व्यापार द्वारा पहले काव्य का अर्थमात्र समझा जाता है, फिर भावकत्व व्यापार उस अभिधाजन्य अर्थ को परिष्कृत कर व्यक्ति-विशेष से उसका सम्बन्ध हटाकर साधारणीकृत करत देता है। उसके बाद भावकत्व व्यापार के द्वारा साधारणीकरण हो जाने पर भोजकत्व व्यापार उस साधारणीकृत इत्यादि स्थायीभाव का रस के रूप में भोग करवाता है। भाव यह कि भट्टनायक के अनुसार भाव्यमान स्थायीभाव सहृदयों के हृदय में स्थिति रजस् और तमस् को अभिभूत करके सत्त्व गुण को उद्रेक होने से प्रकाशरूप आनन्द का अनुभव होता है, यह आनन्दानुभव वेदान्तरससम्पर्कशून्य, ब्रह्मास्वादसविध रसानुभव है, यही रसभोग है। इस मत में पूर्व मत से भावकत्व व्यापार का स्वीकरण ही विशेषता है। भोग आवरणरहित चैतन्य रूप है और भोगीकृत्त्व व्यापार व्यंजना है।

नवीनों का मत

काव्य में कवि के द्वारा और नाटक में नट के द्वारा विभावादि के प्रकाशित हो जाने पर दुष्यन्तादि के प्रकाशित हो जाने पर व्यंजना-व्यापार के द्वारा दुष्यन्तादि का शकुन्तला-विषयक प्रेम (रति) का ज्ञान हो जाने पर तदनन्तर सहृदयता के कारण उल्लसित भावना-विशेष रूप दोष की महिमा से हमारा अन्तः करण अज्ञान से अच्छादित हो जाता है, तब उस अज्ञानवृत्त अन्तःकरण में सीप

में चाँदी की प्रतीति के समान कल्पित दुष्यन्तत्व से आच्छादित अपने आत्मा में शकुन्तला-विषयक अनिर्वचनीय इत्यादि चित्तवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती है और वे चित्तवृत्तियाँ आत्मचैतन्य के द्वारा प्रकाशित होती हैं। उन्हीं विलक्षण इत्यादि चित्तवृत्तियों का नाम 'रस' है। यह रस पूर्वोक्त दोष विशेष का कार्य है और उसके नष्ट हो जाने पर नष्ट हो जाता है अर्थात् जब तक दोष का प्रभाव रहता है तभी तक हमें उसकी प्रतीति होती है।

अन्य-मत

दूसरे विद्वानों का कथन है कि न तो इत्यादि बोध के लिए व्यंजना व्यापार की आवश्यकता है और न अज्ञानावृत अन्तःकरण में अनिर्वचनीय इत्यादि की कल्पना काम की। किन्तु पूर्वोक्त भावनारूप दोष के विशेष प्रभाव से सहृदय अपने को दुष्यन्तादि समझने लगता है तब अन्तःकरण में यह भ्रम होता है कि हम शकुन्तला-विषयक इत्यादि से विशिष्ट व्यक्ति से अभिन्न हैं अर्थात् ''मैं शकुन्तलाविषयक रतिमान् दुष्यन्त हूँ इस प्रकार का भ्रमात्मक बोध ही 'रस' है। इस प्रकार रस एक प्रकार का भ्रम है।

भट्टलोल्लट आदि का मत

भट्टलोल्लट प्रभृति आचार्यों का मत है कि मुख्यतया दुष्यन्तादिगत इत्यादि स्थायीभाव ही रस है, उन्हीं का कमनीय विभावादि का अभिनय प्रदर्शन में निपुण आदि के अनुकर्त्ता नट में आरोप करके हम रस का अनुभव करते हैं। इस मत में पूर्व की तरह शकुन्तला दुष्यन्त विषयक इत्यादि पात्र विशिष्ट है। इस प्रकार दुष्यन्तगत शकुन्तला-विषयक रति ही 'रस' है।

श्रीशंकुक प्रभृति आचार्यों का मत

शंकुक प्रभृति आचार्यों का मत है कि दुष्यन्तादिगत इत्यादि का जब नट में दुष्यन्त समझकर अनुमान कर लिया जाता है तो वह सहृदय द्वारा अनुमीयमान इत्यादि स्थायीभाव ही 'रस' कहलाता है। नाट्य आदि में विभावादि के कृत्रिम होने पर भी उसे अकृत्रिम (स्वाभाविक) मानकर और नट को दुष्यन्त समझकर विभावादि के द्वारा नट में इत्यादि का अनुमान कर लिया जाता है। यह अनुमीयमान इत्यादि रस है। इस प्रकार शंकुक आदि के अनुसार सहृदय का रसबोध अनुमति अर्थ है और अनुमान का आधार नट है जिसमें इत्यादि स्थायीभाव रूप रस अनुकृत है और नट अनुकारक है।

कुछ अन्य आचार्यों का मत

कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव तीनों का समुदित रूप 'रस' है। तीनों में से किसी एक को रस मानना समुचित नहीं है।

अपर-मत

बहुत से आचार्यों का मत है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव इन तीनों में जो चमत्कारी हो वह 'रस' है। यदि चमत्कारी न हो तो तीनों ही रस नहीं कहलायेगें।

अन्य आचार्यों का मत

कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि नट को अभिनय करता हुआ देखकर उसका बार-बार

अनुसन्धान करने पर हमें आनन्द का अनुभव होता है। अतः विभाव ही रस है (भाव्यमानो विभाव एव रसः) अर्थात् बार-बार अनुसन्धान किया हुआ इत्यादि का आलम्बन ही 'रस' है।

दूसरों का मत

कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि नट के द्वारा दुष्यन्तादि की शारीरिक चेष्टाओं का बार-बार अनुसन्धान करने से आनन्द प्राप्त होता है। अतः अनुभाव ही 'रस' है। (अनुभावस्तथा)।

कुछ अन्य आचार्यों का मत

कुछ अन्य आचार्यो का मत है कि बार-बार अनुसन्धान किया हुआ व्यभिचारीभाव ही रस रूप में परिणत होता है, अर्थात् आलम्बन विभाव की चित्तवृत्तियाँ ही रस के रूप में परिणत होती हैं। ('व्यभिचार्येव तथा परिणमति' इति केचित्)

अब उपर्युक्त मतों के अनुसार रससूत्र की व्याख्या प्रस्तुत करते है-

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगद्रसनिष्पत्तिः''।

1.उनमें प्रथम अभिनवगुप्त के मतानुसार भरतसूत्र की व्याख्या करते है-

''विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग अर्थात् व्यंजना से चिदानन्दविशिष्ट स्थायीभाव रूप अथवा स्थायीभव से उपहित चिदानन्द रूप से रस की निष्पत्ति होती है अर्थात् अपने स्वरूप से प्रकाशित होता है''। यहाँ पर 'संयोग'' पद का अर्थ व्यज्जन व्यापार और 'निष्पत्ति' का अर्थ 'स्वरूप से प्रकाशन' होता है।

2. द्वितीय भट्टनायक के अनुसार रससूत्र की व्याख्या-

''विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभावों के सम्यक् अर्थात् साधारण रूप योग से भावकत्व व्यापार के द्वारा भावित होने से स्थायीभाव से उपहित सत्त्वगुण के उद्रेक से प्रकाशित आत्मानन्द रूप रस की निष्पत्ति अर्थात्, भोग नामक साक्षात्कार के द्वारा अनुभव होता है'' यहाँ पर 'संयोग' पद का अर्थ: सम्यक् साधारणात्मकत्व और 'निष्पत्ति' का अर्थ:विषयीकृति' होता है।

3. तृतीय नवीनों के मतानुसार-

''विभाव, अनुभाव और व्याभिचारीभावों के संयोग से अर्थात् भावनारूप दोष से दुष्यन्त आदि के अनिर्वचनीय इत्यादि रूप रस की निष्पत्ति अर्थात् उत्पत्ति होती है''। यहाँ वह 'संयोग' पद का अर्थ भावना रूप दोष और निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पत्ति' है।

4.''विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभावों के संयोग अर्थात् ज्ञान से ज्ञान-विशेष रूप रस की निष्पति अर्थात् उत्पत्ति होती है। यहाँ पर 'संयोग' पद का अर्थ ''ज्ञान' और निष्पति' का अर्थ उत्पत्ति है।

5. श्री भट्टलोल्लट का मत-

''विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभावों के संयोग अर्थात् सम्बन्ध से इत्यादि रूप रस की निष्पत्ति अर्थात् आरोप किया जाता है''। यहाँ पर 'संयोग' पद का अर्थ 'सम्बन्ध' और 'निष्पत्ति' का अर्थ आरोप होता है।

6. श्रीशंकुक के मत के अनुसार -''विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभावों के संयोग कृत्रिम होते हुए अकृत्रिम रूप से गृहीत विभावादिकों के संयोग अर्थात् अनुभव के द्वारा इत्यादि रूप से

रस की निष्पत्ति अर्थात् अनुमति होती है''। यहाँ पर 'संयोग' पद का अर्थ 'अनुमान' और 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अनुमिति' है।

7.सप्तम मत के अनुसार-''विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव तीनों के संयोग अर्थात् समुदाय से रस की निष्पत्ति अर्थात् 'रस' पद का व्यवहार होता है''। यहाँ पर 'संयोग' पद का अर्थ 'समुदाय' और निष्पत्ति का अर्थ 'पदव्यवहार' लिया गया है।

8.अष्टम मत के अनुसार-''विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभावों में से संयोग अर्थात् चमत्कारी होने से 'रस' पद का व्यवहार होता है। यहाँ पर संयोग पद का अर्थ 'चमत्कार' और 'निष्पति' का अर्थ 'रसपदव्यवहार' लिया गया है।

इस प्रकार ये आठ मतों के अनुसार प्रतिपादित हैं। शेष तीन मतों में सूत्र से विरोध पर्यवसित होता है। विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभावों में से केलव एक किसी नियत रस के व्यंजक नहीं होते; क्योंकि वे जिस प्रकार एक रस के विभावादि होते हैं उसी प्रकार दूसरे के हो सकते हैं। जैसै व्याघ्रादि जिस प्रकार भयानक रस के विभाव हो सकते है उसी प्रकार वीर, अद्भुत और रौद्र रस के भी विभाव हो सकते है। अतः सूत्र में तीनों को सम्मिलित रूप में ग्रहण किया गया है।

रस-संख्या

पण्डितराज के अनुसार श्रृंगार, करूण, शान्त, रौद्र, वीर, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स ये नौ रस होते हैं- **श्रृंगार करुणः शान्तो रौद्रो वीरोऽ॒तुस्तथा। हास्यो भयानकश्चैव वीभत्सश्चेति ते नव।।**

स्थायीभाव -पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार उपर्युक्त रसों के क्रम से रति, शोक, निर्वेद, क्रोध, उत्साह, विस्मय, हास्य, भय और जुगुप्सा ये नौ स्थायीभाव हैं-

रतिः शोकश्च निर्वेदः क्रोधोत्साहश्च विस्मयः।

हासो भयं जुगुप्सा च स्थायिभावाः क्रमादमी।।

1. **रति-** स्त्री- पुरुष का परस्पर प्रेम नामक चित्तवृत्ति विशेष 'रति' है वही रति यदि गुरु, देवता, पुत्र आदि विषयक हो तो 'रति' नामक स्थायीभाव कहलाता है।

2. **शोक** - पुत्रादि के वियोग से उत्पन्न मन की विकलता नामक चित्तवृत्ति 'शोक' स्थायी भाव है।

3.**निर्वेद -** नित्य और अनित्य वस्तुओं के विचार से उत्पन्न विषयों से विरक्ति 'निर्वेद' स्थायीभाव होता है।

4.**क्रोध -** गुरु, बन्धु के वध आदि आदि परम अपराध से उत्पन्न प्रज्वलन नामक 'क्रोध' स्थायी भाव होता है।

5.**उत्साह** - शत्रु के पराक्रम तथा दानादि के स्मरण से उत्पन्न उन्नतता नामक 'उत्साह' स्थायीभाव होता है।

6.**विस्मय -** अलौकिक वस्तु के दर्शन आदि से उत्पन्न आश्चर्य नामक 'विस्मय' स्थायी भाव होता है।

7.**हास -** वाणी तथा अश् आदि के विकारों के दर्शन से उत्पन्न विलास नामक 'हास' होता है।

8.**भय** -व्याघ्रादि के दर्शन से उत्पन्न परम अनर्थ विषयक चित्र की विकलता 'भय' स्थायीभाव कहलाता है।

9.**जुगुप्सा** -घृणित वस्तुओं के अवलोकन से उत्पन्न घृणास्पद चित्तवृत्तिविशेष 'जुगुप्सा' है।

विभाव

इन स्थायीभावों को लोक में उन नायकों में और उद्दीपन रूप कारणों से प्रसिद्ध काव्य और नाटकों में 'विभाव' कहा जाता है।

अनुभाव

उन स्थायीभावों से जो कार्य उत्पन्न होते हैं, वे 'अनुभाव' कहलाते हैं।

व्यभिचारीभाव

स्थायीभावों के साथ रहने वाली चित्तवृत्तियाँ व्याभिचारीभाव' कहलाती है।

जैसे श्रृंगार रस के नायक-नायिका आलम्बन विभाव, चाँदनी, बसन्त ऋतु, उद्यान, एकान्त-स्थान आदि उद्दीपन विभाव हैं, कटाक्ष, भुजाक्षेप, तद्रुणश्रवण, कीर्त्तन् आदि अनुभाव और रोमांच, कम्प आदि सात्त्विक भाव तथा स्मरण, चिन्ता आदि व्यभिचारीभाव हैं।

भाव-ध्वनि

विभाव और अनुभावों के अतिरिक्त जो रसों के व्यंजक होते हैं, वे भाव कहे जाते है। पण्डितराज ने विभावादि के द्वारा ध्वनित किये जाने वाले हर्षादि में किसी एक को 'भाव' कहा है। मम्मट कान्तविषयक रति को श्रृंगार रस कहते हैं और देवता, मुनि, गुरु, नृप, पुत्रादिविषयक रति को 'भाव' कहते हैं। व्यज्जित व्यभिचारीभावों भी 'भाव' कहा जाता है। तात्पर्य यह कि जहाँ पर व्यभिचारीभाव रस की सहकारिता से ऊपर उठकर विभावादि से पोषित होकर प्रधानतया व्यंग्य होते है, वहाँ उन्हें 'भाव कहा जाता है। इस प्रकार व्यंजित व्यभिचारी भावों को भी 'भाव' कहा गया है।

पण्डितराज के अनुसार हर्षादि 34 भाव है-हर्ष, स्मृति, क्रीड़ा, मोह, धृति, शांत, ग्लानि, दैन्य, चिन्ता, मद, श्रम, गर्व, निद्रा, मति, व्याधि त्रास, सुप्त, विबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रा, उन्माद, मरण, वितर्क, विषाद, औत्सुक्त, आवेग, जड़ता आलस्य, असूया, अपस्मार, चपलता और निर्वेद ये तैंतीस व्यभिचारीभाव है और गुरु, देवता, नृप, पुत्रादि विषयक रति चौंतीसवाँ भाव है।

रसाभास और भावाभास

जिस रस का आलम्बन विभाव अनुचित हो, वहाँ 'रसाभास' होता जैसे नायिका की एक नायक के प्रति रति उचित है, किन्तु यदि एक नायिका का अनेक नायकों के साथ अथवा उपनायक के साथ रतिप्रसंग वर्णित हो तो 'रसाभास' हो जायगा। इस प्रकार रसों का अनुचित रूप में वर्णन 'रसाभास' कहा जाता है। इसी प्रकार भावों का अनुचित रूप में वर्णन 'भावाभास' कहा जाता है। जैसे विभावादि से परिपुष्ट देवादिविषयक रति भाव है और अपरिपुष्ट होने पर 'भावाभास' हो जाता है। भरतमुनि का कथन है कि भावाभिव्यक्ति में यदि समस्त भावाभिव्यज्जन-सामग्री का उपयोग न हो, केवल कुछ ही अभिव्यंजन-सामग्री से भाव अभिव्यक्त हो तो उसे 'भावाभास' समझा जायेगा। जैसे-

अनुराक्ता सीता के प्रति रावण का रतिभाव प्रकट करना अनुचित होने से यहाँ भावाभास है।

भावशान्ति एवं भावोदय

भाव के उत्पन्न होते ही चमत्कारपूर्ण ढंग से सहसा शान्त हो जाना ही 'भाव-शान्ति' है। इसी प्रकार जब एक भाव के शमन होने पर दूसरा भाव चमत्कारपूर्ण ढंग से उदित हो जाये तो 'भावोदय' कहलाता है।

भावसन्धि एवं भावशबलता

जब एक भाव के उदय होने पर दूसरा भाव भी उदित हो जाय और दोनों की शान्ति न हो तो 'भावसन्धि' की अवस्था कही जाती है। इसी प्रकार जब एक के बाद दूसरा-दूसरे के बाद तीसरा और तीसरा के बाद चौथे, इस प्रकार क्रमशः भाव उदित होते जायें तो 'भावशबलता' कही जाती है।

3.4.4 गुण सम्बन्धी अवधारणा

सर्वप्रथम अग्निपुराण ने गुण की स्पष्ट व्याख्या करते हुए लिखा है कि ''जो काव्य में महती शोभा को अनुगृहीत करता है, उसे गुण कहते हैं'' (यः काव्ये महतीं छायामनुगृह्णात्यसौ गुणः)। अग्निपुराणकार के पश्चात वामन ने गुण की जो परिभाषा की है (काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः), वह अग्निपुराण के गुण-लक्षण से बहुत कुछ साम्य रखता है। इस प्रकार काव्य में शब्द, अर्थ अथवा दोनों को उत्कृष्ट बनाने वाले धर्म को गुण कहा गया है।

भरतमुनि ने सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में दस गुणों का उल्लेख किया है-श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति। किन्तु भामह ने केवल तीन गुणों का विवेचन किया है-माधुर्य, ओज, और प्रसाद। तत्पश्चात् दण्डी ने गुणों का अधिक विस्तार से विवेचन किया है। उन्होंने भरत के अनुसार दस गुणों को स्वीकार किया है और श्लेषादि दस गुणों को वैदर्भमार्ग की प्राण बताया है (इति वैदर्भमार्गस्य प्राणः दश गुणाः स्मृताः)। वामन ने गुणों का विशद विवेचन किया है और गुणों की संख्या 20 बताई है-दस शब्दगुण और दस अर्थगुण। इनके पूर्व अग्निपुराणकार ने गुणों के सामान्य और वैशेषिक दो भेद करके सामान्य गुणों को शब्दगुण, अर्थगुण और उभयगुण-तीन वर्गों में विभाजित कर उन्नीस गुणों का निरूपण किया है। भोज ने गुणों के बाह्य, आभयन्तर और वैशेषिक तीन भेद किये है और 24 शब्दगुण और 24 अर्थगुणों का उल्लेख किया है।

इसके बाद काव्यप्रकाशकार मम्मट ने पूर्व-प्रचलित सभी मतों की समीक्षा की और पर्याप्त विचार-विमर्श कर दुति, दीप्ति और विकास इन तीन चित्तवृत्तियों के आधार पर भामहोक्त माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीन गुणों को पुनः प्रतिष्ठित किया। उन्होंने चित्त की द्रुति के कारण आह्लादकत्व के माधुर्य गुण माना है और शृशर, करूण, विप्रलम्भ और शान्त रस में उत्तरोत्तर चमत्कारजनक कहा है। चित्त के विस्तार रूप दीप्तत्व को 'ओज' गुण कहा जाता है जो वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में उत्तरोत्तर उद्दीपक होता है तथा जो सूखे इन्धन में अग्नि के समान एवं स्वच्छ वस्त्र में जल में समान चित्त को रस से व्याप्त कर देता है, उसे 'प्रसाद' गुण कहते हैं और सभी रसों में तथा समस्त रचनाओं में रहता है। उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह है कि

माधुर्यगुणयुक्त रसास्वादन से चित्त द्रवित हो जाता है। ओजगुणयुक्त रस के आस्वादन से चित्त उद्दीप्त हो जाता है और प्रसादगुणयुक्त रस के आस्वादन से चित्त विकसित हो जाता है। मम्मट के अनुसार गुण मुख्य रूप से रस के धर्म होते हैं किन्तु गौणीवृत्ति से अर्थात् उपचारतः शब्द और अर्थ के भी धर्म कहे गये हैं।

वामन ने दस शब्दगुणों और दस अर्थगुणों का जो वर्णन किया है। मम्मट ने उनमें से अधिकांश गुणों को अपने माधुर्य, ओज और प्रसाद-गुणों में अन्तर्भाव कर लिया है कुछ को दोषभाव मात्र कहा है और कुछ को दोष रूपमें स्वीकार किया है। इस प्रकार मम्मट के अनुसार तीन ही गुण हैं, दस नहीं।

पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने पूर्ववर्ती भरत, वामन आदि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित दस शब्दगुणों और अर्थगुणों का विवेचन अपने ग्रन्थ में किया है और उनकी समीक्षा की है, किन्तु मम्मट के अनुसार तीन गुणों को ही स्वीकार किया है-माधुर्य, ओज और प्रसाद। यह वर्गीकरण उन्हें चित्त की तीन अवस्थाओं द्रुति, दीप्ति और विकास के आधार पर किया है।

पण्डितराज का कहना है कि माधुर्य, ओज, प्रसाद गुणों के द्वारा क्रमशः द्रुति, दीप्ति और विकास नामक चित्तवृत्तियाँ उत्तथापित की जाती हैं अर्थात् उन-उन गुणों से युक्त रसों के आस्वादन (चर्वण) से ये चित्तवृत्तियाँ उ॒द्भूत होती हैं। इस प्रकार इन गुणों की केवल रसधर्मता सिद्ध होने पर यह रचना मधुर है यह बन्ध ओजस्वी है इत्यादि व्यवहार (कथन) औपचारिक हैं, कल्पित हैं। जैसे जब हम कहते हैं कि आकार से यह व्यक्ति शूर-वीर है यह कथन औपचारिक हैं कल्पित है। यह मम्मटभट्ट आदि प्राचीन आचार्यों का मत है। किन्तु पण्डितराज जगन्नाथ इस कथन से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि मम्मट ने जो माधुर्यादि गुणों को रस का धर्म बताया है, इसमें क्या प्रमाण है ? यदि कहें कि प्रत्यक्ष प्रमाण है तो यह ठीक नहीं है। जैसे अग्नि का कार्य दग्ध करना है और उष्ण-स्पर्श उसका गुण है किन्तु दोनों का अनुभव भिन्न-भिन्न है। इसी प्रकार रसों के कार्य जो द्रुति आदि चित्तवृत्तियाँ है उनसे भिन्न रसगत गुणों का अनुभव हमें नहीं होता। यदि यह कहा जाय कि उन माधुर्यादि गुणों से विशिष्ट रस ही द्रुत्यादि चित्तवृत्तियों के कारण होने से कारणतावच्छेदक के रूप में हम अनुमान कर लेंगे, यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि रस को गुणों के बिना ही उन वृत्तियों का कारण मान लेगे तो गुणों की कल्पना में गौरव होगा। यदि कहें कि श्रृंगार, करुण और शान्त रसों में प्रत्येक को द्रुति का कारण मानने की अपेक्षा माधुर्यगुणोंयुक्त को द्रुति का कारण मान लेने में लाघव है। इस पर कहते हैं कि मम्मटभट्ट आदि आचार्यों के अनुसार मधुर रस से द्रुत अत्यन्त मधुरता से द्रुतितर इत्यादि कार्यो के तारतम्य के कारण माधुर्यगुणायुक्त होने से रस को दुति का कारण मानना अजागलस्तन के समान गुणीभूत है, व्यर्थ है। अतः प्रत्येक रस को अलग-अलग कारण मानने में लाघव है, और यदि यह कहा जाय कि आत्मा निर्गुण शुद्ध चैतन्य रूप है और रस आत्मरूप है। अतः रस के निर्गुण होने से माधुर्यादि को रस का गुण मानना ठीक नहीं है। यदि यह कहा जाय कि माधुर्यादि को रस के उपाधिरूप इत्यादि का गुण मान लेंगे, किन्तु यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं है। दूसरे इत्यादि स्वयं गुण रूप हैं अतः उनमें अन्य गुणों का मानना (गुण में गुणान्तर का मानना) सर्वथा

अनुचित है। पण्डितराज जगन्नाथ का कथन है कि श्रृंगार रस मधुर होता है जो यह व्यवहार सर्वत्र प्रचलित है, वह कैसे होगा? इस पर कहते हैं कि रसादि में रहनेवाली द्रुत्यादि चित्तवृत्तियों की प्रयोजकता सम्बन्ध से द्रुत्यादि ही माधुर्यादि है और उसी के रहने से रसों को मधुर कहा जाता है। अब प्रश्न होता है कि द्रुत्यादि चित्तवृत्तियाँ रसों में रहती ही नहीं, तो रसों को माधुर्ययुक्त कैसे कहा जा सकता है। इस पर कहते है कि जिस प्रकार अश्वगन्धा औषधि के खाने से उष्णता उत्पन्न होती है, अतः अश्वगन्धा उष्ण है, इस प्रकार का व्यवहार होता है, उसी प्रकार श्रृंगारादि रस के माधुर्यादि के प्रयोजक होने से उन्हें श्रृंगार मधुर है कहा जाता है।

यह प्रयोजकता अदृष्टादि से विलक्षण शब्द, अर्थ, रस और रचना में भी रहती है। अतः यह कि अदृष्टादि में जो प्रयोजकता है उससे भिन्न प्रयोजकता शब्द, अर्थ, रस और रचना में होती है, अतः शब्द और अर्थ के माधुर्य को कल्पित नहीं कहना चाहिए।

पण्डितराज जगन्नाथ ने प्राचीन आचार्यों के मतानुसार दस शब्दगुणों और दस अर्थगुणों का विवेचन किया है। उनके अनुसार श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि ये दस शब्दगुण है और ये ही दस अर्थगुण हैं दोनों प्रकार के गुणों के नाम वे ही हैं किन्तु लक्षण भिन्न-भिन्न हैं।

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्य सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः।।

दस शब्दगुणों के लक्षण-

1.शब्दानां भिन्नानामप्येकत्वप्रतिभानप्रयोजकः संहितयैकजातीयवर्णाविन्यासविशेषों गाढत्वापरपर्यायः श्लेषः।

2. गाढत्वशैथिलाभयां मिश्रणं बन्धस्य प्रसादः।

3. उपक्रमादासमाप्ते रीत्यभेदः समता।

4. संयोगपरहसतिरिक्तवर्णघटितत्वे सति पृथक्पदत्वं माधुर्यम्।

5. अपरुषवर्णघटितत्वं सुकुमारता।

6. झटिति प्रतीयमानार्थान्वयकत्वमर्थव्यक्तिः।

7. कठिनवर्णघटनारूपविकटत्वलक्षणोदारता।

8. संयोगपरहस्वप्राचुर्यरूपं गाढवमोजः।

9. लोकोत्तरशोभारूपमौज्वल्पयं कान्ति।

10. बन्धगाढत्वशिथिलत्वयोः क्रमोणावस्थापन समाधिः।

दस अर्थगुणों के लक्षण-

1. क्रियापरम्परया विदग्धचेष्टितस्य तदस्मुटवस्य तदुपपादकयुक्तेश्च
सामानाधिकण्यरूपः संसर्गः श्लेषः।

2. यावदर्थकपदत्वरूपमथवैमल्यं प्रसादः।

3. प्रक्रमाभशैनार्थघटनात्मकमवैषम्यं समता।

4.एकस्या एवोक्तेर्भङ्ग्यन्तरेण पुनः कथनात्मकमुक्तिवैचित्र्यं माधुर्यम्।

5.अकाण्डे शोकदायित्वाभावरूपमपारुष्यं सुकुमारता।

6.वस्तुतों वर्णनीयस्यासाधारणक्रिारूप्योर्वर्णनमर्थव्यक्तिः।

7. गाम्यर्थपरिहार उदारता।

8.एकस्य पदार्थस्य बहुभिः पदैरभिधानं बहूनां चैकेन, तथैकस्य वाक्यार्थस्य बहुभिर्वाक्यैर्बहुवाक्यार्थाभिस्यैकवाक्येनाभिधानं विशेषणानां साभिप्रायत्वं चेति पञ्चविधमोजः।

9. दीप्तरसतवं कान्तिः।

10. अवर्णितपूर्वोऽयमर्थः पूर्ववर्णितप्रायों वेति कवेरालोचनं समाधिः।

उपर्युक्त गुणों का तीन गुणों में अन्तर्भाव

अन्य आचार्य (मम्मट आदि) उपर्युक्त गुणों में से कुछ गुण (माधुर्य, ओज, प्रसाद) में से कुछ आगे कहे जाने वाले दोषों के अभाव से और कुछ अलंकारों से गतार्थ करते हैं, कुछ तो विचित्रतामात्र हैं और कुछ दोष रूप है। अतः वे बीस गुण न मानकर केवल तीन गुण ही मानते हैं।

उन विद्वानों का कहना है कि शब्दगुणों में श्लेष, उदारता, प्रसाद और समाधि इन गुणों का ओाजोव्यंजक रचना में अन्तर्भाव हो जाता हैं यदि यह कहें कि श्लेष और उदारता का सब अंशों में गाढ़ रचना रूप होने से ओजोव्यंजक रचना में अन्तर्भाव हो सकता है, किन्तु प्रसाद और समाधि के गाढत्व और शिथिलत्व दोनों के मिश्रण रूप होने से एक अंश (गाढत्व) को ओज का व्यंजक होने पर दूसरे अंश (शिथिलत्व) का अन्तर्भाव कहाँ होगा ? इस पर कहते हैं कि माधुर्य अथवा प्रसाद गुण का अभिव्यंजक रचनाओं में अन्तर्भाव हो जायगा। समता का सर्वत्र होना अनुचित ही हैं, ग्राम्यत्व और कष्टत्व रूप दोष के परित्याग से कान्ति और सुकुमारता गतार्थ है। प्रसादगुण से अर्थव्यक्ति का ग्रहण हो जाता है।

इसी प्रकार अर्थगुणों में भी श्लेष और ओजगुणों के प्रथम चार भेद वैचित्र्यमात्र हैं, गुणों में उनका परिगणन उचित नहीं है। अनधिक पदत्व रूप प्रसाद, उक्ति-वैचित्र्य रूप माधुर्य अपारुष्य रूप सौकुमार्य और अग्राम्यत्व रूप उदारता, अवशैषम्य रूप समता और साभिप्रायपदत्व रूप ओजगुण का पंचम भेद क्रमशः अधिकपदत, अनवीकृतत्व, अमश्लरूप अश्लीलता, ग्राम्यता, भग्नप्रक्रमता तथा अपुष्टार्थत्व रूप दोषों के निराकरण मात्र हैं, गुण नहीं। स्वभावोक्ति अलंकार के स्वीकरण से वस्तु के स्वभाव का स्पष्ट कथन रूप अर्थव्यक्ति तथा रसध्वनि एवं रसवद् अलंकार के स्वीकार के द्वारा दीप्तरसत्व रूप कान्ति को स्वीकार कर लिया गया है। समाधि तो कवि के अन्तःकरण में रहने वाले काव्य का कारण है, गुण नहीं। अतः गुण तीन ही हैं, यह मम्मटभट्ट आदि का कथन है।

गुणव्यंजक रचना - टवर्ग से रहित अन्य वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्ण शर (श ष स) तथा अन्तःस्थ (य र ल व) से निर्मित, निकटता से प्रयुक्त अनुस्वार, परसवर्ण और अनुनासिक वर्णों से शोभित, आगे कहे जाने वाले साधारणतया एवं विशेषतया निषिद्ध संयोगादि के स्पर्श से शून्य, समासरहित अथवा कोमल समासयुक्त रचना माधुर्य गुण में व्यंजक होती है। वर्गों के द्वितीय

और चतुर्थ वर्ण दूर-दूर सन्निवेशित गुण (माधुर्य) के न अनुकूल होते हैं और न प्रतिकूल। यदि निकटता से सन्निविशित हो तो और अनुप्रास हो तो प्रतिकूल भी हो जाते हैं। अन्य विद्वान तो टवर्ग से भिन्न पाँचों वर्गों का पाँचों वर्णों को माधुर्य का व्यंजक मानते हैं।

ओजगुणव्यंजक रचना- समीप-समीप में प्रयुक्त वर्गों के द्वितीय और चुतर्थ वर्ण, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, विसर्ग और सकार की बहुलता से निर्मित, भय अथवा रेफ से घटित संयोगपरक समीप-समीप में प्रयुक्त ह्रस्व स्वरों से युक्त तथा दीर्घसमास युक्त रचना ओजगुण का व्यंजक होती है। इस रचना के भीतर आये हुए वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्ग यदि संयुक्त न हों तो न अनुकूल होते हैं और न प्रतिकूल ही होते हैं। इसी प्रकार अनुस्वार और परसवर्ण को भी समझना चाहिए।

प्रसाद-गुण व्यंजक रचना- जिसके श्रवणमात्र से ही वाक्य का अर्थ अस्तगत बेर के समान सरलता से प्रतीत हो और जो सब जगह (सभी रसों) सभी रचनाओं में सामान्य रूप से रहे, उसे प्रसादगुण-व्यंजक रचना कहते हैं।

सामान्यतो वर्जनीय रचना- अब उन-उन गुणों को व्यक्त करने में समर्थ निर्मित (रचना) के परिचय के लिए साधारण और विशेष रूप से वर्जनीय (त्याज्य) का वर्णन करते हैं-

यदि एक अक्षर का साथ-साथ पुनः प्रयोग एक पद में एक बार हो ता वह अश्रव्य होता है। जैसे 'कुकुभसुरभिः' 'वितगात्र' तथा 'पल्लमिवाभाति' इत्यादि में क,त,ल का (ककार, तकार, लकार का) यही वही बार-बार प्रयुक्त हो तो अधिक दोष होता है। जैसे 'विततत्ररुरेष भाति भूमौ' में तकार का। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पदों में आने पर भी अधिक दोष होता है। जैसे-'शुक करोषि कथं विजने रुचिम्' इत्यादि में। यदि भिन्न-भिन्न पदों में बार-बार प्रयोग हो तो उससे भी अधिक दोष होता है, जैसे-'पिक ककुभे मुखरीकुरु प्रकामम्' में। इसी प्रकार पहले समान वर्ग का अन्य अक्षर यदि एक पद में एक बार आवे तो अशुभ होता है। जैसे-'विथस्ते मनोरथः' में 'त' और 'थ' का प्रयोग यदि बार-बार प्रयोग हो तो और अधिक अश्रव्य होता है जैसे-'वितथर' वचनं तव प्रतीमः' में 'त-थ-त' का प्रयोग। यदि भिन्न-भिन्न पदों में एक बार प्रयोग हो तो अधिक अश्रव्य होता है। जैसे 'अब तस्य वचः श्रुत्वां' इत्यादि में। यदि भिन्न-भिन्न पदों में बार-बार प्रयोग हो तो और अधिक अश्रव्य होता है। जैसे 'अध तथा कुरु येन सुखं लभे' यहाँ पर 'थ-त-थ' का प्रयोग।

यदि एक वर्ग के अक्षरों का प्रयोग पहले के बाद दूसरे का और तीसरे के बाद चौथे का हो तो तभी दोष होता है किन्तु यदि पहले के बाद तीसरे का दूसरे के बाद चौथे का सह प्रयोग हो तो उतना अश्रव्य नहीं होता है किन्तु थोड़ा अर्थात् बहुत कम होता है। जिसे निर्माण मर्मज्ञ ही समझ सकते हैं और यह प्रयोग यदि बार-बार हो तो और अधिक अश्रव्य होता है जिसे साधारण जन भी समझ सकते है जैसे-'खग कलानिधेरेष विजृम्भते' तथा 'इति वदति दिवानिशं धन्यः' इत्यादि में। किन्तु वर्ग के अन्तिम अक्षरों का अपने वर्ग के अक्षरों के पहले अथवा पीछे आना दोषयुक्त नहीं होता, जैसे 'तनुते तनुतां तनौ' इत्यादि में। किन्तु वर्ग के पंचम वर्ण का बार-बार आना अश्रव्य होता है। जैसे 'मम महती मनसि कथाविरासित्' इत्यादि में। किन्तु ये अश्रव्य त्वादि दोष गुरु वर्ण के बीच आने से दूर हो जाते है। जैसे-'संजायतां कथाकार करके केकाकलस्वनः'

इत्यादि में। इसी प्रकार तीन या तीन से अधिक अक्षरों का प्रयोग भी प्रायः अश्रव्य होता है। जैसे-'राष्ट्र तवोष्ट्र परितश्चरिन्त' इसमें 'ष्ट्र' का प्रयोग अश्रव्य है। इसी प्रकार अनुभव के अनुसार श्रुति-कटुता के अन्य उदाहरण भी समझने चाहिए।

3.5 सारांश

भारतीय काव्यशास्त्र जिसे साहित्य विद्या या क्रिया कल्प के नाम से अभिहित किया जा रहा है, प्राचीन आचार्यों ने उसे अलंकार शास्त्र या काव्य अलंकार का नाम प्रदान किया है। किन्तु काव्य शास्त्र का विकासशील स्वरूप अलंकार शब्द में पूर्णतः समाहित न हो सकने के कारण अपना दूसरा नाम जोकि सम्प्रदायों के आधार पर अपने-अपने अनुसार आचार्यों ने प्रदान किये है। इनमें रसशास्त्र के प्रमुख विद्वान पं॰ राज जगन्नाथ के विषय में पूर्णरूप से जानकारी प्राप्त कराना ही इस इकाई का उद्देश्य है। शब्दगुणों में श्लेष, उदारता, प्रसाद और समाधि इन गुणों का ओाजोव्यंजक रचना में अन्तर्भाव हो जाता हैं यदि यह कहें कि श्लेष और उदारता का सब अंशों में गाढ़ रचना रूप होने से ओजोव्यंजक रचना में अन्तर्भाव हो सकता है, किन्तु प्रसाद और समाधि के गाढत्व और शिथिलत्व दोनों के मिश्रण रूप होने से एक अंश (गाढत्व) को ओज का व्यंजक होने पर दूसरे अंश (शिथिलत्व) का अन्तर्भाव कहाँ होगा ? इस पर कहते हैं कि माधुर्य अथवा प्रसाद गुण का अभिव्यंजक रचनाओं में अन्तर्भाव हो जायगा। समता का सर्वत्र होना अनुचित ही हैं, ग्राम्यत्व और कष्टत्व रूप दोष के परित्याग से कान्ति और सुकुमारता गतार्थ है। प्रसादगुण से अर्थव्यक्ति का ग्रहण हो जाता है। ब्राह्मण पं॰ जग्गनाथ के जीवन उनका, कृतित्व एवं व्यक्तित्व तथा उनके द्वारा काव्यशास्त्र में किस प्रकार और कहाँ तक योगदान हो पाया है इसको प्रदर्शित करने का कार्य इस इकाई के माध्यम से किया है।

3.6 शब्दावली

1. किंवदन्ती	प्रचलित उक्तियां
2. प्रकृति	-स्वभाव
3. पदावली	-वाक्य
4. रति	-प्रेम
5. लहरीपंच्चक	-जगन्नाथ जी की पाँच रचनाये है।

बोध प्रश्न

(क) प॰राज॰ जगन्नान्थ की जन्मभूमि थी।

(क) आन्ध्र प्रदेश (ब) हैदराबाद (स) उज्जैन (द) पंजाब

(ख) इनके पिता का नाम था।

(अ) मेरूभट्ट (ब) भट्टलोलट (स) अभिनव (द) पेरूभट्ट

(ग) पं॰ राज की अन्तिम रचना का नाम।

(अ) साहित्यलहरी (ब) गंगालहरी (स) रसगंगाधर (द) श्रृंगार विलास

(2) अतिलघुउत्तरी प्रश्न

(क) सुधा लहरी किसकी रचना है-

(ख) भामिनी विलास में कितने पद्य है-

(ग) शरीरंतावदिब्यर्थव्यवाच्छिन्ना पदावली यह किस कवि ने काव्य की परिभाषा दी।

(3) रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए

1. पं॰ राज जगन्नाथ.....को केवल काव्य का हेतु मानते है।

2. प्रतिभा.....और.....दो प्रकार की होती है।

3. पं॰राज ने काव्य.....भेद बताया है।

4. निम्नकथनों में सही के सामने (√) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगाऐं।

(क) पं॰ राज जगन्नाथ ने रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्य कहा है।

(ख) आचार्य दण्डी ने लहरी पच्चक की रचना की है।

(ग) भरतमुनि ने सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र की रचना किया है।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न

क (अ) ख (द) ग (ब)

(2) अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

(क) पं॰ राज जगन्नाथ (ख) 588 पद्य (ग) आचार्य दण्डी

(3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) प्रतिभा (2) सहज और उत्पाद्य (3) चार भेद

(4) सही (√) और गलत (×) चिन्ह

(क) (√) (ख) (×) (ग) (√)

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास-आचार्य बलदेव उपाध्याय

2. रसगंगाधर-पं॰राजगन्नाथ

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पं॰राज जगन्नाथ जीवन परिचय एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए ?
2. पं॰राज जगन्नाथ की काव्य सम्बन्धी अवधारणा पर प्रकाश डालिए ?

इकाई 4 - गद्यकवि बाण की कादम्बरी का विस्तृत परिचय

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 गद्य कवि बाण-जीवन एवं कृतित्व
  4.3.1 बाण भट्ट का जीवन परिचय
  4.3.2 बाणभट्ट का स्थितिकाल
  4.3.3 बाणभट्ट का कृतित्व
4.4 बाण की कादम्बरी का विस्तृत परिचय
  4.4.1 कादम्बरी का मूल स्रोत
  4.4.1 कादम्बरी का कथानक
  4.4.3 कादम्बरी के पात्रों का परिचय
  4.4.4 कादम्बरी का कला एवं हृदयपक्ष
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने प0 राज जगन्नाथ एवं उनकी कृति रसगंगाधर का विस्तृत पिरचय प्राप्त किया। प्रस्तुत इकाई में आप गद्य कवि बाणभट्ट एवं उनकी रचना कादम्बरी का अध्ययन करेंगे। बाणभट्ट तथा उनके द्वारा रचित कथा साहित्य का अनमोल ग्रन्थ रत्न (कादम्बरी) सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य का गौरव बढ़ाता है।

कादम्बरी जैसे अद्वितीय कथा साहित्य के कर्ता के सम्बन्ध में जिज्ञासा की शान्ति के लिए गद्यकवि बाणभट्ट के जीवन-परिचय और उनके कर्तव्य का विवेचन किया जा रहा है। इस इकाई में कादम्बरी का विस्तृत परिचय देते हुए कादम्बरी के विविधरूपों जैसे कादम्बरी का मूलस्रोत कथानक के पात्रों का परिचय आदि को रखा है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप कादम्बरी की कथा के विषय में विस्तार से बता सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- गद्य कवि बाणभट्ट के विषय में सरलता पूर्वक परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कादम्बरी के विषय में विस्तृत जानकारी दे पायेंगें।
- कादम्बरी के अतिरिक्त अन्य गद्यकाव्यों के विषय में भी संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- बाणभट्ट की अन्य रचनाओं को समग्र रूप में अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त हो सकेगी।

4.3 गद्य कवि बाण- जीवन एवं कृतित्त्व

4.3.1 बाणभट्ट का जीवन परिचय

हर्षचरित प्रारम्भिक उच्छ्वासों से बाणभट्ट के जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिलती है। वे वत्सगोत्रीय ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था। बाण की माता का निधन उनकी वाल्यावस्था में ही हो गया था। बालक बाणभट्ट का पालन-पोषण उनके पिता चित्रभानु ने किया। जब बाण की आयु चौदह वर्षकी थी तभी दुर्भाग्य से उनके पिता का भी देहावसान हो गया। इसके पूर्व ही उनके पिता ने बाण के सभी ब्राह्मणोचित संस्कार यथासमय शास्त्रसम्मत रीति से अपनी कुलपरम्परा के अनुसार सम्पन्न करा दिया था। बचपन में ही बाण के सिर से माता-पिता के हाथों की छाया उठ जाने से बाण अत्यन्त सन्तप्त हो गये किन्तु काल-प्रभाव से जब शोक कम हुआ तो बाण में सहज चपलता पूरी तरह घर कर गयी। पिता, पितामहादि के द्वारा अर्जित और संचित धन-वैभव प्रभूत मात्रा में था। अतः बाण की मित्र-मण्डली खूब जम गयी और वे उन सबके साथ देशाटन के लिए घर से निकल पड़े। इस तरह विभिन्न स्थलों का भ्रमण करने के पश्चात् वे अपनी जन्मभूमि में वापस आ गये।

हर्षचरित के अनुसार, ग्रीष्मकाल में एक दिन महाराज हर्ष के भाई कृष्ण ने बाण को बुलवाया बहुत विचार करके युवक बाण ने वहाँ जाने का निश्चय किया। प्रातःकाल तैयार होकर वे अपने

ग्राम प्रीतिकूट से निकले। प्रथम दिन मल्लकूट तथा दूसरे दिन यष्टिग्रहक नामक ग्राम में रात बिताने के पश्चात् तीसरे दिन मणितार के समीप अजिरवती के तट पर स्थित महाराज हर्षदेव के स्कन्धावार में पहुँचे तथा राजभवन के समीप ही निवास किया।

सायंकाल बाणभट्ट महाराज हर्ष से मिलने पहुँचे। प्रथमतः उन्होंने हर्षके हाथी 'दर्पशात' को देखा और तब राजभवन में प्रविष्ट होकर हर्षके दर्शन किये। किन्तु 'यह वही भुजंग बाण है'- कहकर हर्ष ने बाण से बात नहीं की। बाण ने अपनी भुजंगता (लम्पटता) के भ्रम को मिटाने के लिए अपनी ओर से पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया किन्तु हर्ष उन पर प्रसन्न न हुए फिर भी हर्ष के प्रति बाण के हृदय में श्रद्धा भर गयी। वे राजभवन से निकलकर अपने मित्रों के यहाँ रूक गये। राजा ने धीरे-धीरे बाण के सम्बन्ध में अच्छी तरह पता किया और उनके वैदुष्य तथा ब्राह्मणोचित स्वभाव से परिचित होने पर प्रसन्न हो गये। पुनः बाण राजभवन में प्रविष्ट हुए तो राजा ने उन्हें प्रेम, मान, विश्वास और धन की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। महाराज हर्ष के साथ बहुत समय तक रहकर बाण पुनः अपनी जन्मभूमि प्रीतिकूट को लौट आए।

बाणभट्ट विवाहित थे। बाण के पुत्र का नाम भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट था। इस नाम के विषय में ऐकमत्य नहीं है। भूषणबाण, पुलिन्द, पुलिन्ध्र या पुलिन नाम भी कहे जाते हैं। कादम्बरी विषयक एक जनश्रुति के अनुसार बाणभट्ट के दो पुत्र थे। बाण के चन्द्रसेन और मातृशेण नामक दो भाई भी थे। बाणभट्ट के गुरु का नाम भत्सु या भर्वु था। इनके अन्य भी पाठभेद पाये जाते हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि गुरु का सही नाम क्या था? वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' में 'भश्चु' द्वारा निर्मित श्लोक उद्धृत किये गये हैं। महाराजा हर्ष के यहाँ लौटने के पश्चात् अपने बन्धु-बान्धवों के आग्रह पर बाणभट्ट ने महाराज हर्षवर्धन का चरित सुनाया था (अर्थात् अपनी अलंकृत गद्य-शैली में 'हर्षचरित' की रचना की)। इसके पश्चात् बाण के शेष जीवन का वृत्त उपलब्ध नहीं होता। हाँ, किंवदन्ती है कि बाण 'कादम्बरी' को पूरी नहीं कर सके थे और मृत्यु-शैया पर पड़ गये। अपने जीवन के अन्तकाल में उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर पूछा कि कादम्बरी कौन पूरी करेगा ? दोनों पुत्रों ने इसके लिए हामी भरी। तब उन्होंने कादम्बरी के अनुरुप भावकल्पना और भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में परीक्षा लेकर भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट को कादम्बरी पूर्ण करने की आज्ञा दी।

बाण का समृद्ध ब्राह्मण-परिवार में पैदा हुए थे। महाराज हर्ष ने भी उन्हें पर्याप्त धन प्रदान किया था। अतः भोग-ऐश्वर्य की प्रचुर सामग्री उन्हें उपलब्ध थी। इस तरह उन्हें किसी भी प्रकार का अभाव न था और उनका जीवन आर्थिक दृष्टि से निरापद एवं सुखमय था। बाण और मयूर के सम्बन्ध की चर्चा अनेकत्र प्राप्त होती है। बाण की मित्रमण्डली में स्त्री-पुरुष मिलाकर प्रायः चालीस की संख्या में तरह-तरह के लोग थे। इनमें से एक विषवैद्य 'मयूरक' भी था। मित्रों के नाम और उनके गुण वैशिष्ट्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि ये नाम उनके गुणों के आधार पर रख दिये गये थे (यथा-विषवैद्य मयूरक, पुस्तक-वाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चर्मकर आदि)। किन्तु जिस मयूर के साथ बाण के मैत्री-सम्बन्ध की चर्चा मिलती है, वे हर्ष के सभाकवि के रूप में जाने जाते हैं। कुछ लोग मयूर को बाण का श्वसुर और कुछ लोग साला

कहते हैं । प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित 'प्रभावकचरित' में बाण और मयूर का श्लोकबद्ध आख्यान मिलता है। तद्नुसार मयूर ने विद्वान् कवि युवक बाण के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया था। एक बार बाण अपनी रूठी हुई पत्नी को मना रहे थे चूँकि बाण पद्य-कवि नहीं थे अतः एक श्लोक की तीन पंक्तियाँ ही बराबर दुहरा रहे थे, चौथी पंक्ति नहीं बन पा रही थी। बाहर उनसे मिलने के लिए आये हुए मयूर खड़े थे । उनसे नहीं रहा गया और उन्होंने श्लोक के भावानुरूप चौथी पंक्ति बनाकर ऊँचे स्वर में कह दी। इस पर पिता का स्वर पहचाने बिना बाण की पत्नी ने चौथी पंक्ति बनाने वाले उस व्यक्ति को मान-रस-भंग करने के अपराध के लिये कुष्ठ होने का शाप दे दिया । बाद में अपने पिता को तत्काल कुष्ठ हुआ देखकर उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। फिर मयूर ने 'सूर्यशतक' की रचना करके भगवान सूर्य की आराधना की और उनके प्रभाव से कुष्ठ रोग से मुक्त हो गये। मयूर की काव्यात्मक स्तुति का अद्भुत प्रभाव देखकर बाणभट्ट ने भी अपना प्रभाव प्रकट करने के लिए अपने हाथ-पैर काट डाले और देवी चण्डिका की स्तुति की। भगवती की अनुकम्पा से बाण पुनः पूर्ववत् कमनीय भक्तों वाले हो गये। बाणभट्ट द्वारा विरचित 'चण्डीशतक' प्राप्त होता है। 'प्रबन्धचिन्तामणि' में भी इसी प्रकार का बाण-मयूर विषयक आख्यान मिलता है। अन्यत्र भी इस विषय में संकेत प्राप्त होते हैं। आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाशमें मयूर के सम्बन्ध में संकेत किया है।

4.3.2 बाणभट्ट का स्थितिकाल

संस्कृत साहित्य के जिन कवियों के स्थितिकाल का निर्धारण अत्यन्त दुष्कर है, महाकवि बाणभट्ट उनमें से नहीं है। अन्तः साक्ष्यों के आधार पर बाणभट्ट के स्थितिकाल का निर्धारण सरलता से हेा जाता है। सम्राट हर्षवर्धन के साथ बाणभट्ट का संबंध ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट है। बाण, हर्ष की सभा के सम्मानित सदस्य थे। हर्षवर्धन का शासनकाल 606 ई० से 647 ई तक था। बाणभट्ट का समय सातवीं शताब्दी ई० निश्चित ही है। चीनी यात्री ह्वेनसांग 629 ई० से 645 ई० तक भरत में रहा और उसने अपने यात्रा-विवरण में हर्षवर्धन और उनकी राज्यव्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। बाण ने भी हर्ष के जीवनवृत्त का कुछ अंश साहित्यिक रीति से हर्षचरित में सन्निविष्ट किया है। दोनों वर्णनों की तात्विक तुलना करने पर सिद्ध होता है कि दोनों द्वारा वर्णित हर्ष एक ही हैं। बाणभट्ट के समय सम्बन्ध में बर्हिःसाक्ष्यों पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। क्षेमेन्द्र (11वीं शताब्दी ई०) ने अपने रचनाओं में अनेकश: बाण का उल्लेख किया है । भोजराज अपने सरस्वती- कण्ठाभरण में बाण की रचनाओं से उदाहरण देते हैं भोजराज भी 11वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में शासन करते थे ऐसा प्रमाणों से पता चलता है। सोड्ढल ने उदयसुन्दरीकथा में कई श्लोकों में बाण की प्रशंसा की है। सोड्ढल का समय प्रायः 1000 ई० है। आचार्य धनंजय (10 वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध) ने कादम्बरी और बाण का उल्लेख कई बार किया है। धनपाल ने भी 'तिलकमंजरी' वाणभट्ट और उनकी कृतियों-हर्षचरित तथा कादम्बरी की प्रशंसा की है । धनपालका का समय भी 10वीं शताब्दी का उतरार्ध है । त्रिविक्रम भट्ट ने 'नलचम्पू' का रचनाकाल 10वीं शताब्दी ई० का पूर्वाद्ध है । आन्दवर्धन-कृत 'ध्वन्यालोक' में बाण और कादम्बरी का उल्लेख हुआ है। उसमें 'हर्षचरित' के भी उद्धरण प्राप्त

होते हैं। आनन्दवर्धन कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के समकालिक थे जिनका शासनकाल 855 ई॰से 884 ई॰ तक था । अभिनन्द का समय नवीं शताब्दी ई॰ का पूर्वार्द्ध है । अभिनन्द ने 'कादम्बरीकथासार' की रचना की है जिसमें कादम्बरी-कथा संक्षेपतः श्लोकबद्ध निबद्ध है । आचार्य वामन ने अपनी'काव्यलंकारसूत्रवृति' में कादम्बरी से उद्धरण दिये हैं । वामन का स्थितिकाल 800 ई॰ के आसपास माना जाता है । प्रकाशवर्ष ने अपने रसार्णवालंकार में बाण का उल्लेख किया है । प्रकाशवर्षका समय सातवीं शताब्दी ई॰ का उत्तरार्ध है ।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हमें यह ज्ञात होता है कि बाणभट्ट का उल्लेख तथा उनकी कृतियों से उद्धरणों का प्रयोग सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही किया जाने लगा था । अतः बाणभट्ट के स्थितिकाल की पूर्व सीमा सातवीं शताब्दी ई॰ के पश्चात् कथमपि नहीं रखी जा सकती । सम्प्रति अन्तः साक्ष्यों का अवलोकन कर उन पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा । बाणभट्ट की कृतियों में अनेक लेखकों और ग्रंथों का उल्लेख प्राप्त होता है । कादम्बरी और हर्षचरित में रामायण और महाभारत (वाल्मीकि और व्यास) का उल्लेख हुआ है । ये दोनों आर्ष महाकाव्य निश्चित रूप से ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व विरचित हो चुके थे । हर्षचरित में महाकवि (नाटककार) भास का उल्लेख हुआ है । भास का समय ई॰ पूर्व चतुर्थ पंचम शताब्दी माना जाता है । कादम्बरी में 'अर्थशास्त्र' के प्रणेता कौटिल्य का नामोल्लेख किया गया है । अर्थशास्त्र की रचना ई॰ पू॰ 321 से 300 के मध्य की गयी होगी । हर्षचरित में महाकवि कालिदास की सूक्तियों की प्रसंशा बाण ने मुक्तकण्ठ से की है । अधिकांश विद्वान कालिदास का समय ई॰ पू॰ प्रथम शताब्दी मानते हैं । कुछ विद्वान कालिदास को गुप्तकाल (350 ई॰ से 450 ई॰ के मध्य) में मानते हैं । बाणभट्ट ने गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' का प्रशंसार्य हर्षचरित में की है । 'बृहत्कथा' अब उपलब्ध नहीं है किन्तु बाणभट्ट ने अवश्य ही इसका अवलोकन किया होगा । 'बृहत्कथा' की रचना पैशाची प्राकृत में की गयी थी । 'बृहत्कथा' पर आधारित कथासरित्सागर' (सोमदेव) और 'बृहत्कथामञ्जरी' (क्षेमेन्द्र) दो ग्रंथ में पद्यात्मक रूप में उपलब्ध होते हैं। उनसे तुलना करने पर प्रतीत होता है कि बाणभट्ट की 'कादम्बरीकथा' अवश्य ही बृहत्कथा की वस्तु और रचनाशिल्प से प्रभावित है । बृहत्कथा का रचना काल प्रथम शताब्दी ई॰ अनुमानित है । हर्षचरित में ही बाण ने 'सेतुबन्धु' के रचयिता प्रवरसेन का उल्लेख किया है । यह प्रवरसेन वाकाटक वंश के राजा प्रवरसेन द्वितीय हैं, जिनका समय पांचवी शताब्दी ई॰ है ।

उपर्युक्त प्रमाणों की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि बाण ने अपनी रचानाओं में जिन कृतियों और कृतिकारों का उल्लेख किया वे ई॰पूर्व से लेकर पांचवी ई॰ तक के हैं । इससे भी सातवीं शताब्दी ई॰, बाण का स्थिति काल पुष्ट होता है । सबसे पुष्ट प्रमाण तो सम्राट हर्ष की समकालिक होना ही है ।

4.3.3 बाणभट्ट का कृतित्व

बाणभट्ट की तीन कृतियां प्रसिद्ध हैं-हर्षचरित, कादम्बरी और चण्डीशतक। प्रथम दो गद्यकाव्य है और तीसरी कृति पद्यकाव्य है। इनके अतिरिक्त भी बाण के नाम से कुछ अन्य ग्रंथ कहे जाते हैं। यहाँ हम क्रमश: बाणभट्ट की कृतियों का परिचय संक्षेपतः प्रस्तुत कर रहे हैं।

हर्षचरित - विदित ही है कि महाकवि बाणभट्ट ने अपने जीवन के अनेक वर्ष सम्राट हर्षवर्धन के समृद्ध आश्रय में व्यतीत किये थे। इसलिए स्वाभाविक है कि हर्ष जैसे महान् सम्राट का गुणकीर्तन उसके आश्रित प्रतिभाशाली विद्वान कवि के द्वारा किया जाय। हर्षचरित, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक उच्चकोटि की गद्यकाव्य रचना है जिसे समीक्षकों ने:आाख्यायिका' की कोटि में रखा है। इसमें महाकवि बाण और सम्राट हर्ष के जीवन में कुछ अंशों की अलंकृत गद्यशैली में काव्यात्मक प्रस्तुति है।

हर्षचरित आठ उच्छवासों में विभक्त है। इनके प्रारम्भिक तीन उच्छवासों में कवि वंशानुकीर्तन पूवर्क अपना परिचय तथा शेष पाँच उच्छवासों में अपने आश्रयदाता सम्राट हर्षवर्धन के जीवन का कुछ अंश प्रस्तुत किया है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि हर्षचरित एक अपूर्ण रचना है। किन्तु यदि हम हर्षचरित में बाण के कथनों का अनुशीलन करें तो ज्ञात होगा कि यह एक पूर्ण रचना है।

प्रथम उच्छवास

भगवान शिव और भगवती उमा की स्तुति करने के पश्चात कुकवि निन्दा और सुकवि प्रशंसा करके बाण ने पौराणिक शैली में अपने वंश के उद्भव की मनोरम कथा प्रस्तुत की है। ब्रह्मा की सभा में दुर्वासा से अभिशप्त होकर सरस्वती, सावित्री के साथ नियतकाल के लिए निर्वासित होकर मर्त्यलोक में अवतरित होती है। और शोणन्द के पश्चिमी तट पर एक मनोरम वन प्रान्त में निवास करने लगती है। वहां दैव योग से महर्षि च्वयन और सुकन्याय के पुत्र कुमार दधीच से सरस्वती का सुदंर प्रीतिमय मिलन हुआ। उससे सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पति के साथ ही शाप समाप्त हो जाने के कारण सरस्वती, सावित्री के साथ ब्रह्मा लोक चली गयी। उदास दधीच ने पुत्र के पालन का भार भार्गव वंशोत्पन्न ब्राह्मण को सौंपा। अक्षमाला ने समान वात्सल्य से दोनो का पालन-पोषण किया। सारस्वत ने वत्स को सभी विद्यायें प्रदान की तथा उसके लिए प्रीतिकूट नामक निवास बना दिया। स्वयं तपस्या के लिए पिता के पास चला गया।

वत्स के कुल में बहुत समय पश्चात कुबेर पैदा हुए। उनके चार पुत्र जिनमें से पाशुपत से अर्थपति नामक पुत्र हुआ। अर्थपति के ग्यारह पुत्र हए जिनमें से चित्रभानु का विवाह राजदेवी से हुआ। इसी दम्पती के पुत्र बाण हुए। राजदेवी का निधन होने के पश्चात् बालक बाण का पालन पिता चित्रभानु ने किया। बाण जब चौदह वर्ष के हुए तो पिता भी दिवंगत हो गये किन्तु इसके पूर्व ही बाण के सारे संस्कार यथाविधि संपन्न हो चुके थे। पितृवियोग का शोक कम होने पर बाण अपने मित्रों के साथ देशाटन करने निकले और कुछ समय पश्चात् अपने गांव लौटे। बान्धवों ने बाण का अभिनन्दन किया।

द्वितीय उच्छवास - सम्राट हर्ष के भाई कृष्ण के बुलावे पर बाण हर्षसे मिलने गये। हर्षके मन में बाण के प्रति जो कुविचार थे, वे दूर हो गये तथा वे सम्राट के प्रेम-भजन उनके आश्रम में रहने

लगे।

तृतीय उच्छवास - पर्याप्त काल हर्ष की सन्निधि में व्यतीत कर बाण प्रीतिकूल में अपने बंधु बान्धवों के बीच उन लोगों के कहने पर उन्होंने महाराज हर्ष का चरित्र सुनाना आरंभ किया। प्रारंभ में उन्होंने हर्ष के पूर्वज श्रीकण्ठ जनपदान्तर्गत स्थणीश्वर प्रदेशके राजा पुष्यभूति का वर्णन किया।

चतुर्थ उच्छवास- पुष्यभूति से प्रवर्तित राजवंशमें हूणहरिणकेसरी राजाधिराज प्रभाकरवर्धन उत्पन्न हुए। आदित्यपूजक उस राजा की पत्नी का नाम यशोमती था। इस दम्पती को राजवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री नामक तीन संतान हुई। यशोमती के भाई का पुत्र भण्डिय इन दोनों राजकुमारों के अनुचर के रूप में साथ रहने लगा। दो मालव कुमार-कुमारगुप्त और माधवगुप्त भी इनके सहचर हो गये। राजश्रीदास का विवाह मौखरिवंश के ग्रहवर्मा के साथ हुआ।

पंचम उच्छवास- राजा प्रभाकरवर्धन ने कुमार राज्यवर्धन को हुणों को परास्त करने के लिए उत्तरी सीमा पर भेजा। हर्षवर्धन भी कुछ दूर तक उनका अनुगमन करते रहे किन्तु बाद में आखेट के लिए रूक गये। एक रात उन्होंने दुःस्वप्न देखा और अगले दिन उन्हें पिता की गंभीर रूग्णावस्था का संदेश मिला। वे तुरंत लौटे और पिता की दशा देखकर संतप्त हो गये। राजा ने किसी तरह आलिंगन पूर्वक हर्ष को भोजन के लिए राजी किया। राजा की हालत बिगड़ने लगी। चिकित्सा कर रहे वैद्य ने निराश होकर अग्नि में प्रवेश कर लिया। रानी यशोमती ने भी, हर्ष के लाख मनाने के बावजूद राजा की मृत्यु के पूर्व ही अग्निप्रवेश कर लिया। कुछ देर ही राजा का भी प्राणान्त हो गया। हर्ष षोक-सन्तप्त हो गये और बड़े भाई के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

षष्ठ उच्छवास- राज्यवर्धन लौटे और दोनों अत्यंत शोक पूर्वक देर तक रोते रहे। राज्यवर्धन को राज्य से विमुख जानकर हर्ष ने अतिशय विनय कुमार से किया। तभी राज्यश्री का परिचारक आकर रोने लगा कि मालवराज ने ग्रहवर्मा की हत्या करके राज्यश्री को कारागार में डाल दिया है। हर्ष को राज्यभार सौंप कर राज्यवर्धन, भण्डि और दश हजार घुड़सवारों के साथ मालवराज को विनष्ट करने हेतु चल पड़ा। कुछ ही दिनों बाद कुन्तल ने आकर बताया कि राज्यवर्धन ने मालवराज को परास्त कर दिया था किन्तु गौडाधिप ने धोखे से राज्यवर्धन का मार डाला। यह सुनकर हर्ष क्रोध से तमतमा उठा। हर्षने सिंहनाद नाम सेनापति से प्रेरित होकर प्रतिज्ञा की गौडाधिप समेत सभी शत्रुओं का विनाश कर एकच्छत्र राज्य स्थापित करूगाँ। इस अवसर पर गजाधिप स्कन्दगुप्त ने अनेक राजाओं की विपत्तियों का वर्णन किया।

सप्तम उच्छवास - महाराज हर्षवर्धन ने शुभ मुहूर्त में दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। एक पड़ाव पर प्राग्ज्योतिशेश्वर कुमार का दूत आकर उन्हें 'आभोग' नाम छत्र भेंट कर गया और राजा ने कुमार के अनुरोध पर उसे अपना मित्र बना लिया। कुछ समया बाद भण्डि (हर्ष के मामा का पुत्र) आया और उसने रोते हुए बताया कि राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद गुप्त ने कुशस्थल पर अधिकार कर लिया और राज्यश्री कारागार से निकलकर विन्ध्य के वनों में चली गयी है। उसने उसे खोजने के लिए कुछ आदमी लगाये किन्तु सफलता न मिली। तब सोना समेत भण्डि के गौड़ देश का आदेश देकर हर्ष स्वयं राज्यश्री को खोजने चल पड़ा।

अष्टम उच्छ्वास- वन में कई घूमने के पश्चात् एक शबर युवक की सहायता से हर्ष गिरिनदी के तट पर रहने वाले भिक्षु दिवाकर मिश्र के आश्रम में पहुँचे। दिवाकर मित्र के साथी एक भिक्षु द्वारा तत्काल लाये गये वृत्तान्त को सुनकर वे सभी उस स्थान पर पहुँचे जहाँ एक स्त्री साहस पूर्वक अग्नि प्रवेश करने जा रही थी। हर्ष अपनी बहन राज्यश्री को पहचान गये और उसे पकड़कर बचा लिया। भाई-बहन का यह मिलन अद्भुत कारूणिक था। राज्यश्री ने काशाय ग्रहण करने की आज्ञा हर्ष से मांगी किन्तु हर्ष ने उसे तब तक के लिए मना कर दिया जब तक वह दुःखी प्रजा को शत्रुओं का दमन करके सुखी न कर दे। दिवाकर मित्र ने इसका अनुमोदन किया। रात वहीं आश्रम में व्यतीत की। भाई-बहन दोनों अगले दिन प्रातः काल अपने शिविर को चले गये। हर्ष का इतना ही चरित सुनाते-सुनाते दिवसावसान हो गया।

कादम्बरी- बाणभट्ट द्वारा विचरित यह गद्यकाव्य 'कथा' की कोटि में परिगणित है। इसके संबंध में विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

चण्डीशतक- 102 श्लोकों में निबद्ध भगवती चण्डी की स्तुति बाण विरचित है। देवी महिषासुर का वध करती है- यही इस स्तोत्रकाव्य का कथानक है। अमरूशतक के टीकाकार अर्जुनवर्मदेव चण्डीशतक से श्लोक उद्धृत किया गया है। चण्डीशतक पर चार टीकाओं का उल्लेख मिलता है। यह गंगारथ मार्कण्डेयपुराण के दुर्गासप्तशतीय (देवीमाहात्म्य) से प्रभावित है। इन तीनों प्रसिद्ध रचनाओं के अतिरिक्त बाण के नाम से अन्य भी कई रचनायें जुड़ी हैं। उनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है-

मुकुटताडिक-चण्डपालकृत नलचम्पू की व्याख्या से ज्ञात होता है कि बाण ने 'मुकुटताडितक' नामक नाटक की रचना की थी। चण्डपाल ने इसका एक पद्य भी उल्लिखित किया है। भोजकृत श्रृंगारप्रकाश में इसका उल्लेख है।

शारदचन्द्रिका-शारदातनयकृत भावप्रकाशन से ज्ञात होता है कि बाण ने 'शारदचन्द्रिका' की रचना की थी।

पार्वतीपरिणय- कुछ विद्वान् गोत्र और नाम साम्य के आधार पर इसे बाणभट्ट की रचना मानते हैं। वस्तुतः यह ग्रंथ पन्द्रहवी शताब्दी ई॰ के वत्सगोत्रीय वामनभट्टबाण की रचना है।

इनके अतिरिक्त 'पद्यकादम्बरी', शिवस्तुति', 'सर्वचरितनाटक' रचानाओं को भी बाण के नाम से जोड़ा जाता है।

4.4 बाण की कादम्बरी का विस्तृत परिचय

4.4.1 कादम्बरी-कथा का मूल स्रोत

यद्यपि 'कादम्बरी' के प्रथम पात्र 'शूद्रक' के अनेक विद्वान् इतिहास प्रसिद्ध राजा सिद्ध करते है तथापि कथानक वस्तुतः कविकल्पित (उताद्य) है। गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' का मकरन्दिकोपाख्यान को कादम्बरी-कथा का मूलस्रोत माना जाता है। बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में निबद्ध थी और वर्तमान में अनुपलब्ध है किन्तु बाणभट्ट ने अवश्य ही उसका अवलोकन किया होगा। सम्प्रति बृहत्कथा के दो पद्यात्मक संस्करण प्राप्त होते हैं-सोमदेवकृत कथासरित्सागर और क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी। इसके अतिरिक्त 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' भी प्राप्त होता है। इन तीनों

में ही 'मकरन्दिकोपाख्यान' प्राप्त होता है। 'मकरन्दिकोपाख्यान' के पात्रों के नाम कादम्बरी-कथा के पात्रों से भिन्न हैं किन्तु दोनों के ही कथानकों का ढांचा प्रायः मिलता-जुलता है। चूँकि बाण सप्तम शताब्दी ई॰ के हैं और गुणाढ्य ई॰ पूर्व चतुर्थ शताब्दी के आस-पास के अतः निश्चय ही कादम्बरी का कथानक बृहत्कथा से प्रभावित है। कादम्बरी-कथा में और कथासिरत्सागर के राजा सुमनस् की कथा में बहुत अधिक समानता है। कथासरितसागर की यह कथा बृहत्कथा में रही होगी। बाण ने कादम्बरी की रचना में इससे प्रेरणा ग्रहण की है। किन्तु अपनी काव्यप्रतिमा, वैदुष्य (पाण्डित्य), उत्प्रेक्षाशक्ति के बल पर उसे पूर्णतः स्पोज्ञ (मौलिक) बना दिया। कादम्बरी के शूद्रक, चाण्डाल-कन्या, वैशाम्पायन (शुक), जाबालि, हारीत, तारापीड, विलासवती, चन्द्रापीड, शुकनास, महाश्वेता, पुण्डरीक और कादम्बरी क्रमश: कथासरित्सागर के सुमनस् मुक्तलता, शास्त्रगप्र, पौलस्त्य, मारीच, ज्योतिष्प्रभ, हर्षवती, सोमप्रभ, प्रभाकर, मनोरथप्रभा, रश्मिवान् और मकरन्दिका हैं। कुछ अन्य गौड़ पात्रों और स्थानों के नाम भी भिन्न हैं।

बाणभट्ट ने अपनी प्रतिभा और रचना-शक्ति से मूलकथा में पर्याप्त परिवर्तन करके कादम्बरी को वैसा ही नवीन रूप दे डाला है जैसे फाल्गुन के महीने में शोभांजन वृक्ष (सहजन या सहिजन का पेड़) नवीन कलेवर धारण कर लेता है। उन्होनें उत्स के रूप में एक सामान्य लोककथा को लेकर उसे संस्कृत वाड्.मय की उत्कृष्टतम कथा के रूप में प्रस्तुत कर लिया। यह बाण के लोकोत्तरवर्णन निपुण कतिकर्म का ही परिणाम है। उन्होंने अलंकृत गद्य-शैली के आश्रय से काल्पिक प्रणय कथा को अत्यन्त हृदयावर्जन बनाने के साथ ही शुकनासोपदेश जैसे जीवन के व्यावहारिक पक्ष को भी अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। औचित्य और रस के निर्वाह की दृष्टि से मूल कथा में आवश्यक परिवर्तन भी किये गये है।

4.4.2 कादम्बरी का कथानक

संस्कृत गद्य-साहित्य का समुज्ज्वल रत्न 'कादम्बरी' एक कथा-ग्रंथ है। आधुनिक काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इसे एक मनोरम 'उपन्यास' कहा जा सकता है। कादम्बरी का कथानक चन्द्रापीड और पुण्डरीक के तीन जन्मों से संबंध है। गद्यकाव्य कादम्बरी का आरंभ पद्यबद्ध रूप से होता है। इन पद्यों के द्वारा महाकवि बाणभट्ट ने अजरूप परब्रह्म, शिव और विष्णु को नमस्कार करने के पश्चात दुर्जन-निन्दा और सज्जन प्रशंसा की है। माननीय कथा का स्वरूप् प्रतिपादित करने के पश्चात् क्रमश: वात्स्यायन वंश में उत्पन्न कुबेर, अर्थपति और अपने पिता चित्रभानु की महिमा का निरूपण कर अन्ततः अपना परिचय दिया है। तत्पश्चात् कथा प्रारंभ होती है।

विदिशा नरेश शूद्रक एक प्रतापी राजा थे। कला-पारखी, गुणज्ञ, गोष्ठी,-प्रिय विद्वान शासक थे। एक दिन एक चाण्डाल कन्या पिंजड़े में वैशम्पायन नाम का तोता लेकर राजा की सेवा में उपस्थित हुई और उसने पक्षिरत्नभूत उस शुक को राजा को उपहार के रूप में समर्पित कर दिया। वैशम्पायन सभी शास्त्रों का ज्ञाता, बुद्धिमान् और मनुष्यवाणी में स्पष्ट बोलने वाला था। उसने अपना दाहिना पैर उठाकर राजा की जयकार की और उनके सम्बन्ध में एक 'आर्या' का पाठ

किया। राजा अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुआ। उसने मध्याह्न भोजन के पश्चात् राजा को कथा सुनायी।

विन्ध्याटवी में अगस्त्य-आश्रम के समीप पम्पा सरोवर है। पम्पा सरोवर के पश्चिम तट पर विशाल सेमलवृक्ष की कोटर में एक वृक्ष पक्षी अपने शावक के साथ रहता था। एक दिन शबरों की सेना भीषण कोलाहल करती हुई उधर से गुजरी। सेना के निकल जाने के पश्चात् एक वृद्ध उस विशाल सेमल के वृक्ष पर चढ़ गया और कोटरों से शुकों को निकला कर मारकर जमीन पर फेंक देता। उसने उस वृद्ध शुक को मारकर फेंक दिया और उसके साथ ही अपने पिता के पंखों में चिपका हुआ वह शिशु शावक भी नीचे गिर पड़ा। पुण्य बाकी रहने के कारण वह सूखे पत्तों के ढेर पर गिरा। शबर के भूमि पर उतरने के पूर्व ही अपने प्राणों के मोह में वह शुकशावक पास के तमाल वृक्ष की जड़ में जाकर छिप गया। वह शबर जमीन पर पड़े शुकों को बटोर कर (लेकर) चला गया। जब प्यास से व्याकुल वह डरा हुआ भी रेंगता हुआ पानी की खोज में धीरे-धीरे चल पड़ा। स्नान करने के लिए सरोवर की ओर जाते हुए जाबालि-पुत्र हारीत की दृष्टि उस पर पड़ी। वे एक ऋषिकुमार के द्वारा शुक-शावक को सरोवर के पास ले गये, उसके मुँह में पानी की कुछ बूँदें डाली हौर स्नान करने के बाद उसे अपने रमणीय आश्रम में ले गये। शुक-शावक को अशोक वृक्ष के नीचे रखकर उन्होंने पूज्य पिता जाबालि का चरण-स्पर्शपूर्वक अभिवादन किया। मुनियों के पूछने पर उन्होंने शुक शावक की प्रगति का वृत्तान्त बतलाया और कहा कि पंख निकलने तक इसे इसी आश्रम में पाला जायेगा। तब महर्षि जाबालि ने शुक-शावक की ओर देखकर कहा कि यह अपने ही अविनय का फल भोग रहा है। यह सुनकर हारीत समेत सभी मुनियों को बड़ा कुतूहल हुआ। उन्होंने उसके रहस्य को जानना चाहा। तब सन्ध्याकालिक कृत्य सम्पन्न करके महर्षि जाबालि ने शुक के पूर्व जन्म का वृत्तान्त बताया।

उज्जयिनी के राजा तारापीड ने अपने योग्य महामन्त्री शुकनास पर समस्त राज्यभार छोड़कर चिरकाल तक यौवन सुख का उपभोग किया। जब आयु अधिक होने लगी और और कोई सन्तान नहीं हुई तो उनकी चिन्ता बढ़ने लगी। एक दिन महारानी विलासवती भी अपनी निःसन्तान के कारण अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगी। महाकाल के दर्शनों के लिए गयी हुई महारानी ने वहां हो रही महाभारत की कथा के एक प्रसंग में सुना कि पुत्रहीनों को शुभ लोक नहीं मिलते। महाराज तारापीड ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि दैवाधीन वस्तु के लिए सन्तप्त होना उचित नहीं है। गुरु, ऋषि और देवों की अर्चना अपने अधीन है। भक्तिपूर्वक ऐसा करने पर वे प्रसन्न होकर मनोवांछित उत्तम वर देते हैं।

राजा और रानी ने ऐसा ही किया। तारापीड को विलासवती से चन्द्रापीड नामक पुत्र तथा मन्त्री शुकनास को अपनी पत्नी ब्राह्मणी मनोरमा से वैशम्पायन नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। दोनों बालक परस्पर मित्रभाव से साथ ही साथ रहने लगे। दोनों को आचार्यों ने समग्र विद्याओं की शिक्षा दी। विद्या प्राप्त कर चन्द्रापीड इन्द्रायुध नामक अश्व पर सवार होकर वैशम्पायन के साथ राजभवन लौटा और माता-पिता के दर्शन कर आनन्दित हुआ। माता विलासवती ने चन्द्रापीड की ताम्बूलकरंकवाहिनी के रूप में कुलूतेश्वर की पुत्री पत्रलेखा को नियुक्त किया ओर वह कुमार

का विश्वास अर्जित कर उनकी सेवा में लग गयी। तारापीड ने चन्द्रापीड को युवराज पद पर अभिसिक्त किया और चन्द्रापीड ने तीन वर्षों में दिग्विजय कर पृथ्वी मण्डल के राज्यों को अपने अधीन कर लिया। यौवराज्यभिषेक से पूर्व मन्त्री शुकनास ने चन्द्रापीड को राजनीति और आचार-व्यवहार की शिक्षा (उपदेश) दी।

किरातों के नगर सुवर्णपुर का जीत कर वह सेना को विश्राम देने के लिए कुछ दिनों के लिए वहां रुक गया। एक दिन उसने एक किन्नर युगल को देखा। कुतूहल वश उनका पीछा करते हुए वह वन में दूर तक निकल गया। किन्नर युगल तो पर्वत शिखर पर चढ़ गया और चन्द्रपीड जल खोजता हुआ अच्छोद सरोवर पर पहुँच गया। वहाँ शिवमन्दिर में वीणा बजाकर तन्मयतापूर्वक शिवाराधन में निरत एक दिव्यकन्या को देखा। बाद में वह उसके साथ बैठकर उसका सारा हाल जानने लगा। उस कन्या का नाम 'महाश्वेता' था और वह गन्धर्वराज 'हंस' तथा अप्सराकन्या गौरी की एकमात्र कन्या थी। एक दिन वह अपनी माता के साथ स्नानार्थ अच्छोद सरोवर पर आयी थी। वहां उसे एक दिव्य सुगन्धि का अनुभव हुआ हौर उस सुगन्धि का अनुसरण कर वह आगे बढ़ी तो मुनिपुत्र पुण्डरीक और कपिंजल से उसकी भेंट हुई। पुण्डरीक ने वह पारिजात मंजरी महाश्वेता को दे दी। दोनों के बीच प्रणय अंकुरित हो गया। दोनों अपने-अपने घर लौट गये और परस्पर वियोग से सन्तप्त रहने लगे। एक दिन कपिंजल ने आकर पुण्डरीक की गम्भीर अवस्था का निवेदन महाश्वेता से किया। अपनी दासी तरलिका के साथ जब महाश्वेता पुण्डरीक को देखने उसके आश्रम पहुँची तब तक उसके प्राण निकल चुके थे। महाश्वेता विलाप करने लगी और आत्मदाह के लिए उसने तरलिका से चिता तैयार करायी। इसी समय चन्द्रमण्डल से एक दिव्य पुरुष उतरा और पुण्डरीक का निर्जीव शरीर लेकर चला गया। उसने महाश्वेता को पुण्डरीक से पुनर्मिलन का विश्वास दिलाया और प्राणत्याग न करने के लिए कहा। कपिंजल भी उसका पीछा करता हुआ आकाश में उड़ गया।

महाश्वेता ने बताया कि गन्धर्व चित्ररथ की पुत्री कादम्बरी उसकी सखी है। उसने निश्चय किया है कि जब तक महाश्वेता शोकावस्था में रहेगी, तब तक वह अपना विवाह नहीं करेगी। फिर वह चन्द्रापीड को लेकर कादम्बरी से मिलने उसके वास-स्थान हेमकूट गयीं। महाश्वेता ने कादम्बरी से चन्द्रापीड का परिचय कराया। कादम्बरी ने चन्द्रापीड को 'शेष' नामक दिव्य हार उपहार में दिया और साथ ही अपना हृदय भी अर्पित कर दिया। कुछ दिन वहां रहकर चन्द्रापीड और महाश्वेता वापस अच्छोद सरोवर के समीपस्थ आश्रम में लौट आए। कुछ दिन बाद कादम्बरी का सन्देश-वाहक केयूरक वह हार लेकर आया जो चन्द्रापीड वहीं छोड़ आया था। उसने कादम्बरी की कामावस्था को भी चन्द्रपीड से निवेदित कर गया। तब चन्द्रपीड पत्रलेखा के साथ पुनः हेमकूट गया और पत्रलेखा को वही छोड़कर वापस आ गया। पिता तारापीड का सन्देश पाकर चन्द्रपीड ने वैशम्पायन को सेना समेत आने के लिए कहकर स्वयं इन्द्रायुध पर सवार हो, शीघ्र उज्जयिनी पहुँच कर माता-पिता के दर्शन किये। कुछ दिनों बाद पत्र- लेखा आयी। उसने कादम्बरी और महाश्वेता का हाल बताकर चन्द्रपीड से कहा कि उसने कादम्बरी से आपको

मिलाने का वचन दिया है। (यहां तक बाण-रचित कादम्बरी का पूर्वभाग समाप्त होता है और आगे भूषणभट्ट द्वारा लिखित कादम्बरी उत्तरभाग की कथा आरम्भ होती है)।

मेघनाद के साथ केयूरक और पत्रलेखा को पुनः कादम्बरी के पास जाने के लिए रवाना करके चन्द्रापीड स्वयं दशपुर तक आयी सेना के साथ आ रहे अपने मित्र शुकनासपुत्र वैशम्पायन से मिलने चले पड़ा। किन्तु स्कन्धावार में वैशम्पायन को न पाकर बहुत दुःखी हुआ। बाद में पता लगा कि वैशम्पायन तो अच्छोद सरोवर पर ही रह गया। तब चन्द्रापीड वापस उज्जयिनी आया और तारापीड तथा शुकनास से यह वृत्तान्त बताकर वैशम्पायन को खोजने शीघ्रतापूर्वक अच्छोद सरोवर पहुँचा। वहाँ उसे न पाकर जब उसने महाश्वेता से उसके बारे में पूछा तो उसने रोते हुए बताया कि वह ब्रह्मण युवक आया था और वह हठपूर्वक मुझसे प्रणय निवेदन कर रहा था। मेरे निषेध करने पर भी जब उसने अपनी रट नहीं छोड़ी तो मैने उसे शुक हो जाने का शाप दे दिया। वह निष्प्राण हो गिर पड़ा बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि वह आपका मित्र था। इतना सुनते ही चन्द्रापीड का हृदय विदीर्ण हो गया और वह भी निष्प्राण हो धराशायी हो गया। उस समय कादम्बरी भी महाश्वेता क आश्रम पर पहुँच गयी ओर चन्द्रापीड को मरा देखकर व्याकुल हो विलाप करने लगी। उसी समय चन्द्रापीड के शरीर से एक ज्योति निकली और आकशवाणी हुई कि चन्द्रापीड का शरीर सुरक्षित रखना। उससे कादम्बरी का समागम अवश्य होगा। तत्काल बाद पत्र-लेखा, इन्द्रायुध को लेकर अच्छोद सरोवर में कूद गयी। कुछ देर बाद अच्छोद सरोवर से कपिंजल निकल कर बाहर आया उसने महाश्वेता को चन्द्रमा और पुण्डरीक के शाप-प्रतिशाप की कथा बतायी। उसने यह भी बताया कि उस समय आकाशमार्ग से जाते हुये एक, क्रोधी वैमानिक का उल्लंघन कर दिया था तो उसने मुझे अश्वयोनि में जाने का शाप दे दिया। बाद में उसने मुझे बताया कि चन्द्रदेव ही तारापीड के पुत्र चन्द्रापीड होंगे और पुण्डरीक उनका मित्र वैशम्पायन होगा। तुम चन्द्रापीड का वाहन बनोगे और चन्द्रापीड की मृत्यु के पश्चात् जब तुम स्नान कर लोगों तो मेरे शाप से मुक्त होकर पुनः कपिंजल हो जाओगे। उसने प्रणय निवेदन करने वाला वैशम्पायन ही पुण्डरीक था-यह जानकर महाश्वेता विलाप करने लगी। कपिंजल ने उसे आश्वस्त किया तथा चन्द्रापीड, वैशम्पायन और पत्रलेखा के पुनर्जन्म का पता लगाने श्वेतकेतु मुनि ने यहां चला गया। दूतों से यह वृत्तान्त जानकर तारापीड अपने परिजनों के साथ अच्छोद सरोवर पर जा पहुँचे और चन्द्रापीड के सुरक्षित शरीर को देखकर आश्वस्त हुए। इतनी कथा सुनकर महर्षि जाबालि ने कहा कि महाश्वेता के शाप के कारण शुक-योनि में जन्मा यह शावक ही वैशम्पायन है। फिर शुक-शावक ने महाराज शूद्रक को बताया कि कपिंजल मुझे ढूँढता हुआ जाबालि-आश्रम में आया था और पिता श्वेतकेतु की कुशलता बता गया था, जब मैं उड़ने योग्य हो गया था तो एक दिन उत्तर दिशा की ओर जाते हुए एक व्याध के जाल में फँस गया और आज स्वर्ण-पिंजरे में इस चाण्डाल कन्या ने मुझे श्रीमान् के चरणों में पहुँचा दिया है।

शुक-शावक की बातें सुनकर महाराज शूद्रक ने चाण्डाल-कन्या को बुलवाया। उसने आकर कहा कि महाराज आपने इसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन ही लिया है। अब इसके शाप की निवृत्ति सन्निकट है। मैं ही इसकी माता लक्ष्मी हूँ। आप चन्द्रापीड हैं और यह वैशम्पायन

अर्थात् पुण्डरीक है। अब शाप की समाप्ति के बाद आप दोनों सुखपूर्वक साथ-साथ रहेंगे। इतना कह क रवह आकाश में उड़ गयी। तब शूद्रक को भी अपने पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया। उधर महाश्वेता के आश्रम पर बसन्त के आगमन के साथ ही कादम्बरी ने चन्द्रापीड के शरीर को अलंकृत कर उसका आलिंगन किया। चन्द्रापीड जीवित हो गया। पुण्डरीक भी कपिंजल के साथ गगन तल से उतर आया। तारापीड, विलासवती, शुकनास, मनोरमा, चित्ररथ, हंस आदि सभी आनन्दित हो गये। कादम्बरी का चन्द्रापीड के साथ और महाश्वेता का पुण्डरीक के साथ विवाह हो गया और सभी सुखपूर्वक रहने लगे।

4.4.3 कादम्बरी के पात्रों का परिचय

शूद्रक:-संस्कृत वाड्.मय में 'शूद्रक' एक बहुचर्चित नाम हैं। पुराणों से लेकर लौकिक संस्कृत-काव्यों से इसे अनेकत्र राजा के रूप में चित्रित किया गया है। इसे 'मृच्छकटिक' नामक रूपक का कर्त्ता भी कहा गया है। इसके नाम से अन्य रचनायें भी प्राप्त होती है।

कादम्बरी-कथा का आरम्भ ही शूद्रक के उल्लेख (आसीत्.....राजा शूद्रकों नाम) से होता है। वह विदिशा का शासक और चन्द्रापीड का अवतार है। उसकी सभा शुकनास जैसे विशुद्ध आचरण वाले विद्वान ब्राह्मण मन्त्रियों से सुशोभित थी। वह अमित पराक्रमशाली और अप्रतिहत शक्तिसम्पन्न था। सभी राजा सिर झुका कर उसकी आज्ञा का पालन करते थे। जितेन्द्रिय था और सदाचार, धार्मिक तथा यज्ञों का अनुष्ठाता था। शास्त्रज्ञ और साथ ही काव्यज्ञ भी था। प्रजापालक और विद्वानों का समादरकर्ता था। वह गुणग्राही था। वैशम्पायन शुकशावक द्वारा उच्चारित आर्या-''स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ती हृदयशोकाग्नेः। चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्।'' सुनकर आश्चर्य चकित हो जाता है। प्रशंसा करता हुआ अपने मन्त्री कुमारपालित से कहता है-''श्रुता भवद्भिरस्य विहंगमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे स्वरे च मधुरता।''

तारापीड - तारापीड उज्जयिनी के सम्राट हैं। वे चन्द्रापीड के पुत्रवत्सल पिता और महारानी विलासवती के प्रणयी पति हैं। वे धर्म के अवतार और पमरेश्वर के प्रतिनिधि हैं। वे कामदेव के समान शोभासम्पन्न हैं। वे एक योग्य शासक के सभी गुणों से सम्पन्न हैं तथा कौटुम्बिक सम्बन्धों के प्रति भी अत्यन्त संवेदनशीलता हैं। विलासवती के साथ वे भी सन्तान सुख न पाने से दुःखी है तथा पत्नी का प्रसादन करते है। वे उसे कर्म और भाग्य का भरोसा दिलाकर आश्वस्त करते हैं तथा देव, गुरु और अतिथि के समाराधन सपर्या का सुझाव देते हैं। वे पुण्य और पाप को अच्छी तरह समझते हैं तथा अनजान में भी अपने द्वारा अपराध न होने देने के लिए सचेष्ट रहते हैं। तारापीड दैव के विधान से उद्विग्न नहीं होते। उनमें गाम्भीर्य, दृढ़ता और मृदुता, हृदय की विशालता और उदारता ये सब कुछ हैं आदर्शसम्राट के सभी गुणों उनमें मूर्तिमान है। वे अपने कर्तव्य का निर्वाह बड़ी कुशलता से करते हैं। उनका चरित्र अत्यन्त पवित्र और अनुकरणीय है।

चन्द्रापीड

चन्द्रापीड कादम्बरी कथा का नायक है। वह धीरोदात्त नायक है। लक्षण ग्रन्थों में इस कोटि में रखे गये नायक के जो गुण-महासत्त्व, अत्यन्त गम्भीर प्रकृति, क्षमावान्, आत्मश्लाघा से रहित, अचलबुद्धि, विनम्र, दृढ़संकल्पवान्-कहे गये हैं, वे सभी चन्द्रापीड में पाये जाते हैं। चन्द्रापीड चन्द्रदेव का अवतार है। उसने उच्च राजर्षिकुल में जन्म लिया है। वह मनोहर कलेवर, काला बुद्धिमान, स्नेही और पराक्रमी है। स्वाभाविक जिज्ञासा से भरा हुआ है। किन्नर युगल का पीछा करते हुए अच्छोद सरोवर तक पहुँच जाता है और फिर वहां शिवाराधन में तल्लीन वीणा वादिनी एकाकिनी कन्या को देखकर कुतूहल भरी जिज्ञासा होती है। बाल्यावस्था में उसने आचार्यों के चरणों में बैठकर अनेक शास्त्रों और विद्याओं का अध्ययन किया था। उसने व्याकरण, मीमांसा, तर्कशास्त्र, राजनीति, मल्लविद्या, नृतयशास्त्र चित्रकर्म, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वस्तुविद्या, नाटक, कथा, आख्यायिका, काव्य आदि में अध्ययन एवं अभ्यास द्वारा कुशलता अर्जित की थी। वह अत्यनत धैर्यवान् है- 'अहो बालस्यापि सतः कठोरस्येव ते मह्दधैर्यम्।'' उसमें गुरुजनों के प्रति असाधरण श्रद्धा एवं भक्ति है। शुकनास का उपदेश पाकर वह अपने को धन्य मानता है।-''उपशान्त वचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरूपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीति इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मष्ट इव, अभिषिक्त इव, अलंकृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्त स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।'' वह अपने गुरुजन का सम्मान करता है। माता-पिता की पाद वन्दना करता हैं मन्त्री शुकनास का अभिवादन करता है और उनके समक्ष भूमि पर बैठता है। शिष्टाचार का वह जंगम स्वरूप ही है। अपने परिजनों का भी यथोचित आदर करता है। इन्द्रायुध अश्व को देखकर उसके विस्मय की सीमा नहीं रहती। वह मन ही मन कहता है-''महात्मन्! आप चाहे जो भी हों, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मेरे आरोहण की धृष्टता को क्षमा कीजिए। अज्ञात देवता भी अनुचित अनादर के भाजन हो जाते हैं।''

वह दूसरों की इच्छाओं का सदैव ध्यान रखता है। महाश्वेता के आग्रह पर वह हेमकूट जाने के लिए तैयार हो जाता है। उधर से लौटकर आने पर पिता के बुलाने पर शीघ्रतापूर्वक उज्जयिनी के लिए प्रस्थान कर देता है। चन्द्रापीड परिहास कुशल भी है। कादम्बरी में उसके हास्य-व्यंग्य के अनेक प्रशंसा प्राप्त होते हैं। चन्द्रापीड एक आदर्श मित्र और सखा है। 'सुहृद्' शब्द की अन्वर्थकता उससे ही है। वह मैत्री के पवित्र सम्बन्ध का प्रयत्नपूर्वक निर्वाह करता है। महाश्वेता के साथ उसकी मैत्री अत्यन्त पवित्र है। महाश्वेता द्वारा यह बताने पर कि वैशम्पायन को उसने शुक होने का शाप दे दिया है, वह महाश्वेता को कुछ नहीं कहता। उज्जयिनी में यह संवाद पाते ही कि वैशम्पायन सेना के साथ नहीं है, पीछे छूट गया है; वह तुरन्त ही वैशम्पायन के ढूँढ निकालने के लिए चल पड़ता है। वैशम्पायन उसका बालसखा हैं महाश्वेता द्वारा शापग्रस्त होकर उसकी मृत्यु का संवाद सुनते ही उसका हृदय विदीर्ण हो गया और वह भी निष्प्राण हो गया। सच्ची मित्रता का यह अनुपम निदर्शन है।

चन्द्रपीड यथार्थतः प्रेमी है। वह कादम्बरी को हेमकूट में देखकर उसके प्रति आकृष्ट होता है। उसकी अनुरागमयी स्मृति अपने हृदय में सदैव बनाये रखता है। अभी वह हेमकूट से महाश्वेता के आश्रम में आया ही था कि कादम्बरी की अस्वस्थता का हाल जानकर पुनः अविलम्ब

पत्रलेखा के साथ कादम्बरी को देखने जाता है और पत्रलेखा को कादम्बरी के पास ही छोड़ कर वापस होता है । कुलूतेश्वर की राजकन्या पत्रलेखा (नवयुवती सुन्दरी) विलासवती के द्वारा, चन्द्रापीड नवयुवक राजकुमार की ताम्बूलकरंकवाहिनी बनायी गयी । वह चन्द्रापीड की अतिविश्वासपात्र हो गयी किन्तु कादम्बरी में कहीं भी चन्द्रापीड का उसके प्रति आकर्षण संकेतित नहीं है। इस पर कुछ समीक्षकों ने चन्द्रापीड को निष्ठुर और हृदयहीन कहा है। किन्तु चन्द्रापीड पर ऐसा आक्षेप करना उचित नहीं है वह एक आदर्श भारतीय युवक है और धर्माविरुद्ध काम की मर्यादा का पालन करने वाला है। इस प्रकार, चन्द्रापीड को बाणभट्ट ने इस महनीय कालजयी कथा के आदर्श नायक के रूप में प्रस्तुत किया है।

शुकनास

सदाचारी ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न शुकनास, उज्जयिनी के सम्राट तारापीड का मन्त्री है। वह शास्त्रों का मर्मज्ञ वेत्ता है और नीतिशास्त्र के सम्यक् प्रयोग में अत्यन्त निपुण है। वह राजा का अत्यन्त विश्वास पात्र और सम्मान भाजन है। वह प्रजा के कल्याण के लिए सतत निरत रहता है। विपत्काल में भी उसकी प्रज्ञा तनिक भी मलिन नहीं होती और स्थिर चिन्तन में समर्थ रहती है। वह धैर्य का धाम, मर्यादा का स्थान, सत्य का दृढ़ सेतु, गुणों का गुरु और आचारों का आचार्य हैं चन्द्रापीड के यौवराज्याभिषेक के अवसर पर चन्द्रपीड को उसके द्वारा प्रदत्त उपदेश संस्कृत साहित्य की अनुपम अमूल्य निधि होने के साथ ही एक शासक के लिए उसके धर्म-कर्म की आदर्श आचार संहिता है। शुकनास परिस्थितियों का ठीक-ठीक आकलन करता है और कालोचित निर्णय लेता है। वह राजा को सदैव सत्यपरामर्शदेता है। शुकनास के विचार अत्यन्त पवित्र और दृष्टि सर्वथा निर्मल है। उसके लिए अपने-पराये में कोई भेद नहीं है। शुकनास एक योग्य शासक का सुयोग्य मन्त्री है।

वैशम्पायन

वैशम्पायन पुण्डरीक का अवतार है जो महाश्वेता के शाप से शुक की योनि में उत्पन्न होता है जिसे उसकी माता लक्ष्मी, चाण्डालकन्या के रूप में स्वर्णपिंजर में लेकर शूद्रक की सेवा में उपस्थित होती है। वैशाम्पायन, पूर्व जन्म में महामुनि श्वेतकेतु का पुत्र होने के कारण सदाचार सम्पन्न संस्कारवान् और शास्त्रज्ञ है। शुकनासपुत्र वैशम्पायन के रूप में वह चन्द्रापीड का बाल सखा है और उसने उनके साथ ही विद्याध्ययन किया है। वह सदैव चन्द्रापीड का अनुगामी रहता है।

पुण्डरीक: -महामुनि श्वेतकेतु और लक्ष्मी का पुत्र मुनिकुमार पुण्डरीक है। मुनिवृत्ति के प्रतिकूल कामुकता इसके अन्दर भरी हुई है । यही कारण है कि महाश्वेता को देखते ही वह उस पर आसक्त हो जाता है और अपनी सुध-बुध खो बैठता है । उसका मित्र कपिञ्जल उसे लाख समझाता है किन्तु उसका कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ता, पलटे वह उसी पर खीझने लगता हैं पुण्डरीक की सुन्दरता अवर्णनीय है।

विलासवती- उज्जयिनी-नरेश तारापीड की महारानी विलासवती है । वह निःसन्तानता की असह्य पीड़ा से अत्यन्त दुःखित होती है । अपने पति महाराज तारापीड के समझाने पर

गुरुजनसेवा और देवाराधन में तत्पर होती है। फलतः उसे चन्द्रमा के समान सुन्दर पुत्र प्राप्त होता है। उसका नाम चन्द्रापीड रखा जाता है। पुत्र के प्रति जो स्वाभाविक वत्सलता माँ में होती है, विलासवती में उससे कहीं अधिक है क्योंकि अनेक व्रतानुष्ठानादि पुण्य उपायों से पुत्र-प्राप्ति हुई है। चन्द्रापीड विलासवती का एकमात्र पुत्र है। आचार्य कुल में चन्द्रापीड के भेजे जोने का वह भरसक प्रयत्न करती हैं। इस विषय में वह अपने पति को कठोर हृदय कहती है। विलासवती पति परायण का आदर्श भारतीय स्त्री है। लज्जा उसका सहज अलंकरण है। वह एक आज्ञाकारिणी भार्या है, पुत्रवत्सला माता है तथा उदार गृहिणी है।

महाश्वेता- चन्द्रापीड ने अच्छोद सरोवर पर शिवायतन में वीणावादनपूर्वक भगवान् शिव की आराधन करती हुई जिस अनिन्द्य सुन्दरी कन्या को देखा था, उसका नाम 'महाश्वेता' है। महाश्वेता कठोर व्रत और तपश्चर्या का मनो जीवित विग्रह है। उसका चरित एवं चरित्र सर्वथा निर्मल है। यथार्थनामा गौरवर्णा महाश्वेता के शरीर से चतुर्दिक प्रभामण्डल का विस्तार हो रहा है मानो सुदीर्घकाल से राशीभूत तपःप्रभा ही विकीर्ण हो रही है। समीपवर्ती वनप्रान्त को वह अपनी कान्ति से धवल बना रही है। वन्य पशु पक्षी भी उसके सान्निध्य से वीणा की स्वरलहरी का आनन्द ले रहे हैं। चन्द्रापीड महाश्वेता के दिव्य सौन्दर्य को देखकर विस्मित हो उठा।

जिस तरह महाश्वेता का शरीर श्वेताभ है उसी तरह सका अन्तःकरण भी नितान्त निष्कलुषहै। वह निर्मत्सर, निरहंकार और विनय की पराकोटि में स्थित है। वह सदाचार की प्रतिमूर्ति है। चन्द्रापीड को देखते ही बोल पड़ती है-''अतिथि का स्वागत है। महाभाग इस स्थान पर कैसे आ पहुँचे? तो आइए अतिथि सत्कार स्वीकार कीजिए।'' विनम्र और निश्छल व्यवहार से उसके हृदय की उदारता झलकती हैं अपरिचित पुरुष-अतिथि से भी वह इस प्रकार निवेदन करती है जैसे वह उससे चिरपरिचित हो। महानुभाव चन्द्रापीड के द्वारा उसके विषय में पूछने पर वह रोने लगती है। उसका सन्ताप उसके कोमल हृदय को पिघला देता है। वह निःसंकोच अपना सारा वृत्तान्त चन्द्रापीड से कह डालती है। पुण्डरीक नामक मुनिकुमार के दर्शनमात्र से ही वह उसे अपना हृदय दे देती हैं स्तम्भित सी, लिखित सी, उत्कीर्ण सी ऐसी अनिर्वचनीय दशा में पहुँची हुई वह बहुत देर तक अपलक पुण्डरीक को निहारती रहती है -

'तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भकेन अकथितषिक्षितेनानायेयेन, स्वसंवेद्येन, केवलं न विभाव्यते किं तद्रूपसम्पदा, किं मनसा, किं मनसिजेन, किमभिनवयौवनेन, किमनुरागेणैवोपदिष्यमानं, किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण, अहं न जानामि, कथं कथमिति तमतिचिरं व्यलोकयम्।'

पुण्डरीक भी काम के वशीभूत हो जाता है। महाश्वेता अपनी माँ के बुलाने पर किसी-किसी तरह अच्छोद सरोवर में स्नान करके उसके साथ वापस घर जाती है। कपिंजल, महाश्वेता के घर जाकर पुण्डरीक की विषमावस्था का वर्णन करता है। महाश्वेता पुण्डरीक से मिलने जाती है किन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही पुण्डरीक का प्राणान्त हो जाता है। महाश्वेता विलाप करने लगती है। दिव्य पुरुष के आश्वासन पर विश्वास करके वह पुण्डरीक से पुनः मिलने की आशा बाँधे तपश्चर्या करने लगती है। भारतीय नारी के निरवद्य प्रतिमान के रूप में महाश्वेता हमारे समक्ष

आती है। उसमें निश्चिल और निश्छल प्रेम की पराकाष्ठा दिखायी पड़ती है। एक बार पुण्डरीक को अपने हृदय में बैठा लेने पर फिर उससे मिलने की आशा में निरवधि प्रतीक्षा के कठिन व्रत का पालन करती है। दिव्य पुरुष के वचन ओर आकाशवाणी पर उसे पूर्ण विश्वास हैं चन्द्रापीड के साथ उसका सहज मैत्री भाव उसके हृदय की उदारता है। एकान्त शिवाराधन, ईश्वर के प्रति उसकी असीम श्रद्धा का परिचायक है। कादम्बरी उसकी अत्यन्त प्रिय सखी है। चन्द्रपीड, को साथ लेकर वह उसका हाल जानने उसके घर जाती है और चन्द्रापीड-कादम्बरी के मध्य प्रणय-सेतु का कार्य करती है।

पुण्डरीक के प्रति उसकी इतनी दृढ़ प्रीति है कि उसके अतिरिक्त वह किसी का नाम भी इस विषय में लेना पसन्द नहीं करती। वैशम्पायन उसे देखते ही उस पर आसक्त हो जाता है और बार-बार प्रणय याचन करता है। इस पर क्रुद्ध होकर वह उसे शुक योनि में जन्म लेने, का शाप दे देती है। बाद में यह जानकर कि यह चन्द्रापीड का मित्र था-पश्चाताप भी करती है। ये सारी चारित्रिक विशेषतायें महाश्वेता को अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त कराती हैं। महाश्वेता गम्भीर भाव और सरल वचन वाली है। वह उदारता, शुचिता त्याग, तपस्या ओर प्रीति की एकत्र भास्वर राशि है-

कादम्बरी- कादम्बरी हेमकूट पर निवास करने वालो गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री (कन्या) है। यह बाणविरचित 'कादम्बरी' कथा-ग्रन्थ की नायिका है। बाण ने अपनी नायिका के नाम पर ही इस कथाग्रन्थ का यथार्थ नामकरण कादम्बरी किया है-

'कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्।' वस्तुतः नायिका कादम्बरी में जो रूपसौन्दर्य की मादकता और प्रीतिमाधुर्य का जो उल्लास है वह हूबहू कादम्बरी कथा में भी है। एक महाकवि की उदात्त कल्पना है और दूसरी उसकी आलंकारिक अभिव्यक्ति। कादम्बरी कन्या मुग्धा, परकीया कोटि की नायिका है। कथा में महाश्वेता-वृत्तान्त के पश्चात् कादम्बरी की कथा आती है। वह सहानुभूति और त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तु की जाती है। वह महाश्वेता की अतिप्रिय सखी है। उसने प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक महाश्वेता का मिलन 'पुण्डरीक' से नहीं हो जाता, वह अपना विवाह नहीं करेगी। महाश्वेता ने उसे समझाया भी किन्तु वह इस विषय में अविचलित रहती है।

नारी-सौन्दर्य का एक दिव्य परिवेश कादम्बरी से निसर्गतः सम्पृक्त है। उसमें प्रीति की अनुपम विच्छित्ति है, भावों की प्रौढि है, जीवन का आदर्श है, लौकिक व्यवहारों के प्रति नैष्ठिक चेतना है, मैत्रीनिर्वाह के लिए असीम धैर्य है, स्नेह की सरल तरलता है, तपश्चर्या की दृढ़ता है व मानवीय संवेदनाओं की मनोरम मूर्ति है। कादम्बरी का अनुभव प्रथम दर्शन में ही चन्द्रापीड को प्रभावित कर उस पर अमिट छाप छोड़ देता है।

चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी के मन में कामवेदना का संचार हो जाता है। जब वह ताम्बूल देने के लिए चन्द्रापीड की आगे अपना हाथ बढ़ाती है, तो साध्वसभाव के कारण उसके अंगों में कम्पन उत्पन्न हो जाता है। उसकी आँखों में आकुलता व्याप्त हो जाती है और सारा शरीर पसीने से नहा उठता है। उसे पता भी नहीं चलता कि उसके हाथ से रत्न वलय गिर गया है।

यद्यपि कादम्बरी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक पुण्डरीक से महाश्वेता का मिलन नहीं हो जाता, वह अपना विवाह कथमपि नहीं करेगी किन्तु चन्द्रापीड को देखते ही वह कामदेव के बाणी से बिंध जाती है। चन्द्रापीड प्रथम दर्शन में ही उसके हृदयराज्य का अधिपति बन जाता है। महाश्वेता के पूछने पर कि चन्द्रापीड कहाँ ठहरेंगे? कादम्बरी कहती है कि जबसे इनके दर्शन हुए है तभी से परिजन और भवन की क्या बात, ये तो मेरे तन-मन के भी स्वामी हो गये है। आपको अथवा इनको जहाँ भी अच्छा लगे, वहीं रहें। कादम्बरी मर्यादा का पालन करना अच्छी तरह जानती है। विनम्रता और लज्जा, उसका सहज गुण है। यद्यपि वह चन्द्रापीड की ओर आकृष्ट है फिर भी अपने इस आचरण से उसे क्षोभ है-

'अगणितसर्वषया तरलहृदयां दर्शयन्त्याद्य मया किं कृतमिदं मोहान्धया ? तथा हि, अदृष्टपूर्वोऽयमिति साहसिकता मया न संचितम् लघुहृदयां मां कलयिष्यतीति निशंकया नाकलितम्। कास्य चित्तवृत्तिरिति मया न परीक्षितम्। दर्शनानुकूलाहमस्य नेति वा तरलया न कृतो विचारक्रमः।

गुरुजन के प्रति आदर एवं श्रद्धा तथा प्रियजन के प्रति स्नेह और सहानुभूति कादम्बर के चरित्र की विशेषता हैं वह अपनी सखी (अथवा सुहृद्) के दुःख और सुख से सुखी होती है। महाश्वेता के प्रति उसके हृदय में अगाध सम्मान और प्रीति है। बाण ने कादम्बरी को एक आदर्शसखी तथा प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है।

पत्रलेखा- पत्रलेखा 'कादम्बरी' की एक महत्वपूर्ण स्त्रीपात्र है। यह चन्द्रापीड की ताम्बूल करंकवाहिनी नियुक्त है। यह कुलूतेश्वर की पुत्री है जो महाराज उज्जयिनी नरेश के द्वारा कुलूत की राजधानी जीतकर इसे भी बन्दिनी बनाकर अन्तःपुर में रखा गया था। एक अनाथ राजदुहिता होने के कारण पत्रलेखा के प्रति महारानी विलासवती की अत्यन्त स्नेह हो गया और वे उसे अपनी कन्या के समान मान देने लगीं थी, जब चन्द्रापीड अध्ययन समाप्त कर राज भवन लौट और युवराज पद पर अभिषिक्त हुए, उसी बीच महारानी ने अपने प्रिय पुत्र की सेवा में अपनी दुहिता तुल्य पत्रलेखा को कंचुकी की साथ भेजा। चूँकि चन्द्रापीड पत्रलेखा के कुलशील से परिचित न था अतः महारानी ने पत्रलेखा के विषय में सविस्तार सन्देश चन्द्रापीड को दिया था। पत्रलेखा राजकन्या होते हुए भी दुर्भाग्य से दासी बनी। वह अनिन्द्य सुन्दरी थी और चन्द्रापीड की रात दिन की संगिनी थी। वह चन्द्रापीड की प्रिय विश्वासप्रात्र थी किन्तु बाण ने कहीं भी इन दोनों के बीच काम विकास का संकेत भी नहीं किया है। कुछ समीक्षकों ने महाकवि बाण की अन्धदृष्टि की कटु आलोचना की है किन्तु बाण मर्यादित प्रेम का चित्रण करने वाले कवि है। उन्होंने परिचारिका के रूप में पत्रलेखा के उदात्त चरित्र का सुन्दर चित्रण किया है।

4.4.4 कादम्बरी का कला एवं हृदय पक्ष

बाण की कादम्बरी में प्रकृति के सौम्य तथा उग्र रूप का वर्णन जितना रोचक है, उतना ही रोचक है उसके नाना वस्तुओं का वर्णन है। वर्णनों को संश्लिष्ट तथा प्रभावोत्पदक बनाने के लिए, भावों में तीव्रता प्रदान करने के हेतु बाण ने उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, विरोधाभास आदि अलंकारों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है, परन्तु 'परिसंख्या' अलंकार के तो वे सम्राट् प्रतीत होते हैं।

बाण के समान किसी अन्य कवि ने 'श्लिष्ट परिसंख्या' का इतना चमत्कारी प्रयोग शायद ही किया हो। इन अलंकारों के प्रयोग ने बाण के गद्य में अपूर्व जीवनी-शक्ति डाल दी है। आदर्श गद्य के जिन गुणों का उल्लेख बाण ने हर्ष चरित में किया है वे उनके गद्य में विशदतया वर्तमान है-

नवोऽर्थो जातिग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ।।

अर्थ की नवीनता, स्वाभावोक्ति की नागरिकता, श्लेश की स्पष्टता, रस की स्फुटता, अक्षर की विकटबन्धता का एकत्र दुर्लभ सन्निवेश कादम्बरी को मंजुल रसपेशल बनाये हुए है। उनके श्लेष-प्रयोग जूही की माला में पिरोये गये चम्पक पुष्पों के समान मनमोहक होते हैं- निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव। 'रसनोपमा' का यह उदाहरण कितना मनोरम है-क्रमेण च कृतं में वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकरेण इव मदेन नवयौवनेन पदम्।

कादम्बरी में हृदयपक्ष का प्राधान्य है। कवि अपने पात्रों के अन्तस्तल में प्रवेश करता है, उनकी अवस्था-विशेष में होने वाली मानस वृत्तियों का विश्लेषण करता है तथा उचित पदन्यास के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति करता है। पुण्डरीक के वियोग में महाश्वेता के हार्दिक भावों की रम्य अभिव्यक्ति बाण की ललित लेखनी का चमत्कार हैं चन्द्रापीड के जन्म के अवसर पर राजा तथा रानी के हृदयगत कोमल भावनाओं का चित्रण बड़ा ही रमणीय तथा तथ्यपूर्ण हुआ है। चन्द्रापीड के प्रथम दर्शन के अनन्तर स्वदेश लौट आने पर कादम्बरी के भावों का चित्रण कवि के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सुन्दर निदर्शन है। बाण की दृष्टि में प्रेम भौतिक सम्बन्ध का नामान्तर नहीं है, प्रत्युत वह जन्मान्तर में समुद्भूत आध्यात्मिक संबंध का परिचायक है। कादम्बरी 'जन्मान्तरसौहृदय' का सजीव चित्रण हैं विस्मृत अतीत था जीवित वर्तमान को स्मृति के द्वारा एक सूत्र में बाँधनेवाली यह प्रणयकथा हैं बाणभट्ट ने दिखलाया है कि सच्च प्रेम कुल और समाज की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। वह संयत तथा निष्काम होता है। काल की कराल छाया न उसे आक्रान्त कर सकती है, न काल का प्रवाह उसकी स्मृति को मलिन और धुँधला बना सकता है। महाश्वेता तथा पुण्डरीक का, कादम्बरी तथा चन्द्रापीड का अनेक जन्मों में अपनी चरितार्थ तथा सिद्धि प्राप्त करनेवाला प्रेम इस आदर्श प्रणय का सच्चा निदर्शन है।

4.5 सारांश

बाणभट्ट की काव्य प्रतिभा एवं उनका गद्य वैशिष्ट्य तथा उनका प्रकृष्ट पाण्डित्य, समस्त संस्कृत साहित्य में उनके व्यक्तित्व को गरिमामय बनाता है। अपनी कृति कादम्बरी तथा हर्षचरित के द्वारा उन्होंने संस्कृत कथा एवं आख्यायिका दोनों साहित्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया हैं जिसका बृहत् रूप आप अपनी समक्ष मेधा द्वारा ग्रहण कर सकते है। इस इकाई में बाणभट्ट का समय, कृतियां, एवं उनके विविध रूपों को यथा स्थान रखा गया है जिसके अध्ययन से आप बाणभट्ट के विषय में समग्र जानकारी एक स्थान पर प्राप्त कर सकेगें।

4.6 शब्दावली

ब्राह्मणोचित्त	ब्राह्मण के अनुरूप
प्रगल्भता	वाक्य चातुर्य
भावानुरूप	भाव के अनुरूप
कुशस्थल	कान्यकुब्ज
कुतूहल	बेचैनी
संध्याकालिक	संध्या के समय
ताम्बूलकरंकवाहिनी	पान के डब्बा को लेकर चलने वाली

3. बहुविकल्पीय

(अ) चण्डीशतक में श्लोको की संख्या क्या है?

(क) 102 (ख) 99 (ग) 201 (घ) 120

(ब) कादम्बरी कथा का मूलस्रोत क्या है?

(क) दशकुमार चरितम् (ख) जातकथा (ग) वृहद्कथा (घ) महाभारत

(स) चन्द्रापीड राजकुमार था-

(क) विदिशा (ख) उज्जैनी (ग) कन्नौज (घ) हस्तिनापुर

4 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

(क) कादम्बरी गन्धर्वराज.....की पुत्री थी।

(ख) बाण भट्ट के पिता का नाम.....था।

(ग) हर्षचरित आठ.....में विभक्त है।

5. निम्नलिखित वाक्यों में सही वाक्य के समक्ष ( ) का चिन्ह तथा गलत के समक्ष ( ) का

चिन्ह लगाये?

(क) बाणभट्ट की माता का नाम भीमादेवी था। ( )

(ख) शूद्रक प्रीतिकूट का राजा था। ( )

(ग) तारापीड उज्जैनी का राजा था। ( )

4.7 बोध प्रश्नो के उत्तर

3. अ (क) ब (ग) स (ख)

4. (क) चित्ररथ (ख) चित्रभानु (ग) उच्छवास

5 (क) (ग्) (ख) (ग्) (ग) (√)

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कन्हैया लाल पोद्दार, संस्कृत साहित्य का इतिहास
2. डा॰ अमरनाथ पाण्डेय,बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन

4.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, उमाशंकर शर्माऋषि
2. साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ
3. संस्कृत वांगमय का बृहद्इतिहास: डा॰ बलदेव उपाध्याय

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बाणभट्ट के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए ?
2. कादम्बरी एक कथा है सिद्ध कीजिए ?

इकाई - 5. सुबन्धु एवं उनकी कृति वासवदत्ता का परिचय

इकाई की रूपरेखा

51. प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 सुबन्धु का जीवन परिचय एवं कृतित्व
    5.3.1 सुबन्धु का समय
    5.3.2 सुबन्धु का जीवन परिचय
    5.3.3 सुबन्धु का निवास स्थान
    5.3.4 सुबन्धु का कर्तृत्व
    5.3.5 वासवदत्ता का कथानक
5.4 वासवदत्ता का विस्तृत परिचय
    5.4.1 वासवदत्ता का राजनीतिक परिचय
    5.4.2 वासदत्ता का कलात्मक परिचय
    5.4.3 वासदत्ता का समीक्षात्मक परिचय
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने बाणभट्ट का परिचय एवं उनके द्वारा रचित कादम्बरी कथा का विस्तृत अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप सुबन्धु के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे । गद्य काव्य रचनाओं की रत्नत्रयी-सुबन्धु, बाण, दण्डी, में सुबन्धु ही सबसे प्राचीन है और उनका ग्रन्थ 'वासवदत्ता' सर्वप्रथम गद्य काव्य का ग्रन्थ है, महाकवि की लेखनी श्लेष की रचना में विशेष पटु है। संस्कृत गद्य के निर्माण में इन्होंने अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सुबन्धु द्वारा रचित वासवदत्ता का गद्यकाव्य में क्या स्थान है यह बता सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- गद्य काव्य को सहजता से जान सकेगें।
- सुबन्धु से तथा इनकी रचना से परिचित हो सकेगें।
- वासवदत्ता के राजनीतिक कलात्मक, तथा समीक्षात्मक परिचय दे सकेगें।

5.3 सुबन्धु का जीवन परिचय एवं कृतित्व

5.3.1 सुबन्धु का समय

'वासदत्ता' नामक गद्यकाव्य के रचयिता सुबन्ध का स्थितिकाल निश्चित नहीं है। निश्चित साक्ष्यों के अभाव में सुबन्धु का काल निर्धारित कर पाना दुरुह कार्य हैं कुछ स्रोतों के आधार पर सुबन्धु का सम्भावित समय प्राप्त किया जा सकता है।

वामन, (समय 800ई०) ने 'काव्यलंकारसूत्र' में 'उत्कलिकप्राय' गद्य के उदाहरण के रूप में एक गद्यांश उद्धृत किया है कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटपातिमत्तमातङ्.गकुम्भस्थल-गलन्मदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभासुरमुखे केसरिणि.....।

यही गद्यांश बाण के 'हर्षचरित' में भी ज्यो का त्यों पाया जाता है। अत्यधिक भिन्नताओं के साथ ही गद्यांश सुबन्धु की 'वासवदत्ता'में भी पाया जाता है-

कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटपातिमत्तमातङ्.गकुम्भस्थल-
रुधिरच्छताच्छुरितचारुकेसरभासुरकेसरिकदम्बेन.....।

वामन और बाण के उद्धरणों में एकरूपता होने से यह प्रतीत होता है कि इस गद्यांशके सन्दर्भ में वामन बाण के 'हर्षचरित' से ही प्रभावित हुए होंगे क्योंकि बाण का काल सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध लगभग निश्चित हैं। बाण हर्ष के दरबारी कवि थे। हर्षका समय 606 से 647 ई० माना जाता है। अतः बाण इस समय के आधार पर वामन (800ई०) पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। पुनः 'हर्षचरित' और 'वासवदत्ता' में उद्धरणों की साम्यता से यह प्रतीत होता है कि बाण ने सुबन्धु से इस गद्यांश को ग्रहण किया होगा क्योंकि बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में 'वासवदत्ता' नामक

रचना का उल्लेख किया है। इसमें बाण ने 'वासवदत्ता को कवित्व के गर्व का नाशक बताया है। यह भी कहा जा सकता है कि बाण की उपरोक्त उक्ति भास के 'स्वप्नवासवदत्तम् के बारे में भी हो सकती है लेकिन ऐसा सोचने के लिए कोई आधार नहीं है क्योंकि बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में भास का अलग से उल्लेख किया है। इसके अतिरक्त 'स्वप्नवासवदत्तम् सरल शैली में रचित एक नाटक है, जिसमें श्लिष्टता या विद्धता का कोई विशेष पुट नहीं दिखता। अतः कहा जा सकता है कि कवियों का मान-मर्दन कर सकने में कोई 'वासवदत्ता' सक्षम है तो वह है- सुबन्धु की 'वासवदत्ता'। अपने विद्वतापूर्ण वर्णनों के कारण, जटिल श्लेषयुक्त सामसिक शैली के कारण सुबन्धु की 'वासवदत्ता' को ही यह गौरव दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध डॉ॰ भोलाशंकर व्यास का विचार द्रष्टव्य है- हमें ऐसा प्रतीत होता है, बाण को सुबन्धु की कृति का पूरी तरह पता था और हर्षचरित से भी अधिक इस बात की पुष्टि कादम्बरी की कथानक रूढ़ियों के सजाने और शैली के प्रयोग से होती है।अतः बाण सुबन्धु से परवर्ती सिद्ध होते हैं।

वाक्पतिराज (700-725) ने प्राकृत-काव्य 'गउडवहो' की रचना किया हैं। इसमें उन्होंने सुबन्धु का उल्लेख किया है लेकिन बाण का नहीं। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय तक सुबन्धु की पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी, पर बाण अभी तक अप्रसिद्ध ही थे। इन तथ्यों के आधार पर सुबन्धु के काल की उत्तरसीमा बाण से पूर्व अर्थात् लगभग 550 ई॰ आंका जा सकता है। अब सुबन्धु के काल की पूर्व सीमा पर विचार अपेक्षित है। सुबन्धु के काल की पूर्व सीमा 'वासवदत्ता' में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर भी कुछ-कुछ निर्धारित की जा सकती है। इसमें रामायण, महाभारत, गुणाढ्य की बृहत्कथा, कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् इत्यादि का उल्लेख मिलता है। सुबन्धु ने एक रमणी के वर्णन के प्रसंग में श्लेष के माध्यम से नैयायिक उद्योतकार तथा बौद्धधर्मकीर्ति के 'बौद्धसंगत्यालंकार' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है परन्तु ये प्रमाण सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा निर्धारित कर सकने में सक्षम नहीं है क्योंकि उपरोक्त कृतियों या उद्योतकार का समय बहुत निश्चित नहीं हो पाया है लेकिन इतना निश्चित है कि उल्लेख करने के कारण सुबन्धु इन सबके बाद के विरूद्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में एक साक्ष्य सहायक सिद्ध हो सकता है। सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ में महान विक्रमादित्य की मृत्यु पर विलाप करते हुए लिखा है कि-

''सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरित नो कंकः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये॥

यहाँ पर वर्णित विक्रमादित्य कौन था, इसका यथार्थ परिचय नहीं मिल पाता है। इतिहास में अनेक विक्रमादित्य का उल्लेख मिलता है इसलिए यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि किस विक्रमादित्य का उल्लेख किया गया है लेकिन यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय (374-413ई॰) का ही उल्लेख किया गया है क्योंकि वामन ने अपने 'काव्यलंकारसूत्र' में सुबन्धु को चन्द्रगुप्त के एक पुत्र का मन्त्री बताया है। अर्थप्रौढ़ी के पाँच भेदों में से अन्तिम साभिप्राय का वर्णन करते हुए वामन ने लिखा है-साभिप्रायत्वं यथा-

सोऽयं सम्प्रति चन्द्रगुप्तनयश्चन्द्रपकार्शो युवा,

जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्टया कृतार्थश्रमः।

इसी की वृत्ति में वामन लिखते हैं-आश्रयः कृतधियामित्यस्य च सुबन्धुसाचिव्योपक्षेपमरत्वात् साभिप्रायत्वम्। डॉ॰ मानसिंह का मत है कि 'चन्द्रगुप्तनयः' से चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का अभिप्राय है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुमार गुप्त प्रथम युवावस्था में अपने पिता के पश्चात् 414ई॰ में सत्तासीन हुआ (सम्प्रति चन्द्रगुप्तनयष्चन्द्रप्रकाषोयुवा), उसने सुबन्धु को बुद्धिमान (कृतार्थ) समझकर अपना मन्त्री बनाया। सुबन्ध को उस समय तक युवावस्था पार कर लेना चाहिए। इसलिए उनका जन्म कुछ पहले (400ई॰) हुआ होगा और उन्होंने विक्रमादित्य चन्द्रगुप्तद्वितीयका शासनकाल भी देख था। कुमारगुप्त प्रथम के शासन के उत्तरार्द्ध में शत्रुओं का आक्रमण हुआ जिसको सुबन्धु ने भी देखा। 'वासवदत्ता' उनके जीवन के उत्तरार्द्ध की रचना होगी। स्कन्दगुप्त (455-676) के शासन काल में भी सुबन्धु जीवित रहे होंगे। अतः सुबन्धु को 400-465ई॰ के बीच का माना जा सकता है।

ऐसा भी माना जा सकता है कि 'चन्द्रप्रकाशः' कुमारगुप्त प्रथम का विशेषण है क्योंकि कुमारगुप्त प्रथम के उनके सिक्कों में उसकी तुलना चन्द्रमा से की गयी है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर कुमार गुप्त प्रथम का मृत्युकाल लगभग 455ई॰ माना गया है।

सुबन्धु द्वारा उद्योतकार का उल्लेख करना भी उपरोक्त समय को मानने में सहायक है क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि उद्योतकार ने प्रसिद्ध तर्कशास्त्री दिड्.नाग की आलोचना की है और ए॰बी॰कीथ ने दिड्.नाग को 400ई॰ का माना है। बलदेवउपाध्याय ने भी दिड्.नाग का समय 345-425ई॰ माना है। इस प्रकार उद्योतकार उसके बाद के ही रहे होंगे। बलदेव उपाध्याय के अनुसार उद्योतकार का समय षष्ठ शतक ई॰ हैं सुबन्धु द्वारा उद्योतकार का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि उद्योतकार का 'न्यायवार्तिक' 'वासवदत्ता' की रचना के समय ख्याति प्राप्त कर चुका होगा।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा 385-414ई॰ के लगभग मान जा सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने भी अपने शोध के आधार पर सुबन्धु के समय के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट किया है, जो इस प्रकार है-'

1.पण्डित शंकदेवशास्त्री ने सुबन्धु का समय 500 ई॰ या इससे कुछ पूर्व माना है।

2.डॉ॰ भोलाशंकर व्यास के अनुसार सुबन्धु का काल छठीं सदी का मध्य है।

3.चन्द्रशेखर पाण्डेय ने सुबन्धु को 600 ई॰ या इससे कुछ पूर्व का ठहराया है ।

4.डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी का मानना है कि सुबन्धु 600ई॰ के लगभग रहे होंगे।

5.आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी इनको षष्ठ सदी के अन्त का बताया है ।

अन्त में सुबन्धु के समय के सम्बन्ध में लुईस एच॰ डो के शब्दों को निष्कर्ष माना जा सकता है। इनके अनुसार सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा उद्योतकार के बाद तथा उत्तरसीमा बाणभट्ट के पूर्व निर्धारित की जानी चाहिए। इस प्रकार सुबन्धु का काल 400-550ई॰ निर्धारित किया जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि सुबन्धु इसी बीच कभी रहे होंगे।

इस प्रकार हम सुबन्धु के काल एव जीवनवृत्त के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुबन्धु 'वासवदत्ता' के रचयिता है जो उनकी एकमात्र कृति है। विक्रमादित्य-चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमार गुप्त प्रथम (415 ई॰ 455) के दरबारी कवि थे और 385-500ई॰ के बीच में कभी रहे होंगे। वे मध्यभरत के निवासी थे, सम्भवतः मालव के वैष्णव और सुबन्धु वररुचि की बहन के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम दामोदर था। सुबन्धु के काल एवं निवास-स्थान के विषय में डॉ॰ मानसिंह का मत भी उक्त बिन्दुओं को पुष्ट करने में सहायक हो सकता है।

5.3.2 सुबन्धु का जीवनपरिचय

'सर्वानुक्रमणी में एक सुबन्धु का उल्लेख किया गया है जिनको ऋग्वेद के चार ऋषियों में से एक तथा गोपायन तथा लोपायन का पुत्र बताया गया है। एक और सुबन्धु है जिनका उल्लेख दण्डी ने किया है। नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनवभारती' में अभिनवगुप्त ने 'नाट्यायित' के दृष्टान्त के रूप में 'वासवदत्तानाट्यधारा' नामक रूपक का उल्लेख किया है जिसके कृत्तिकार का नाम उन्होंने महाकवि सुबन्धु बताया है। रामचन्द्र और गुणचन्द्र के 'नाट्यदर्पण में भी इसी रूपक का वर्णन मिलता हैं। शारदातनय ने अपने 'भावप्रकाशन' में सुबन्धु नामक एक नाट्यशास्त्री का उल्लेख किया है जिसने नाटक के पाँच विभाग किये है। लेकिन पी॰वी॰ काणे के अनुसार यह सुबन्धु 'वासवदत्तनाट्यधारा' वाले सुबन्धु से भिन्न है।

'वासवदत्ता' के रचनाकार सुबन्धु उपर्युक्त सभी सुबन्धु नामक व्यक्ति से भिन्न हैं। इनकी एकमात्र कृति 'वासवदत्ता' ही है जिसमें प्रदर्शित अपनी विद्वता और विलक्षण श्लेषयुक्त शैली के कारण सुबन्धु ने संस्कृत गद्यसाहित्य में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त किया है। 'वासवदत्ता' की एक पाण्डुलिपि के अनुसार सुबन्धु को वररूचि की बहन का पुत्र बताया गया है। 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ के तृतीय श्लोक के आधार पर आर॰जी॰ हर्षे का अनुमान है कि दामोदर सुबन्धु के गुरु थे। 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ में सुबन्धु ने विष्णु की स्तुति दो श्लोकों में किया है। जबकि शिव की स्तुति में एक ही श्लोक लिखा है। इसके अतिरिक्त 'वासवदत्ता' में शिव की अपेक्षा विष्णु के संकेत बहुलता से मिलते है। इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सुबन्धु वैष्णव थे, यद्यपि उन्होंने शिव और अन्य देवो देवताओं के प्रति भी अपनी श्रद्धा दिखायी हैं।

5.3.4 सुबन्धु का कर्तृत्व

सुबन्धु का नाम संस्कृत साहित्य के लिए अपरिचित नहीं है। संस्कृत साहित्य में इनकी ख्याति 'वासवदत्ता नामक कथाग्रन्थ के रचनाकार के रूप में ही हैं परन्तु संस्कृत साहित्य मं इनसे इतर अन्य सुबन्धुओं का भी विवरण मिलता है, जिनका यहाँ पर उल्लेख कर देना समीचीन होगा।

नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनवभारती' में अभिनवगुप्त ने 'नाटयायिका' के दृष्टान्त के रूप में 'वासवदत्तनाट्यधारा' नामक रूपक का उल्लेख किया है जिसके कृतिकार का नाम उन्होंने महाकवि सुबन्धु बताया हैं रामचन्द्र और गुणचन्द्र के 'नाट्यदर्पण' में भी सुबन्धु नामक एक नाट्यशास्त्री का उल्लेख किया है जिसने नाटक के पाँच विभाग किया है लेकिन पी॰वी॰ काणे

के अनुसार यह सुबन्धु 'वासवदत्तनाट्यधारा' वाले सुबन्धु से भिन्न है। 'वासवदत्ता' रचनाकार सुबन्धु उपर्युक्त सभी सुबन्धुओं से भिन्न हैं। इनकी एक मात्र कृति 'वासवदत्ता' ही है जिसमें प्रदर्शित अपनी विद्वता और विलक्षण श्लेषयुक्त शैली के कारण सुबन्धु ने संस्कृत गद्यसाहित्य में प्रतिष्ठा पूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

वासवदत्ता एक कथा

जहाँ तक वासवदत्ता का सम्बन्ध है, आलंकारिकों के अनुसार कथा के प्रायः सभी लक्षण इसमें दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें कन्दर्पकेतु और वासवदत्ता की प्रेमकथा का सरस गद्य में वर्णन है। अतः इसमें श्रृंगार रस मुख्य रस है। रचना के आरम्भ में आर्याछन्द में सरस्वती, कृष्ण और शिव की स्तुति की गयी हैं। इसके अनन्तर खल-निन्दा, कवि प्रशंसा कवि द्वारा अपना संक्षेप में परिचय इत्यादि का काव्य में सफल सन्निवेश हुआ है। इसके बाद कथा शुरू होती है और निर्बाधगति से अन्त तक चलती रहती है। कथा के लक्षणों के अनुसार इसमें कोई उच्छवास नहीं है और वक्त्र या अपरवक्त्र छन्दों का भी समावेश नहीं है। इसकी कथा नामक से भिन्न अन्य पात्र (शुक) से कहलवायी गयी है। इसमें अवान्तर कथा (शुक प्रसंग) का प्रयास सफलता से किया गया है। जो बाद में मुख्यकथा से सम्बद्ध हो जाती है। इसके अतिरिक्त इसको कथा सिद्ध करने के लिए सर्वप्रमुख कारण है, इसका कवि कल्पनाप्रसूत होना। इसकी कथा का ऐतिहासिक इतिवृत्त से कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है। अमर सिंह की परिभाषा के अनुसार भी यह कथा ही है क्योंकि यह कवि कल्पना पर आधारित प्रबन्ध है।

इस प्रकार 'वासवदत्ता' में उपलब्ध उपर्युक्त तथ्यों जो कि साहित्यशास्त्रियों के अनुसार कथा के ही लक्षण है के आलोक में यह कहा जा सकता है कि 'वासवदत्ता' निःसन्देह रूप से कथा ही है किसी भी रूप में आख्यायिका नहीं है।

वासवदत्ता एक कथा

संस्कृतसाहित्य शास्त्र में गद्य को गद्यकाव्य के रूप में ग्रहण किया है जाता है और इसीलिए भामह, दण्डी और वामन से लेकर कविराज विश्वनाथ तक सभी आचार्यों ने गद्य के भेद-प्रभेदों का विशद् विवेचन किया है। गद्यकाव्य के भेद के रूप में साहित्यशास्त्र में कथा तथा आख्यायिका इन दो संज्ञाओं की ही विशेष चर्चा हुयी है। सर्वप्रथम अमरकोश में कथा तथा आख्यायिका का स्वरूप निर्देश उपलब्ध होता है। इसके अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु प्रख्यात एवं इतिहास-सम्मत होती है और कथा का विषयकवि कल्पित होता है। संस्कृत गद्यकाव्यों को कथा और आख्यायिका इन दो प्रमुख भेदों के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। दण्डी ने कथा और आख्यायिका के उस समय प्रचलित जो लक्षण बताये है वह इस प्रकार है-

क. 'आख्यायिका' में नायक सब कहानी कहता है, 'कथा' में नायक या अन्य पात्र द्वारा कहानी कही जा सकती है।

ख. 'आख्यायिका' में उच्छवास नामक अध्याय होते है, कथा में नहीं।

ग. 'आख्यायिका' में वक्त्र और अपवक्त्र छन्द रहने आवश्यक है, कथा में नहीं।

दण्डी ने ही कथा और आख्यायिका के इन पूर्व प्रचलित भेदक लक्षणों की अत्यन्त उपेक्षा करते हुए लिखा है कि नायक द्वारा कहानी कही जाना या अन्य द्वारा, वक्त्र या अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग होना या न होना, उच्छवासों का पाया जाना अथवा न पाया जाना ये सब महत्व की बातें नहीं है। कथा और आख्यापिका में कोई अन्तर नहीं हैं।

इन समस्त लक्षणों की सीमा में रहकर किसी गद्यकवि ने 'कथा' अथवा 'आख्यायिका' की रचना नहीं की हैं। दण्डी के विचारों को पढ़ने से भी यी ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में निर्धारित इन लक्षणों की प्रायः उपेक्षा ही होने लगी थी। 'कथा' और 'आख्यायिका' में मोटा अन्तर हम यही मान सकते है कि एक में ऐतिहासिक कथानक होता है और दूसरी में कवि-कल्पित।

'वासवदत्ता' का कथानक कल्पित है और हर्षचरित का ऐतिहासिक। हर्षचरित उच्छवासों में विभक्त है, प्रारम्भ में कवि-वंश-वर्णन' और कालिदास, भट्टारहरिश्चन्द्र आदि अन्य कवियों का उल्लेख है। उच्छवास में प्रारम्भ में ऐसे पद्य भी कवि ने रखा दिये है जिनसे आगे घटने वाली घटना का संकेत मिलता है। वासवदत्ता में भी प्रारम्भ में देव-स्तुति खल, निन्दा और कवि-वंश-वर्णन है। इसी आधार पर सुबन्धु ने स्वयं वासवदत्ता को कथा कहा है।

5.3.5 वासवदत्ता का कथानक:

सुबन्धु की 'वासवदत्ता' में नायक राजकुमार कन्दर्पकेतु और नायिका राजकुमारी वासवदत्ता की प्रेमकथा वर्णित हैं लेखक का उद्देश्य दोनों का मिलन करना ही हैं छोटे से कथानक को लेखक ने अपनी वर्णन शक्ति के द्वारा ग्रन्थ का कलेवर दे दिया है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है-

राजा चिन्तामणी का पुत्र राजकुमार कन्दर्पकेतु अपने पिता की ही भाँति सद्गुणों से युक्त नवयुवक है। एक बार स्वप्न में वह अष्टादश वर्षीया अप्रतिम सुन्दरी कन्या को देखता हैं उसकी सुन्दरता के आकर्षण से वह उस कन्या से प्रथम दृष्टया प्रेम कर बैठता है। प्रेमाभिभूत राजकुमार उस कन्या को पाने के लिए बेचैन हो उठता है और उसके वियोग में भूख-प्यास त्यागकर एकान्तवास करने लगता है। किसी प्रकार उसका मित्र मकरन्द इस बात से अवगत होता है और उसको नीतिपरक उपदेश देते हुए समझाने का प्रयास करता है, किन्तु राजकुमार पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता है वह अपने मित्र से उस सुन्दरी को खोजने में सहायता मांगता है और उसको भुला पाने में अपनी असमर्थता व्यक्त करता है। इसके पश्चात उस अज्ञात सुन्दरी की खोज में कन्दर्पकेतु अपने मित्र मकरन्द के साथ निकल पड़ता है। खोजने के क्रम में एक रात वे विन्ध्य पर्वत की तलहटियों में एक वृक्ष के नीचे ठहरते है। रात में उसी वृक्ष पर बैठे एक शुकदम्पत्ती का वाकयुद्ध कन्दर्पकेतु को सुनायी देता है। सारिका (स्त्री शुक) पर परस्त्रीगमन का आरोप लगाते हुए देर रात्रि में आने कारण पूछती है शुक अपने देर से आने का कारण बताते हुए नायिका वासवदत्ता का निम्नवत् वर्णन करने लगता है-

सकल गुणों से युक्त श्रृंगारशेखर कुसुमपुर का राजा है। राजा की एक पुत्री है, जिसका नाम वासवदत्ता है उसकी माता का नाम अनंगती है। पुत्री के विवाह योग्य हो जाने पर राजा उसको

मनपसन्द वर चुनने की छूट दे देता है और भूमण्डल के समस्त राजकुमारों को स्वयंवर हेतु आमंत्रित करता है। किन्तु वासवदत्ता को कोई भी राजकुमार पसन्द नहीं आता है। उसी रात वासवदत्ता स्वप्न में एक सुन्दर राजकुमार को देखती है ओर स्वप्न में ही कन्दर्पकेतु के प्रेमपाश में आबद्ध हो जाती है। इस प्रेमपाश से वासवदत्ता को मुक्त कराने में उसकी सखियों के सारे प्रयास निरर्थक सिद्ध होते हैं। उसकी विरहावस्था तीव्रतर होती जाती हैं अन्ततः राजकुमारी की विश्वस्त सारिका तमालिका को कन्दर्पकेतु का पता लगाने के लिए भेजा जाता है। जो कथा कहने वाले शुक के साथ उसी वृक्ष पर आ पहुँचती है जिसके नीचे कन्दर्पकेतु और मकरन्द्र विश्राम कर रहे थे इतना सब जानने के पश्चात् मकरन्द भी तमालिका से कन्दर्पकेतु के विषय में सम्पूर्ण वृतान्त बताता हैं। कन्दर्पकेतु बहुत प्रसन्न होता है और तमालिका को गले लगाते हुए उससे वासवदत्ता का कुशलक्षेम पूछता है। इसके पश्चात दोनों मित्र तमालिका (सारिका) का अनुकरण करते हुए वासवदत्ता से मिलने के लिए उसके राज्य की ओर प्रस्थान करते हैं।

वहाँ वासवदत्ता को अपने भव्य प्रसाद में दासियों से घिरे हुए देखकर खुशी से कन्दर्पकेतु अचेत हो जाता है। वासवदत्ता भी अपने सपनों के राजकुमार को देखक मूर्च्छित हो जाती है। सखियों द्वारा युगलप्रेमी चेतना में लाये जाते हैं। इसके पश्चात् वासवदत्ता की प्रिय सखी कलावती कन्दर्पकेतु से वासवदत्ता की विरहकालीन व्यथाओं का वर्णन करती है। उसी के द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि वासवदत्ता के पिता वासवदत्ता की इच्छा के विरूद्ध उसका विवाह विद्याधरों के देवपुत्र पुष्पकेतु से कल ही करना चाहते हैं। इतना जानते ही कन्दर्पकेतु सखियों की सहायता से वासवदत्ता के साथ मनोजव नामक जादुई घोड़े पर चढ़कर निकल भागता है और मकरनछ को नगर का समाचार जानने के लिए वही छोड़ जाता है। दोनों प्रेमी भागते हुए विन्ध्य जंगल में पहुँचते है और थककर एक लताकुंज में सो जाते हैं। प्रातः काल जब कन्दर्पकेतु सोया ही था, वासवदत्ता इसके लिए फल इत्यादि लाने जंगल में चली जाती है। वासवदत्ता को जंगल में घूमते देखकर वहीं पर डेरा डाले दो किरात समूह उस पर अपना-अपना अधिकार जताने लगते हैं। फलस्वरूप भयंकर युद्ध होता है और इसी में एक ऋषि की कुटिया भी नष्ट हो जाती है। इस उपद्रव का कारण वासवदत्ता को मानते हुए ऋषि उसे शापमुक्त होने का रास्ता भी बताते हैं कि अपने अपने प्रिय द्वारा स्पर्शित होने पर शापमुक्त होकर पूर्वरूप में आ सकती है।इधर नींद टूटने पर कन्दर्पकेतु अपनी प्रिया वासवदत्ता को वहाँ नहीं पाता है। वह उसकी खोज में निष्फल ही इधर-उधर भटकता हैं अन्त में दुःखी होकर वह समुद्र में डुबकर अपने प्राण त्यागने को उद्यत होता है। किन्तु उसी समय आकाशवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है और उसको प्रिया से पुर्नमिलन होने का आश्वासन देती है। इसके पश्चात् कन्दर्पकेतु प्रिया-वियोग में इधर-उधर घूमता-फिरता है। इस प्रकार रात-दिन और ऋतुएं व्यतीत होने लगती हैं। अन्त में घूमते हुए एक स्थान पर वह वासवदत्ता के सदृश एक पाषाणमूर्ति को देखता है, जब वह उस पाषाणमूर्ति का स्पर्श करता है तो उसके स्पर्श से वह मूर्ति सजीव हो जाती है। इस प्रकार वासवदत्ता पुनः स्त्री रूप में आ जाती है, शाप का प्रभाव समाप्त हो जाता है। दोनों प्रेमी प्रसन्न होकर आलिंगनबद्ध हो जाते है और दो समर्पित हृदयों का मिलन होता है। बाद में मकरन्द भी वहाँ पहुँच जाता है।

कन्दर्पकेतु सबके साथ राज्य लौट आता है और अलभ्य मनोवांछित सुखों का उपभोग करते हुए समय व्यतीत करता है।

5.4 वासवदत्ता का विस्तृत परिचय

5.4.1 वासवदत्ता का राजनीतिक परिचय

1. राजाः- सुबन्धु ने सातों अंगों (राजा, अमात्य, कोश, दण्ड, मित्र, जनपद ओर पुर) में राजा को राज्य का सर्वप्रमुख अंग माना है। अतः समस्त प्रजा के लिए सुख शान्ति की व्यवस्था करना राजा का परम कर्त्तव्य मानते है। सुबन्धु राज्य के लिए राजा की सर्वाधिक महत्व प्रदान करते है। उनका विचार है कि जिस प्रकार आंखे शरीर के कल्याण साधन में प्रवृत्त रहती । उसी प्रकार राजा अपने राज्य में सत्य और धर्म का प्रचार कर राष्ट्र के हित में तल्लीन रहता हुए दुष्टों को नियंत्रण में रखकर अनिष्ट निवारण में लगा रहता है।

इन गद्य साहित्यकारों ने कई श्रेष्ठ राजाओं का चरित्र अपने समकालीन राजाओं के समक्ष रखा है जो राजा होते हुए भी अपने को प्रजा का सेवक समझते थे। राजा का कर्त्तव्य होता है कि वह अपने प्रजाओं का देखभाल करें।

वासवदत्ता कथा में राजा के वर्णन में भी शैली का अत्यधिक साम्य है।

यत्र च शासति घरणिमण्डलं छलनिग्रहप्रयोगो वादेशु, नास्तिकला चार्वाकेषु, कष्टकयोगो नियोगेषु, परिवादों वीणासु.....।

'वासवदत्ता' में नायक कन्दर्पकेतु नायिका वासवदत्ता के प्रति आसक्त होकर जब पागल सा हो जाता है तो उसका मित्र मकरन्द उसे ठीक उसी प्रकार फटकारता है। जैसे-

यस्मिंश्च राजनि जितगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः,
रेतशु केशग्रहाः काव्येषुदृढ़बन्धा शास्त्रेषु चिन्ता.....।

'कादम्बरी' में महाश्वेता के प्रति आसक्त पुण्डरीक को उसका मित्र कपिंजल। कन्दर्पकेतु और पुण्डरीक के प्रत्युत्तर भी एक समान है। वासवदत्ता में कन्दर्पकेतु कहता है-नायमुपदेशकालः। पच्यन्त इव मेऽगांनि । कृश्यन्त इवेन्द्रियाणि । भिद्यन्त इव मर्माणि । निस्सरन्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। नष्टेव स्मृति। अधुना तदलनमनया कथया।

हे मित्र (मकरन्द) हमारे समान (कामबाणविद्ध) लोगों का चित्त-व्यापार इन्द्र से युक्त (दैत्यमाता) दिति के समान सैकड़ों शाकों से व्याप्त होता है। मेरे अंग मानो पक रहे हैं। इन्दियां मानो खौल रही हैं। मर्मस्थल मानो फट रहे हैं। प्राणवायु निकल रहे है। कर्त्तव्याकर्त्तव्यनिवारण बुद्धि मानों जड़ से उखड़ रही हैं स्मरण करने की शक्ति मानों नष्ट हो रही है। अब इस कहने से क्या लाभ ? यदि तुम बचपन से मेरे दुःख और सुख के साथी हो तो मेरे साथ आओ-ऐसा कहकर वह अनुचरों से छिपकर उस (मकरन्द) के साथ नगर (अथवा घर) से निकल पड़ा।

पुत्री की इच्छा को जानने वाले श्रृंगारशेखर ने अपनी कन्या के स्वयंवर के लिए सम्पूर्ण भूमण्डल के राजकुमारों का सम्मेलन किया। तत्पश्चात् पति का चयन करने वाली वासवदत्ता मंच पर आरूढ़ हुयी । उस स्वयंवर सभा में कुछ (राजकुमार) नगर की वेश्याओं को जानने वाले

स्तेयशास्त्र चौरशास्त्र) के प्रवर्तक के समान नागरिक आभूषणों से शोभायमान थे । दूसरे (राजकुमार) धृतराष्ट्र (अथवा कृष्ण), द्रौपदी और (गुरुद्रोणाचार्य अथवा भीष्मादि) से युक्त पाण्डवों के समान सुन्दर नेत्र वाले और कृष्णागुरु के लेप से युक्त थे। अन्य (राजकुमार) दूर तक विस्तृत दिशाओं वाले शरदकालीन दिनों के समान अत्यन्त बढ़ी हुयी (वासवदत्ता की प्राप्ति) की अभिलाषा से सम्पन्न थे। कुछ अपने बल का प्रयोग करने की इच्छा से युक्त थे। कुछ पकड़ने के लिए पक्षियों का स्वर सुनने वाले बहेलियों के समान शुभ शकुन को सुनने वाले थे। कुछ मृगों के पीछे दौड़ने वाले शिकारी के समान सौन्दर्य के अनुसार (अर्थात् स्वयंवर) प्रवृत्त थे।

'कादम्बरी' में चाण्डाल कन्या का कथन है-हे स्वामी यह वैशम्पायन नाम का तोता सब शास्त्रों के अर्थों का ज्ञाता, राजनीतिक के प्रयोग में चतुर, पुराण और इतिहास की कथा कहने में कुशल, संगीत की श्रुतियों का ज्ञाता, काव्य, नाटक, आख्यायिका, आख्यान इत्यादि असंख्य सुभाषितों का अध्ययन करने और स्वयं रचना करने वाला, हँसी की बातें करने में कुशल, वीणा, बाँसुरी ओर मुरज आदि (वाद्यों) का अद्वितीय श्रोता, नृत्य प्रयोग के देखने में निपुण, चित्रकला में कुशल, जुआ खेलने में चतुर प्रेम कलह में रूठी हुयी स्त्री के लक्षणों का ज्ञाता और समस्त पृथ्वीतल का रत्नरूप है और स्वामी समुद्र की भांति समस्त रत्नों के पात्र है, यह मानकर उसे (वैशम्पायन शुक को) लेकर हमारे स्वामी की पुत्री स्वामी के चरणमूल में आयी है। अतः आप इसे अपना ले। यह कहकर पिंजरे को राजा के सामने रखकर वह (पुरुष) दूर हट गया।

जिसके पृथ्वीमण्डल का शासन करने पर वाद विवादों में ही कपट और निग्रह का प्रयोग होता था। प्रजाओं में कपट और बन्धन दण्ड का प्रयोग नहीं था। प्रजाओं में दरिद्रता नहीं थी। प्रजाओं में नीच का संसर्ग नहीं था । प्रजाओं में उस क्षत्रिय राजा से किसी की विरोध नहीं था । चिन्तामणी (अपने चरित से) सभी राजाओं को तिरस्कृत कर देने वाला राजा था। गन्धर्वों को आनन्दित करने से विरत न रहने वाले पर्वत के समान उत्सव कराने वाला, घोड़ों को आनन्दित करने से विरत नहीं था।

2. राज्य- वासवदत्ता के अध्ययन से यहां स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु समाज की रक्षा के लिए राज्य को अनिवार्य व्यवस्था के रूप में स्वीकार करते है । छलनिग्रहप्रयोगो वादेषु, चार्वाकेषु कण्टकयोगोनियोगेषु परीवादो वीणासु.....नेत्रात्पाटनं मुनीनां द्विजराजविरूद्धता पंकजानां.....। राजा चिन्तामणी के शासनकाल में छल, जाति, और निग्रह (स्थान) का प्रयोग वाद-विवाद में ही होता था, प्रजाओं में छलपूर्वक शूद्रादि जातियों का निग्रह नहीं होता था । नास्तिकता चार्वाकों में ही थी, प्रजाओं में नास्तिकता (दरिद्रता) नहीं थी । पारस्परिक संयोगों में ही कण्टक रोमांच (सूची के अग्रभाग) का सम्बन्ध कभी नहीं होता था । मुनि नामक वृक्षों में ही वल्कल (नेत्र) उतारने का कार्य होता था, प्रजाओं में किसी को नेत्र (आँख) निकालने का दण्ड नहीं दिया जाता था । कमलों में ही द्विजराज (चन्द्रमा) के प्रति विरूद्धता पायी जाती थी, प्रजाओं में अपने राजा के प्रति विद्रोहाचरण नहीं पाया जाता था।

राजा श्रृंगारशेखर के राज्य में श्रृंखलाबन्ध केवल काव्यों में ही पाया जाता था प्रजा को श्रृंखलाबन्ध (जंजीर से बांधना) नहीं किया जाता था। प्रजा में किसी का आक्षेप नहीं पाया जाता

था। दुर्वर्ण (चाँदी) का प्रयोग कटकादि भूषणों में ही पाया जाता था, स्त्रियों में दुर्वर्ण नहीं पाया जाता था। गान्धार राग का विच्छेद रागों में ही होता था, स्त्रियों में गान्धार राग का विच्छेद नहीं होता था। राजा के शासन में पितृ कार्यों में ही साड़ का छोड़ना होता था, प्रजाओं में धर्म का परित्याग नहीं था। प्रजाओं का कन्या से संगमन और तुला पर आरोहण नहीं था। योगों में शूल और व्याघात चिन्तन होता था, प्रजाओं में दाहिने और बांए हाथ पैर इत्यादि को काटना नहीं था। प्रजाओं में दान का व्यवधान नहीं था। प्रजाओं में खजाना का अभाव नहीं था। 'वासवदत्ता' में कन्दर्पकेतु पिता के आज्ञा बिना ही घर से मित्र मकरन्द के साथ निकल जाते है।

राजा का कर्त्तव्य- सुबन्धु के अनुसार राजा राज्य का सर्वोच्चाधिकारी माना गया है। अतः राज्य में सब प्रकार के विघ्नों का निवारण करते हुए सुख शान्ति करना उसका परम कर्त्तव्य है। प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए उसको सर्वांगीण विकास के अवसर प्रदान करना भी राजा का प्रमुख कार्य बताया गया है। राजा प्रजा की रक्षा के कार्य में संलग्न हो, अपने राज्य में निवास करने वाले सब लोगों को प्राणों के समान एवं प्रिय पुत्रों के समान समझकर सदा सावधानी के साथ उनकी रक्षा करता हैं वह अक्षय कीर्ति पाकर अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है।

5.4.2 वासवदत्ता का कलात्मक परिचय

1. स्थापत्य कला-विद्वानों ने कला के दो भेद उपयोगी तथा ललित कला माने है। ललित कला के भी दो भेद है-मूर्तकला और अमूर्त कला। स्थापत्य कला वस्तुतः मूर्त कला है। इसलिए यह संगीत कला और कविता से श्रेष्ठ ठहराई गयी है। यह कला, चाक्षुष सौन्दर्य बोध से सम्पन्न होने के कारण अमूर्त कला की अपेक्षा संप्रेषणशीलता की तीव्रता के लिए रहती है। यह कला सहज, सरल, सार्वजनिक तथा ग्राह्य होती है। कला-मर्मज्ञ के साथ ही कला-अनिभज्ञ व्यक्ति भी स्थापत्य कला की विविध सौन्दर्य उर्मियों को देखकर मुग्ध हो सकता है। भारत में स्थापत्य कला की अपनी मौलिक विशेषताएं है। भारत अनादिकाल से धार्मिक एवं दार्शनिकों का देश रहा है। इस देश में जीवन के वाह्य सौन्दर्य से हटकरण मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं पर अधिक मनन चिन्तन हुआ है। इसलिए यहां की स्थापत्यकला में भी इनकी अभिव्यक्ति सहज स्वरूप में हुई हैं देव मन्दिर के निर्माण से लेकर राजमहलों तक यही नहीं साधारण मनुष्यों के गृहों में, अनेक विदेशी स्थापत्य कलाओं को अपनी कुक्षि में पचाये हुए धर्म दर्शन का अद्भूत समन्वय यहां की स्थापत्य कला में मुखरित हुआ है। वासवदत्ता की कथा में स्थापत्य कला का बहुत परिचय मिलता है।

प्राचीन स्थापत्य कला के केन्द्र है-पौराणिक ऐतिहासिक। प्रायः राजभवनों और राजनगरों में निर्मित भवनों में ही स्थापत्यकला अधिक मुखरित हुयी है। राजतन्त्र में राजा, अमात्य, मैत्री, सचिव, सेनापति, राजपुरुष, कवि, पण्डित, आचार्य, पुरोहित नगर निवासी आदि सभी राजधानी में रहते थे। इनसे नगर (राजधानी) की शोभा में अभिवृद्धि होती थी। राजप्रसाद की अपनी भव्यता होती थी। राजपरिवार के प्रायः प्रत्येक सदस्य के लिए अत्यन्त सुसज्जित और आकर्षक ढंग से ये भवन निर्मित होते थे। नगर में यातायात के लिए राजमार्ग की व्यवस्था थी। वासवदत्ता में बने विविध भवनों का विस्तार चाक्षुष बिम्ब के रूप में प्रस्तुत किया हैं राजभवनों

और राजनगरों में निर्मित भवनों में ही स्थापत्यकला अधिक मुखर हुयी है । राजतंत्र में राजा, अमात्य, मंत्री, सचिव, सेनापति, राजपुरुष कवि पण्डित, आचार्य, पुरोहित, नगर निवासी आदि सभी राजधानी में रहते थे। इनमे नगर (राजधानी) की शोभा में अभिवृद्धि होती थी। राजपरिवार के प्रायः प्रत्येक सदस्य के लिए अत्यन्त सुसज्जित और आकर्षक ढंग से ये भवन निर्मित होते थे। राजा के निवास के लिए जो भवन निर्मित होता था उसको राजभवन या राजकीय भवन राजमहल, राजमन्दिर, राजप्रसाद आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है । इन राजमहलों में स्थिति एक राज्यसभा या राजसभा होती थी । राजधानी में स्थापत्य कला की दृष्टि से राजभवन के अतिरिक्त अन्तःपुर या अन्तःपुर का द्वार, नगर भवन, मंत्रणागृह, कलाभवन, विलास भवन या उल्लास भवन, राजकीय घाट, राजकीय मंदिर, राजकीय उद्यान, राजद्वार, कारागार, रंगशाला, राजमार्ग आदि विवेचनीय है । वासवदत्ता कथा में राजधानी का वर्णन करते हुए वे कहते है- (कन्दर्पकेतु ने वासवदत्ता के भवन को देखा) जो एक-के अन्त पर जड़े हुए सुर्वण, मोती, नीलमणि और पद्मराग मणियों के कारण मानो वासवदत्ता के देखने के लिए आये हुए देवतागणों से युक्त परकोटो से घिरा हुआ था । जो वायु द्वारा हिलायी गयी आकाशरूपी वृक्ष की पुष्पमंजरी के समान अमरावती की शोभा को तिरस्कृत करती हुयी पाटकाओं से शोभायमान था ।

वासवदत्ता का भवन अनेक नदियों से सुशोभित था जो नदियां सुवर्णशीलाओं से युक्त थी जो कर्पूर, केसर, चन्दन, इलायची और लवंग की सुगन्ध को धारण करने वाली थी । तट के समीप में रखे गये स्पार्तक शिलाओं पर सुखपूर्वक बैठे हुए जाने पड़ते कबूतरों से युक्त थी, जो तट पर स्थित वृक्षों के गिरते हुए पुष्पों से गुच्छेदार जल वाली थी । कर्पूर समूह से विरचित पुलिनों पर बैठे हुए राजहंसों के कलरव से राजहंसी का अनुमान हो रहा था । राजा की चित्तवृत्ति के समान छोटी-छोटी नदियों को तिरस्कृत करने वाली अनेक नदियों से सुशोभित भवन को देखा ।

2. चित्रकला- साधारणतः चित्र दो प्रकार होते है - 1. भित्ति चित्र 2. प्रतिकृति । प्राचीन भारत में प्रथम प्रकार के चित्र कंदराओं, अजन्ता की गुफाओं एवं प्रासादों की दीवारों पर मिलते है तथा द्वितीय प्रकार के चित्र एक व्यक्ति अथवा अनेक व्यक्त्यिों की प्रतिकृति को कहते है । इसमें प्रकृत व्यक्ति बिंब का काम करता है । उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत की चित्रकला उसकी अन्य कलाओं की भांति अति प्राचीन है । इनमें से अधिकांश प्रस्तरयुगीन है । भारतीय जनजीवन में राजा महाराजाओं से लेकर पेशेवर चित्रकार तक ये चित्र बनाते तथा प्रासादों को सजाते थे। विश्व प्रेम में शूरसेन अपने कमरे में देवताओं की बड़ी-बड़ी तस्वीरे तथा रूपसेन श्रीराम पंचायत, अयोध्यानरेश और अयोध्या के दृश्यों के चित्र लगाता है । वासवदत्ता में कन्दर्पकेतु स्वप्न में वासवदत्ता को चित्रित पाता है । जय पराजय में 'भारमाली' अपने प्रेमी का चित्र रखती है जो स्वप्न में गिरकर भावी आपत्ति की सूचना देता है । 'विश्व प्रेम' का भोग विलास में डूबा राजा चन्द्रसेन अपने कमरे में सुन्दरी स्त्रियों की तस्वीरें तथा राजयोग में चन्द्रसूदन अपने कमरे में भड़कदार बाजारू चित्र टांगता है ।

3. मूर्तिकला- संसार में मूर्ति प्रतीक जितना प्रभावी सिद्ध हुआ है, उतना अन्य कोई प्रतीक नहीं । भारत में मूर्तिकला प्राग् मौर्य युग से लेकर आधुनिक युग तक के इतिहास को अपने कृषि में

आत्मसात किये हैं, इसलिए विद्वानों ने मूर्तिकला को प्राग्मौर्य, मौर्य, शुगं, शक, कुशाण, गुप्त पूर्वमध्य, उत्तरमध्य प्रागाधुनिक, वर्तमान मूर्तिकला की शैलियों के नाम से विभाजित किया है। कहीं अनेक रूपों वाली विष्णु की मूर्ति के समान अनेक पशुओं से व्याप्त थी।

संगीत-नृत्य- संगीत, गायन, नर्तन और वादन के समाहार को कहते है। गद्यकाव्यों में गायन नर्तन एवं वादन का समावेश अतिप्राचीन काल से होता आया है। कथाकारों ने भी संगीत को प्रचुरता के साथ प्रयुक्त किया है। इन गद्यकारों की भाषा आनुप्रासिक संगीत और लयात्मकता से युक्त है एक मधुर संगीतमय नाद की अनुभूति कराती है। इस सन्दर्भ में मलय वायु सम्बन्धी वर्णन द्रष्टव्य है-

कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पलाटीललाटतटलुलितालक धम्मिल्लभारबकुलकुसुम-परिमल मेलन समृद्धमधुरिमगुणः, कामकला कलापकुशल चारूकर्णातसुन्दरीस्तनकलाषधुसृण धूलिपटलपरिमलामोदवाही, रणरकरसितापरान्तकान्त कुनतलोल्लनसंक्रान्त परिमलमिलितालिमालामधुरतरझंकर वमुखरितनभः स्थलः.....(146/148)

वह (मलयपवन) सुरतक्रीड़ा विलास में आसक्त लाटप्रदेश की रमणियों के ललाटपटल पर लटकते हुए केशों के जूड़े में लगे हुए मौलश्री के पुश्पों की सुगन्ध के संयोग से बढ़े हुए मनोहर गुणों वाला था। वह कामकला समूह मे निपुण और सुन्दर कर्णाटक प्रदेश की युवतियों के स्तनकलश पर लगाये गये कुंकुमों ने धूलिकणों के सम्पर्क से अत्यन्त मनोहर गन्ध को धारण करने वाला था। वह उत्सुकता से उत्पन्न अनुराग वाली अपरान्त देशकी ललनाओं के केशों के हिलने के कारण संयुक्त गन्ध से एकत्रित भ्रमरपंक्ति की मधुर गुंजार से आकाशमण्डल को ध्वनित करने वाला था। वह नवयौवना के अनुराग से चंचल केरल प्रदेश की युवतियों के कपोलों पर पत्रावली बनाने में कुशल था। वह चौसठ कलाओं में निपुण तथा सौन्दर्य सम्पन्न मालवप्रदेश की युवतियों के नितम्ब मण्डल की धीरे-धीरे दबाने में चुतर था। वह काम क्रीड़ा के परिश्रम से थकी हुयी आन्ध्र प्रदेश की कामनियों के निविड विशाल स्तनों के पसीने की बूंदों के समूह से शीतल था। ऐसा मलयपवन बह रहा था। जो मंच चलते हुए काले अगरू की सुगन्ध से प्रसन्न मनोहर भ्रमरों के समूह के गुंजार से गुंजरित था, जो (दासियों की) प्रसन्नता के कारण हंसी के किरण समूह से शुभ्रता सम्पन्न था। जो अनेक प्रकार के परिहास कथन के समूह में कुलश और सजे-धजे लोगों से व्याप्त था जो जलते हुए गूगुल इत्यादि सुगन्धित पदार्थो की सुगन्ध से आकर्षित नगर-उपवनों के भ्रमरसमूह से व्याप्त था जो नन्द नाम के अर्जुन के रथ की ध्वनि से ध्वनित दिशाओं वाले अर्जुन के युद्ध के समान पादध्वनि से ध्वनित दिशाओं वाला था। जो (अन्य) राजाओं द्वारा दिये गये उपहारों से सम्पन्न राजभवन के समान राजा द्वारा दिये गये उपहारों से समन्वित था।

आदर्शवादी व्यक्तियों के लिए कुछ सीमा तक गीत नृत्य आदि कलाएं भोग की सामग्री मानी जाती हैं। विशेषकर उस अवस्था में जब देश परतन्त्रता की बेड़ी से जकड़ा हुआ है। उपर्युक्त

तथ्यों से स्पष्ट है कि संगीत-नृत्य तथा नाट्यकला आदि के प्रति पर्याप्त अभिरूचि प्रदर्शित की है । ये नाटककार प्रायः सामन्ती संस्कृति से प्रेरित एवं प्रभावित रहे है और दूसरी ओर ये कला संचेतना से परिपूरित भी प्रतीत होते हैं उनके नाटक वस्तुतः आधुनिक कला चेतना के प्रमाण है ।

5. पाककला- वासदवदत्ता में भोजन तथा भोजन के प्रकार का विवरण मिलता हैं मकरन्द अपने मित्र कन्दर्पकेतु के लिए फल-फूल खाने के लिए लाता है जब दोनों प्रेमी भागते हुए विन्ध्य जंगल मे पहुंचते है और थककर वह लताकुंज में सो जाते है । प्रातःकाल जब कन्दर्पकेतु सोया ही था वासवदत्ता उसके लिए फल इत्यादि लाने जंगल में चली जाती है ।

6. प्रसाधन एवं वेश-भूषा

गद्यकाव्यकारों ने किसी जाति तथा वर्ग विशेष की वेशभूषा की विस्तृत चर्चा न करके मात्र संकेत किया है, जैसे-स्वतंत्र युवतियां सुरतोचित वेश, राजकुमार के वेशमें कन्दर्पकेतु, राजकुमारी के वेश में वासवदत्ता मित्र के वेश में मकरन्द, पथिक के वेश में किरात, पक्षी के वेश में शुकसारिका सुन्दर पोशाक पहने हुए दूर-दूर से आये हुए राजकुमार स्वयंवर में सुशोभित हो रहे है ।

आभूषण - प्राचीन काल से ही व्यक्ति सौन्दर्य प्रेमी रहा है । वह शरीर को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के अतिरिक्त अनेक प्रकार का प्रयोग करता है ।

1.कुण्डल - उत्तंक नामक वेद का शिष्य, अपनी गुरुपत्नी के लिए जनमेजय के यहां मणिकुण्डल मांगने जाता हैं वासवदत्ता में कन्दर्पकेतु कुण्डल धारण करता है । इसी प्रकार 'कुलीनता' में प्रत्येक पुरुष पात्र कुण्डल धारण करता है । इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि कुण्डल भारत का अतिप्राचीन अलंकार है । संस्कृत महाकाव्यों में यह कुण्डल अत्यन्त लोकप्रिय आभूषण रहा है जिसे स्त्री पुरुष दोनों धारण करते हैं वाल्मीकि रामायण में अयोध्या का तो प्रत्येक नागरिक कुण्डल धारण करता है । कवि कालिदास ने भी कुण्डल पहनने का चित्रण किया है । हार, केयूर, वलय, मुद्रिका तथा नुपूर-केयूर, नूपुर, भुजबन्ध, कंकण का व्यवहार प्राचीनकाल से शुरू हो गया था । हनुमान जी ने लंका जाते समय देखा कि मैनाक पर्वत पर रहने वाली स्त्रियां गले में हार, पैरों में नूपुर, भुजाओं में केयूर धारण करके आकाश में पति के साथ विस्मिता होकर मुस्करा रही थी । वलय तो कालिदास में इतना प्रिय है कि उनके द्वारा चित्रित नगर निवासनी पहनती ही थी । आश्रमवासिनी शकुन्तला धातु के स्थान पर कमल नाल का वलय बनाकर पहनती है । इसी प्रकार आभूषणों में मुद्रिका कम प्राचीन नहीं है । हाँ, यह अवश्य है कि पहले इसका नाम मुद्रिका (अंगूठी) न होकर अंगुलीय था । उपर्युक्त आभूषणों का उल्लेख सबसे अधिक सेठ गोविन्ददास ने किया है। वासवदत्ता में बाजूबन्द (बांह में पहनने वाले आभूषणाविशेष), गले में हार, माला से युक्त, केशविन्यास पैरों में नूपुर का उल्लेख किया गया है

7. पेय-पदार्थ मद्य-भारतीय जन-जीवन में 'मद्य' पेय के रूप में अपनाया जाता रहा है तथा इसके साथ ही, इस पेय को वर्जित भी किया गया है । मनु ने इसकी तुलना पाप से की है । महाभारत में कहा गया है कि इसके पान से लज्जा और बुद्धि नष्ट हो जाती है तथा मद्यप कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ध्यान छोड़कर इच्छानुसार कार्य करने लगता है । वह विद्वानों का आश्रय

छोड़कर पाप को प्राप्त होता है और रूखा, कड़वा भयंकर बोलने लगता है। वासवदत्ता में भी सुरापान बतलाया गया हैं राजा लोग मद्यमापन करते थे। राजा के महल में रहने वाले प्रजाओं को भी सुरापान करते पाया गया है।

अन्य मादक पदार्थ- मद्य को छोड़कर मानव अनेक नशीली वस्तुओं का प्रयोग करता है। स्कन्दगुप्त में में धातुसेन कहता है-चाणक्य कुछ भांग पीता था। उसने लिखा है कि राजपुत्र भेड़ियां है, इसके पिता को दैव सावधान रहना चाहिए। विशाल में महापिंगल तो पूर्णतः भंगड़ी लगता है। विशाख की रानी तरला व्यंग्य में अपने पति से कहती है-इस बुढ़ापे में प्रेम की अफीम खाने चला है। वासवदत्ता में प्रेम बन्धनहीन चित्ततत्त्व की आनन्दमयी स्थिति है।

5.4.3 वासवदत्ता का समीक्षात्मक परिचय

सुबन्धु नाना विद्याओं, तथा मीमांसा, न्याय, बौद्ध आदि नाना दर्शनों में नितान्त प्रवीण थे। इन्होंने श्लेश और उपमा के प्रसंग में रामायण, महाभारत तथा हरिवशंकी अनेक प्रसिद्ध तथा अल्प-प्रसिद्ध घटनाओं और पात्रों का प्रचुर निर्देश कर अपनी विद्वत्ता का पूर्ण परिचय दिया है। उनकी दृष्टि में सत्काव्य वहीं हो सकता है जिसमें अलंकार का चमत्कार, श्लेष का प्राचुर्य तथा वक्रोक्ति का सन्निवेश रूप से रहता है-**''सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्काव्यविरचनमिव''।**

इसी भावना से प्रेरित होकर सुबन्धु की लेखनी श्लेष की रचना में ही विशेष पटु है। उन्होंने स्वयं अपने प्रबन्ध को 'प्रत्यक्षर-श्लेषमयप्रपज्जविन्यासवैदग्धनिधि' बनाने की प्रतिज्ञा की थी ओर इस प्रतिज्ञा का पूर्ण निर्वाह उन्होनें इस गद्यकाव्य में किया हैं सुबन्धु वस्तुतः श्लेषकवि है। इन्होंने अभंग उभय प्रकार के श्लेषों का विन्यास कर अपने काव्य को विचित्रमार्ग का एक उत्कृष्ट उदाहरण बनाया हैं परन्तु उनके श्लेष कहीं-कहीं इतने अप्रसिद्ध, अप्रयुक्त तथा कठिन हो गये हैं कि उन्हें समझने के लिये विद्वानों के भी दिमाग चक्कर काटने लगते हैं। कहीं-कहीं तो बिना कोष की सहायता से पाठक एक पग भी आगे नहीं बढ़ता और उसके ऊपर 'कोशं पश्यन् पदे-पदे' की उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है। प्रसन्नश्लेष का यह उदाहरण रोचक तथा कमनीय है-

''नन्दगोप इव यशोदयान्वितः जरासन्ध इव घटित-सन्धि-विग्रहः, भार्गवइवा सदा न भोगः, दशरथ इव सुमित्रोपेतः सुमन्त्राधिष्ठितश्च, दिलीप इव सुदक्षिणयान्वितों रक्षितगुष्च।''(आशय है कि यशोदा से अन्वित नन्दगोप के समान वह राजा यश और दया से अन्वित था, जरा के द्वारा संगठित अंगवाले राजा जरासन्ध के समान वह सन्धि और विग्रह (युद्ध) का सम्पादक था। सदा नभ (आकाश) में गमन करनेवाले (सदा+नभो+गः) शुक्र के सदृश वह सदा दान तथा भोग से सम्पन्न था।

सुबन्धु ने विरोध, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि नाना अलंकारों से अपने काव्य को सजाया है, परन्तु इन सब में भी श्लेष के कारण ही चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया हैं अनेक उपमायें केवल शब्द साम्य के ऊपर ही प्रतिष्ठित है। 'रक्त-पाद' होने के कारण कवि ने वासवदत्ता की उपमा व्याकरण शास्त्र से दी है। अष्टाध्यायी का एक पाद (4/2) 'तेन रक्तं रागात्' सूत्र से समन्वित है। उधर नायिका के भी पैर रक्त वर्ण के हैं। इस शब्द -साम्य के कारण ही यहाँ उपमा का चमत्कार है। नायिका का स्वरूप अत्यन्त प्रकाशमान है और इसी कारण वह उस न्यायविद्या

के समान बतलाई गई है जिसके स्वरूप का निष्पादन तथा ख्याति उद्योतकर नामक आचार्य के द्वारा सम्पन्न है (न्यायविद्यामिव उद्योतकरस्वरूपाम्)। इस प्रकार के कौतूहलजनक उपमाओं के द्वारा पाठकों का मस्तिष्क अवश्य पुष्ट होता है तथा कवि की विलक्षण चातुरों का भी पूर्ण परिचय मिलता है, परन्तु यह केवल शब्द क्रीड़ा है, जो पाठकों के हृदय को तनिक भी स्पर्श नहीं करती। इस खेलवाड़ में कौतुक का ही विशेष स्थान है। शब्दों का यह तमाशा तमाशबीनों के लिये ही आनन्दवर्धक हो सकता है, रसिकों के लिए नहीं।

परन्तु जहाँ सुबन्धु ने अपने श्लेष-प्रेम को छोड़कर काव्य का प्रणयन किया है वहाँ की शैली रोचक है तथा सहृदयों का पर्याप्त मनोरंजन करत है। साधारणतया गद्यकवि पद्यों के लिखने में कृतकार्य नहीं होता, परन्तु सुबन्धु का दृष्टान्त इससे विपरीत है। वे कोमल पद्यों की रचना में सर्वथा समर्थ हैं सत्कविता की यह स्तुति बहुत ही कोमल शब्दों में विन्यस्त की गई-

अविदितगुणापि सत्कवि-भणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालती-माला ।।11।।

(जिनके गुणों का ज्ञान नहीं होता वह भी सत्कवियों की वाणी श्रोताओं के कानों में मधु की धारा उड़ेलती है। गंध से परिचय न मिलने पर भी, मालती पुष्पों की माला नेत्रों को बरबस खींचती है)। वासवदत्ता की कल्पनाओं का प्रभाव पिछले कवियों पर भी पड़ा था। विरहदुःखों की अवर्णनीयता की यह अभिव्यंजना महिम्नःस्तोत्र के एक सुप्रसिद्ध पद्य की जननी है। सुबन्धु के शब्दों में-''त्वत्कृते याऽनया यातनाऽनुभूता सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्म लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा किमपि कथमप्यनेर्कर्युगसहस्रैरभिलिख्यिते कथ्यते वा'' (वासवदत्ता, पृ॰ 306-307)। (तुम्हारे लिए इसने जो यातना झेली है, वह यदि आकाश कागज बने, समुद्र दावात बने, ब्रह्मा, लिखने वाला हो अथवा सर्पो का राजा कथक का काम करे तब किसी तरह से हजारों युगों में लिखी या कही जा सकती है।) महिम्नःस्तोत्र का 'असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रें' वाला प्रख्यात पद्य इसी की छाया पर निर्मित बहुत रुचिर तथा रोचक है। सुबन्धु की यह प्रसन्न श्लेषमयी वाणी आलोचकों के लिए नितान्त आह्लादजनक है-

विषधरतोऽतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी स कुलद्वेषी पुनः पिशुनः।।6।।

विद्वानों का यह कथन झूठा नहीं है कि खल विषधर सर्प से भी अत्यन्त विषम होता है। देखिए, विषधर तो कवेल 'नकुलद्वेषी' ही होता है, अर्थात् वह नकुल से ही द्वेष करता है, परन्तु 'न+कुलद्वेषी' वह अपने कुल से कभी द्वेष नहीं करता, लेकिन खलों की विचित्र दशा होती हैं वह तो अपने कुल से भी द्वेष तथा विरोध करता है। इस पद्य का प्राण है 'नकुलद्वेषी' पद, जो सुभंग श्लेष के कारण नितान्त सरस तथा सरल है।

कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन प्रस्तु किया है, जो श्लेष के प्रपंच से रहित होने के कारण काफी मनारंजक हैं। प्रभात का वर्णन इसका स्पष्ट उदाहरण है स्वरूप का निष्पादन तथा ख्याति उद्योतकर नामक आचार्य के द्वारा सम्पन्न है (विद्यामिव उद्योतकरस्वरूपाम्) इस प्रकार के

कौतूहलजनक उपमाओं के द्वारा कवि का मस्तिष्क अवश्य पुष्ट होता है तथा कवि की विलक्षण चातुरी का भी पूर्ण परिणाम मिलता है, परन्तु यह केवल शाब्दी क्रीड़ा है, जो पाठकों के हृदय को तनिक भी स्पर्श करती। इस खेलवाड़ में कौतुक का ही विशेष स्थान है। शब्दों का यह तमाशा ....बीनों के लिये ही आनन्दवर्धक हो सकता है, रसिकों के लिए नहीं।

कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है, जो श्लेष के प्रपंच से रहित होने के कारण काफी मनोरंजक है। प्रभात का वर्णन इसका स्पष्ट उदाहरण है। परन्तु यहाँ भी उपमा तथा उत्प्रेक्षा का साहित्य नहीं हैं सच तो यह है कि सुबन्धु के काव्य में कलापक्ष का ही साम्राज्य हैं उनकी यह 'वासवदत्ता' उस विशाल सुसज्जित प्रसाद के समान है जिसक प्रत्येक कक्षा चित्रों से भूषित है तथा अलंकारों के प्राचार्य से जो दर्शकों की आँखों को हमेशा चकाचौध किया करता है। कुन्तक के द्वारा वर्णित 'विचित्र-मार्ग' का सबसे सुन्दर उदाहरण है सुबन्धु की यही कृति। बाणभट्ट की यह आलोचना वस्तुतः श्लाध्य तथा तथ्यपूर्ण है, जिसमें वासवदत्ता के द्वारा कवियों के दर्प को चूर्ण कर देने की बात कही गई है-

कवीनामंगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥

सुबन्धु तथा बाणभट्ट की शैली में महान् अन्तर है। सुबन्धु का गद्य यदि 'अक्षराडम्बर' का साक्षात रूप हैं, तो बाण का गद्य स्निग्ध, रसपेशल 'पांचाली' का भव्य प्रतीक है। सुबन्धु ने आँख मूँदकर सन्दर्भ का बिना विचार श्लेष का ही व्यूह खड़ा किया, परन्तु बाणभट् की दृष्टि वर्ण्य विषय तथा अवसर के ऊपर गड़ी हुई है। वह जो लिखते है वह अवसर तथा सन्दर्भ से संघर्ष नहीं करता। स्निग्ध, रसपेशल तथा हृदयावर्जक गद्य का जीवित प्रतीक बाण सहृदयों के हृदय को स्पन्दित करता है, जब कि सुबन्धु का गद्य केवल मस्तिष्क से ही टक्कर खाता हुआ कथमपि प्रवेश पाता है। दण्डी से भी सुबन्धु का पार्थक्य स्पष्ट है। दण्डी की तीव्र निरीक्षणशक्ति तथा यथार्थवादी शब्दविन्यास का अभाव 'वासवदत्ता' के लोकप्रिय न होने का पर्याप्त हेतु हैं सुबन्धु, बाणभट्ट तथा कविराज के साथ 'वक्रोक्ति-मार्ग' के एक निपुण कवि माने गये है अवश्य, परन्तु बाण का 'कादम्बरी' के सामने 'वासवदत्ता' का काव्य पण्डितों की गोष्ठी का ही कवेल विषय है, विदग्धों की गोष्ठी से उसका सीधा सम्पर्क नहीं है।

बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) वामन का ग्रन्थ है

(क) अलंकारसार मंजरी (ख) काव्यलंकारसूत्र

(ग) साहित्य दर्पण (घ) काव्य प्रकाश

2 हर्ष का समय है-

(क) 800ई॰ (ख) 400ई॰ (ग) 606 से 647 (घ) 609 से 640ई॰

3. वासवदत्ता के लेखक है-

(क) मम्मट (ख) हर्ष (ग) वाणभट्ट (घ) सुबन्धु

(2) अतिलघुउत्तरी प्रश्न

(क) कन्दर्पकेतु के साथ कौन भागती है ?

(ख) पाषाणमूर्ति को कौन स्पर्श करता है ?

(ग) बररूचि के बहन के पुत्र का नाम बताइये?

बोध प्रश्न बहु विकल्पीय प्रश्न

1. वासवदत्ता है

(क) नाटक (ख) आख्यायिका (ग) नाटिका (घ) कथा

2. सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा है-

(क) 385 से 414 ई॰ (ख) 263 से 281 ई॰ (ग) 400 से 480 ई॰ (घ) 606 ई॰

3. श्रृंगारशेखर में श्रृंखलाबन्ध किया जाता था-

(क) प्रजा का (ख) सेनापति का (ग) काव्यों का (घ) कवियों का

4.रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) वासवदत्ता के पति का नाम.....है ।

(ख) वासवदत्ता के नायक का नाम.....है ।

(ग) चित्र दो प्रकार के .....और.....होते हैं ।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि गद्य काव्य के लेखकों में सुबन्धु ही सर्वप्रथम लेखक हैं जिनका ग्रन्थ अलंकृत शैली में निबद्ध गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है । सुबन्धु कालिदास तथा कामशास्त्र के प्रणेता वात्स्यायन से अवान्तरकालीन हैं क्योंकि इन्होंने 'वासवदत्ता' में इन दोनों कवियों का उल्लेख किया है । सुबन्धु की इस वासवदत्ताका सम्बन्ध प्राचीन भारत की प्रसिद्ध आख्यायिका वासवदत्ता तथा उदयन की प्रणयकहानी से कुछ भी नहीं है । यह पूरा कथानक कवि के मस्तिष्क की उपज है । केवल नायिका का अभिधान प्राचीन है । वासवदत्ता कथा में समाजशास्त्री दृष्टि से सामाजिक संचेतना मुख्य विचारणीय बिन्दु है- परिवार, विवाह, प्रेम, संस्था, दाम्पत्य, नारी, शिक्षा, विभिन्न जाति, वर्ग सम्प्रदाय आदि । पारिवार सामाजिक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है । इसमें समाज के अन्दर बनते बिगड़ते मानव मूल्यों को अंकित करने का स्तुत्य प्रयास किया है । विवाह संस्था द्वारा परिवार को स्थायी रूप प्रदान किया जाता है । इसमें प्रेम कथाएँ शुद्ध लौकिक प्रेम का अदर्शन उपस्थित करती है वासवदत्ता विशुद्ध रूप से प्रेमकथा है ।

5.6 शब्दावली

जीवनवृत्ती	-जीवन से सम्बन्धित
प्राच्य	-प्राचीन
सारिका	-मैना

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) **(अ) बहुविकल्पीय**

(1) ख (2) ग (3) घ

2 . अतिलघुउत्तरी

(क) वासवदत्ता

(ख) कन्दर्पकेतु

(ग) सुबन्धु

2 . (अ) बहुविकल्पीय

(2) (घ) (2) (क) (3) (ग)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) श्रृंगार शेखर (ख) कन्दर्पकेतु (ग) भित्तिचित्र और प्रतिकृति

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास -उमाशंकर शर्मा

2. संस्कृत साहित्य का बृहद इतिहास-पं॰बलदेव उपाध्याय

3. वासवदत्ता-सुबन्धु

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सुबन्धु के जीवन परिचय एवं कृतित्व पर प्रकाश डालें ?

2. वासवदत्ता का राजनीतिक एवं समीक्षात्मक परिचय दीजिए ?

इकाई - 6.दण्डी - काल निर्धारण, दशकुमारचरित एवं लक्षण ग्रन्थ का विस्तृत विवेचन

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 महाकवि दण्डी -जीवन एवं कृतित्व
  6.3.1 दण्डी का व्यक्तिगत परिचय
  6.3.2 दण्डी का समय एवं स्थिति काल
  6.3.3. दण्डी के प्रमुख ग्रन्थ
6.4 दण्डी द्वारा रचित ग्रंथ दशकुमार चरित
6.5 लक्षणग्रन्थ काव्यादर्शका विस्तृत विवेचन
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 बोध प्रश्न के उत्तर
6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने गद्य कवि सुबन्धु एवं उनकी रचना वासवदत्ता का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप आचार्य दण्डी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करेंगे। वस्तुतः संस्कृत साहित्य में गद्य का प्रयोग अत्यधिक प्राचीन काल से होता आया है। प्राचीनकाल में पद्य की अपेक्षा गद्य को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। कालान्तर में धीर-धीर दर्शनग्रन्थ ज्योतिषग्रन्थ; व्याकरण गृन्थ ;आदि की सहायता से गद्य पूर्ण विकासित रूप में स्थापित हो गया।

मध्य काल में संस्कृत गद्य साहित्य का जो रूप विकसित हुआ उसे देख कर इतिहासकारों ने कहा है- वैदिक काल सें आरम्भ कर मध्यकाल तक गद्य को विकासित होने का इतिहास बड़ा ही मनोरम है। गद्य के दो रूप वैदिककाल का सीधा -साधा बोल -चाल का गद्य एवं लौकिक संस्कृत का प्रौढ़ समास बहुल गाढ़बन्ध वाला गद्य। इस प्रकार के मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में अपना योगदान जिस रूप में दण्डी ने दिया है वह अद्वितीय है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप आचार्य दण्डी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में अत्यन्त ही सूक्ष्म दृष्टि से बता सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप

- आचार्य दण्डी के विषय में कुशलता पूर्वक जानकारी प्राप्त कर सकेगे।
- दण्डी के कृतित्व (दशकुमार चरित तथा काव्यादर्श) का परिचय दे सकेंगे।
- लक्षण विषयक ग्रन्थ के विषय में समझा सकेंगे।

6.3 महाकवि दण्डी-जीवन एवं कृतित्व

जिस प्रकार रूद्रट, आनन्दवर्धनाचार्य और मम्मट जैसे लब्ध प्रतिष्ठ सुप्रसिद्ध साहित्याचार्यो ने भामह का नाम और उसका मत गौरव के साथ उल्लेख किया है, तादृश उल्लेख यद्यपि दण्डी के विषय में दृष्टिगत नहीं होता है, पर उसका यही कारण नहीं कि दण्डी के ग्रंथ का महत्व भामह के समकक्ष नहीं, यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो भामह का न्यायदोष प्रकरण यदि दण्डी से अधिक महत्वपूर्ण है, तो दण्डी की अलंकार, रीति और गुणों के विवेचन की मौलिकता भामह की अपेक्षा कही अधिक परिष्कृत और उपयोगी है। सुप्रसिद्ध प्राचीन साहित्याचार्यों द्वारा भामह के समान दण्डी का उल्लेख न किये जाने का एकमात्र कारण संभवतः यही है कि दण्डी दाक्षिणात्य थे और भामह काश्मीरी। साहित्य के प्राचीन प्रसिद्ध लेखक प्रायः काश्मीरी ही अधिक हुए हैं। इसी से उनके द्वारा भामह को इतना गौरव प्राप्त हो सका है और उस गौरव का मम्मट एवं रूय्यक के समय तक उसी प्रकार प्रभाव रहा है। किन्तु आचार्य मम्मट के काव्यप्रकाश की व्यापक और अत्यंत विद्वत्तापूर्ण विवेचना के प्रकाश ने केवल भामह के ग्रंथ

को ही नहीं, अपितु प्रायः सभी पूर्वा पर ग्रंथों को निस्तेज कर दिया, फिर ऐसी अवस्था में दण्डी के ग्रंथ का-जो स्वयं ही निर्विकास था, अपनी पूर्वावस्था में रहना स्वाभाविक ही था।

दण्डी ही ऐसा प्रधान साहित्याचार्य है जिनमें अपने पूर्ववर्तियों से सबसे अधिक अलंकारों के उपभेदों का एवं गुण और रीति का विस्तृत निरूपण किया है। किन्तु उसके निरूपित अंलकारों के उपभेदों का अधिकांश में उसके परवर्ती आचार्यो के अनुसरण नहीं किया है।

6.3.1 दण्डी का व्यक्तिगत परिचय

'अवन्ति-सुंदरी के आधार पर दण्डी का थोड़ा चरित्र प्राप्त होता है कविवर भारवि के तीन लड़के हुए, जिनमें मनोरथ मध्यम पुत्र था। मनोरथ के भी चारों वेदों की भांति चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें वीरदत्त सबसे छोटा होने पर भी एक सुयोग्य दार्शनिक था। 'वीरदत्त' की स्त्री का नाम गौरी था। इन्हीं से कविवर दण्डी का जन्म हुआ था। बचपन में ही इनके माता-पिता मर गये थे। वे कांची में निराश्रय ही रहते थे। एक बार कांची में विप्लव उपस्थित हुआ तब ये कांची छोड़कर जंगलों में इधर-उधर भटकते फिरते थे। अनन्तर शहर में शांति होने पर ये फिर पल्लव-नरेश की सभा में आ गए और वहीं रहने लगे। भारवि और दण्डी के समभावित संबंध के विषय में अब संदेह होने लगा है। जिस श्लोक के आधार पर भारवि के साथ दण्डी के प्रपितामह दामोदर की एकता मानी जाती थी उस श्लोक में नये पाठ भेद मिलने से इस मत का बदलना पड़ा है। नया पाठ नीचे दिया जाता है-

स मेधावी कविर्विद्वान भारवि प्रभवं गिराम्।
अनुरूध्याकरोन्मंत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने॥

पहला पाठ प्रथमान्त 'भारवि' था, जब उसके स्थान पर द्वितीयान्त 'भारवि' मिला है, जिससे यह अर्थ निकलता है कि भारवि की सहायता से दामोदर की मित्रता विष्णुवर्धन के साथ हो सकी। अतः दामोदर दण्डी के प्रपितामह थे, भारवि नहीं। इस नये पाठभेद से दोनों के समय-निरूपण के विषय में किसी तरह का परिवर्तन आवश्यक नहीं है। इस वर्णन से दण्डी के अंधकारमय जीवन पर प्रकाश की एक गाढ़ी किरण पड़ती है भारवि का संबंध उत्तरी भारत से न होकर दक्षिण भारत में था। हिन्दुओं की पवित्र नगरी कांची (आधुनिक कांजीवरम्) दण्डी की जन्मभूमि थी। इनका जन्म अत्यंत शिक्षित ब्राह्मण कुल में हुआ था। भारवि की चौथी पीढ़ी में इनका जन्म होना ऊपर के वर्णन से बिल्कुल निश्चित है। कांची के पल्लव-नरेशों की छाया में इन्होंने अपने दिन सुखपूर्वक बिताए थे। इस वर्णन से दक्षिण भारत की एक किंवदन्ती की भी यथेष्ट पुष्टि होती है। एम॰ रंगाचार्य ने एक किंवदन्ती का उल्लेख किया है कि पल्लव राजा के पुत्र को शिक्षा देने के लिये ही दण्डी ने'काव्यादर्श' की रचना की थी। काव्यदर्शन के प्राचीन टीकाकार तरूणवाचस्पति की सम्मति में दण्डी ने निम्नलिखित प्रहेलिका में कांची तथा वहां के शासक पल्लव-नरेशों की ओर इगिंत किया है - **नासिक्यमध्या परितष्चतुर्वर्णविभूषिता। अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाहया नृपा॥**

अतः एव दण्डी को कांची के पल्लव-नरेश के आश्रय में मानना इतिहास तथा किंवदंती दोनों से

सिद्ध होता है। दण्डी ने अपने काव्यादर्शमें दक्षिण प्रान्त के मलयानिल (2।174 और 3।136), काची (अस्पष्ट 3।114) कावेरी (3।166) और चोल (अस्पष्ट 3।166) स्थानों का वर्णन किया है। ऐसे ही आधारों पर दण्डी को दाक्षिणात्य कल्पना किया जाता है। संभव है यह कल्पना ठीक हो, जब कि दण्डी का वर्णन शैली भी वैदर्भी रीति प्रधान है जो काश्मीर प्रांत के साहित्यकों से प्रायः भिन्न प्रतीत होती है।

'' जाते जागति बाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।''

साहित्य के उपलब्ध प्राचीन लक्षण-ग्रंथों में भामह के बाद दण्डी का काव्यदर्श ही मिलता है। काव्यदर्श में तीन परिच्छेद हैं।

(1) प्रथम परिच्छेद में काव्य-परिभाषा, काव्य-भेद, महाकाव्य लक्षण, गद्य के प्रभेद, कथा, आख्यायिका, मिश्र-काव्य, भाषा-प्रभेद, वैदर्भ आदि मार्ग, अनुप्रास, गुण और काव्य-हेतु का विवेचन है।

(2) द्वितीय परिच्छेद में 35 अर्थालंकार (संसृष्टि सहित) निरूपण किये गये हैं।

(3) तृतीय परिच्छेद में यमक, गोमूत्रादि चित्रबंध काव्य, प्रहेलिका और दश दोषों का निरूपण है।

6.3.2 दण्डी का समय एवं स्थिति - काल

नवम शताब्दी के ग्रंथों में दण्डी का नामोल्लेख पाये जाने से निश्चित है कि उनका समय उक्त शताब्दी से पीछे कदापि नहीं हो सकता। सिंघली भाषा के अंलकार-ग्रंथ 'सिय-बस-लकर' (स्वभाषालंकार) की रचना काव्यादर्शन के आधार पर की गई है। इसका रचयिता राजा, सेन प्रथम महावंश के अनुसार 846 - 66 ई० तक राज्य करता था। इससे भी पहले के कन्नड़ भाषा के अलंकारग्रंथ ' कविराजमार्ग ' में काव्यादर्श की यथेष्ट छाया देखी गई है। इसके उदाहरण या तो काव्यादर्श से पूर्णतः लिये गये या कहीं - कहीं कुछ परिवर्तित रूप में रखे गये है। हेतु अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के लक्षण तो दण्डी से अक्षरश: मिलते हैं। इसके लेखक 'अमोघवर्ष' का समय 815 ई के आसपास माना जाता है। अतएव काव्यादर्श की रचना नवीं शताब्दी के अनन्तर कदापि स्वीकृत नहीं की जा सकती है। यह तो दण्डी के काल की अंतिम सीमा है। अब पूर्व की सीमा की ओर ध्यान देना चाहिए। यह निर्विवाद है कि काव्यादर्श के समग्र पद्य दण्डी की ही मौलिक रचना नहीं है, उनमें प्राचीनों के भी पद्य सन्निविष्ट है। लक्ष्म लक्ष्मी तनोतीति प्रतीति-सुभग वच में दण्डी के इति शब्द के स्पष्ट प्रयोग से यहां जाना जाता है कि कालिदास के प्रसिद्ध प़द्यांश **'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति'** से उद्धरण दिया गया है। अतः इनके कालिदास के अनन्तर होने में तो संदेश का ध्यान नहीं है, परन्तु अन्य भाव-साम्य से ये बाणभट्ट के भी अनन्तर प्रतीत होते हैं।

अरत्नालोकसंहार्यमवार्य सूर्यरश्मिभिः। दृष्टिरोधंकरं यूना यौवनप्रभवं तमः।।

काव्यादर्श इस पद्य में कादम्बरी में चन्द्रापीड को शुकनास द्वारा दिए गए उपदेश की स्पष्ट छाया दीख पड़ती है। दण्डी को बाणभट्ट (7 वीं सदी पूर्वार्द्ध) के अनन्तर मानने में कोई विप्रतिपति नहीं

जान पड़ती है । प्रो. पाठक की सम्मति में काव्यादर्श में निर्वत्य, विकार्य, तथा प्राप्य हेतु का विभाग वाक्यपदीय के कर्ता भर्तृहरि (650 ई०) के अनुसार किया गया है । काव्यादर्श के उल्लिखित राजवर्मा (रातवर्मा) को यदि हम नरसिंहवर्मा द्वितीय (जिसका विरूद अथवा उपनाम राजवर्मा था ।) मान ले तो किसी प्रकार की अनुपपति उपस्थित नहीं होती । प्रो. आर. नरसिंहचार्य तथा डाक्टर बेलबल्कर ने भी इन दोनों की एकता मानकार दण्डी का समय सातवीं सदी का उतरार्द्ध बतलाया है । शैव-धर्म उत्तेजक पल्लवराज नरसिंह वर्मा का समय 690-715 ई० माना जाता है । अतः इनके सभा कवि दण्डी का भी समय बाण के पश्चात् सप्तम शती के अंत तथा अष्टम के आरंभ में मानना उचित प्रतीत होता है ।दण्डी का समय भी अत्यंत संदिग्ध है । दण्डी की अन्तिम सीमा के लिये अन्य ग्रंथों में निम्नलिखित आधार प्राप्त होते हैं-

(1) श्री अभिन्वगुप्ताचार्य ने, जिनका समय लगभग दशम शताब्दी है धन्यालोक की व्याख्या लोचन में लिखा है - **यथाहदण्डी-**

(2) प्रतिहारेन्दुराज ने, जिसका समय लगभग ईसवी सन् 925 है, उद्भटाचार्य के काव्यलंकारसारसंग्रह की लघुवृति पृष्ठ 28 में लिखा है- अतएव दण्डिना लिम्सीव इत्यादि ।

(3) कनारी भाषा में 'कविराजमार्ग' नामक एक ग्रंथ राष्ट्रकूट के राजकुमार अमोघवर्ष प्रणीत है । उसके संपादक श्री पाठक के कथानानुसार उस ग्रंथ के साधारणोपमा, अंसभवोपमा, संभवोपमा, विशेषोक्ति, और अतिशयोक्ति की परिभाषाएं दण्डी के काव्यादर्श से सर्वथा अनुवादित हैं । और अन्य भागों पर भी काव्यादर्श का पर्याप्त प्रभाव है । उस ग्रंथ का निर्माणकाल शक 736-797 (815-874ई०) है ।

(4) सिंहली भाषा में एक 'सियाकसलकार (स्वभाषालंकार) नामक ग्रंथ है । वह दण्डी के काव्यदर्श पर ही अवलम्बित हैं । उसमें काव्यदर्श का स्पष्ट नामोल्लेख भी है । महावंश के अनुसार इसका लेखक प्रथम राजा सेन का राज्यकाल सेन 846-866 है ।

(5) वामन के काव्यलंकार सूत्र से दण्डी के काव्यादर्श को तुलनात्मक विवेचना द्वारा विदित होता है कि वामन से दण्डी प्राचीन हैं । दण्डी ने रीति-सिद्धांत का जो महत्वपूर्ण विवेचन किया था, उसे वामन ने अंतिम सीमा तक पहुँचा दिया है । दण्डी, वैदर्भी और गौड़ी दो ही मार्ग बतलाता है- तत्र वैदर्भ गौडीयौ (1।40) किन्तु वामन उनमें एक पांचाली और बढ़कर तीन बतलाता है । वामन इनकों 'मार्ग न कह कर 'रीति' कहता हुआ (यद्यपि उसने मार्ग का प्रयोग भी किया है (3। 1।12) इतना महत्व देता है कि रीतिरात्माकाव्यस्य इससे ज्ञात होता है कि वामन को पांचाली रीति से और उसके पारिभाषिक शब्द रीति से दंडी सर्वथा अपरिचित था और भी ऐसे कारण हैं, जिनके द्वारा दण्डी का वामन से प्रथम होना प्रतीत होता वामन का समय आठवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्द्ध है । जैसे कि आगे स्पष्ट किया जायेगा । इन आधारों पर दण्डी की अंतिम सीमा सन 800 ईसवी के लगभग हो सकती है । किन्तु एक और भी प्रमाण मिलता है । जिसके द्वारा यह सीमा भी पूर्व काल तक चली जाती है ।

शारंगधर पद्धति में (संख्या 180) विज्जिका नाम्री एक स्त्री लेखिका का-

'नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता ।

वृथैव दण्डिनाप्रोक्त सर्वशुक्ला सरस्वती ।।

यह पद्य है काव्यादर्श में दण्डी ने मंगलाचरण प्रथम पद्य में 'सर्व -शुक्लसरस्वती लिखा है। इस पर विज्जका का यह व्यंग्यपरक उपहास है विज्जका के अनेक पद आचार्य मम्मट आदि के ग्रन्थों में उदाहरण रूप में मिलते है इसके पद्य विजया ;विज्जा के नाम से भी उद्धृत किये गये हैं। इसके विषय में कल्हण की सूक्ति मुक्तावली (सख्या 184) में राजशेखर के नाम से

'सरस्वतीव कार्णाटी विजया जयत्यसौ।

या विदर्भगिरां वासः कालिदासनन्तरम् ।।

यह पद्य हैं। इसके द्वारा यह दक्षिण प्रान्त की विदित होती है। संभवतः विख्यात कार्णाटी वही भारिका विजिया है; जो चंद्रादित्य की महारानी थी चंद्रादित्य द्वितीय पुलकेशिन का पुत्र था। इसका समय सन् 660 ई0 है। यदि विजिया का पिज्जिक से एकीकरण भ्रमात्मक न हो जैसा कि संभव भी नही है ;क्योंकि जिसने स्वयं अपनी विद्वत्ता के गर्व पर दण्डी पर व्यंग्योक्ति की है और जिसके विषय में राजशेखर जैसे विद्वान् द्वारा ऐसा महत्वपूर्ण उल्लेख हो तो दण्डी की अंतिम सीमा विज्जका के पूर्व लगभग सन् 600 ई0 है। इसके सिवा ईसवी सन् की छठी शताब्दी के सुबन्धु प्रणीत वासवदत्ता में -'यश्र छन्दोविचिति रिव कुसुमविचित्राभिः - छन्दो विचितिरिव मालिनासनाथा। 'छन्दो विचिमिव भ्राजमानतनुमध्याम्' इस प्रकार तीन स्थलापर छन्दों विचिति शब्द का प्रयोग मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि दण्डी -'छन्दो विचित्यां सकलस्तत्प्रपई को विरचित। इस वाक्य में दण्डी ने अपने 'छन्दों विरचित' नामक अपनें छंद-ग्रंथ का नामोल्लेख किया है। उसी के विषय में उपर्युक्त वाक्य सुबन्ध के हैं। यदि वह कल्पना ठीक हो तो इसके द्वारा भी दण्डी का सुबन्धु के पूर्ववर्ती अर्थात ईसवी की छठी शताब्दी में होना सिद्ध होता है। दण्डी का समय बहुत से ऐतिहासिक विद्वान छठी शताब्दी में ही बतलाते है। जैसे मि॰ मैक्समूलर, मि. वेबर प्रोफेसर मेकडोनल और कर्नल जेकौबी आदि।

किन्तु दण्डी की पूर्व सीमा के लिये जो अन्य आधार उपलब्ध होते हैं वे अधिक प्रबल हैं, और उनके द्वारा ऊपर की मान्यता पर आघात पहुंचता है। श्री महेशचंद्र न्यायरत्न मि. पीटरसन और जोकोवी का मत है कि दण्डी के 2।197 में बाण की कादम्बरी (बोम्बे संस्कृत सीरीज संस्करण के पृ. 102 पंक्ति 16) का प्रतिबिम्ब हैं वाण का समय तो महाराज श्री हर्षवर्द्धन के समकालीन 606-647 ई॰ है।

'किरातार्जुनीयपचदशसर्गादिकोंकारो दुर्विनीतनामधेयः।'

इस वाक्य द्वारा विदित होता है। अतएव भारवि का समय लगभग छठी शताब्दी के अंतिम चरण से शताब्दी के प्रथम चरण तक माना जा सकता है। और अवन्तिसुन्दरीकथा के-

'मनोरथाव्हयस्तेषां मध्यमों वंशवर्द्धनः।

ततस्तनूजाश्चत्वार ख्रटुर्वेदा इवा भवन्' ।।

श्री वीरदत्त इत्येषां मध्यमों वंशवर्द्धनः।

यवीयानस्य च श्लाघ्या गौरी नामा भवत्प्रिया ।।

ततः कथंचित्सा गौरी द्विजाधिपशिरोमणेः।

कुमार दण्डिना मानं व्यक्तशक्तिमजीजनत्।।

इन पद्यों से विदित होता है, कि भारवि का मध्यम पुत्र मनोरथ के चार पुत्रों में सबसे छोटा वीरदत्त था। वीरदत्त की पत्नी का नाम गौरी था इन्ही वीरदत्त और गौरी देवी से दण्डी का जन्म हुआ है। इनकी जन्मभूमि कांची (आधुनिक कांजीवर) थी। इसके द्वारा दण्डी का दाक्षिणात्य होना भी सिद्ध है, जैसे कि अबतक विद्वानों की कल्पना है। यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिये 20 वर्ष भी मान लिये जाय तो भी दण्डी का समय इस आधार पर सप्तम शताब्दी का अंतिम चरण हो सकता है। इसके द्वारा भामह और दण्डी के पूर्वापर के संबंध में जो पहिले विवेचन किया गया है। उसकी पुष्टि भी होती है कि भामह का समय महाकवि बाण के पूर्ववर्ती संभवतः छठी शताब्दी है। और दण्डी का समय सप्तम शताब्दी का अंतिम चरण ही माना जा सकता है।

4.3.3 दण्डी के प्रमुख ग्रंथ

राजशेखर ने इस प्रख्यात पद्य में दण्डी के तीन प्रबन्धों के अस्तित्व का स्पष्ट निर्देश किया है-

त्रयोअग्नयस्त्रयों देवास्त्रयों वेदास्त्रयों गुणाः।

त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।। (शारंगधरपद्धति)

दण्डी की इस विश्रुत प्रबंधत्रयी में काव्यादर्श निःसंदेह अन्यतम रचना है' इसमें कोई मत नहीं हो सकते। आज कोई भी विज्ञ आालोचक 'छन्दोविचित' तथा कलापरिच्छेद को जो काव्यदर्श के आरंभ तथा अंत के आंरभ तथा अंत में निर्दिष्ट किये गये है, स्वतंत्र ग्रन्थ मानने के पक्ष में नहीं है। तो छंदशास्त्र का ही अभिधान है और दण्डी ने भी स्वयं इसे काव्य में प्रवेश पाने के लिए विद्या के रूप में निर्दिष्ट किया है (सा विद्या नौर्विविक्षूणाम्-काव्यादर्श) दण्डी की ही दृष्टि में यह विद्या है, रचना नहीं। इसी प्रकार 'कलापरिच्छेद' भी काव्यादर्श का ही कोई अनुपलब्ध अंश है जिसे दण्डी ने अवश्य लिखा था, परन्तु आज उपलब्ध नहीं है।

दण्डी का द्वितीय ग्रंथ कौन है ? दण्डी के नाम से दशकुमार-चरित' नामक रोमाचंक आख्यानों तथा कौतूहल से परिपूर्ण ग्रंथ पर्याप्तरूपेण प्रख्यात है। दशकुमार-चरित के विभिन्न पाठ-संस्करणों की परीक्षा करने से स्पष्ट होता है कि इस ग्रंथ के तीन खण्ड है- भूमिका, मूल ग्रंथ पूरक भाग, जिनमें क्रमशः 5, 8 तथा 9 उच्छवास है। ये तीनों भागों आपस में मेल नहीं खाते। भूमिका भाग (5 उच्छवास) पूर्वपीठिका के नाम से प्रख्यात है तथा पूरक भाग है। मूलग्रंथ और पूर्वपीठिका के कथानकों में अवान्तर चरित के अन्वर्थक नाम से प्रख्यात है। मूलग्रंथ और पूर्वपीठिका के कथानकों में अवान्तर घटना-वैषम्य है। मूलग्रंथ के आठ उच्छवासों में केवल आठ ही कुमारों के विचित्र चरित्र का उपन्यास है, परन्तु नाम की सार्थकता सिद्ध करने के विचार से पूर्वपीठिका में अन्य दो कुमारों का चरित जोड़ दिया गया है और अधूरे ग्रंथ को पूर्णता की कोटि पर पहुंचाने के लिए अंत में उत्तरपीठिका में भी जोड़ दी गई है। इस प्रकार आंरभ में पूर्वपीठिका से और अंत में उत्तरपीठिका से संपुटित समग्र ग्रंथ ही आज 'दशकुमार-चरित' के नाम से प्रख्यात है।

इधर दण्डी के नाम में प्रकाशित 'अवन्तिसुंदरी-कथा' तथा दशकुमारचरित के तुलनात्मक अनुशीलन से प्रतीत होता है कि अवन्तिसुन्दरी कथा ही दण्डी की मौलिक रचना है। हस्तलेखों

की पुष्पिका का प्रामाण्य तो है ही अप्पयदीक्षित (प्रसिद्ध वेदान्ती से भिन्न व्यक्ति) ने अपने 'नामसंग्रहमाला' नामक ग्रंथ में 'इत्यवन्तिसुन्दरीये दण्डिप्रयोगात्' लिखकर दण्डी को इस ग्रंथ का प्रामाणिक रचयिता सिद्ध किया है। इस कथा में 'दशकुमारचरित' की पूर्वपीठिका में वर्णित वृत है। अतः अनुमान लगाना सहज है कि 'अवन्तिसुदंरी' ही दण्डी की विश्रुत कथा है, जिसका सारांश किसी व्यक्ति ने दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के रूप में उपनिबद्ध किया। यह तथ्य ध्यातव्य है कि दशकुमारचरित का नाम न तो अलंकार के किसी ग्रंथ में और न किसी व्याख्या ग्रंथ में ही निर्दिष्ट किया गया है। इसकी सर्वाधिक प्राचीन टीका 'पदचन्द्रिका' कवीन्द्राचार्य सरस्वती की रचना है (पुष्पिका से प्रमाणित)। फलतः दशकुमारचरित की रचना का काल 17वीं शती से कुछ प्राचीन अवन्तिसुंदरी बड़ी उदातशैली में विरचित कथा है। वर्ण्य विषय के अनुसार शैली में भी अंतर पाये पाते है। गाढबंध के लिए जहां समास की बहुलता है, वहां उपदेश के स्थलों पर असमस्त पदों का प्राचुर्य है। इसमें कादम्बरी की कथा का वर्णन है जिससे दण्डी बाण भट्ट के अनन्तर उत्पन्न हुए थे- यह तथ्य निश्चयेन प्रतीत होता है। शैली के ऊपर भी बाणभट्ट का प्रभाव पूर्णतः लक्षित होता है। मेरी दृष्टि में इसी गद्यकथा को लक्षित कर 'दण्डिनः पदलालित्यम्' वाला आभाणक विदग्ध-गोष्ठी में प्रचलित हुआ था। एक उदाहरण पर्याप्त होगा। लक्ष्मी का यह वर्णन ललितपदों का विन्यास प्रस्तुत करता है-रज्जुरियम् उद्बन्धनाय सत्यवादितायः विषमियं जीवितहरणाय माहात्म्यस्य, शस्त्रमियं विषसनाय सत्पुरुषवृत्तानाम्, अग्निरिय धर्मस्य, सलिलमियं निमज्जनाय सौजन्यस्य, धूलिरियं घूसरीकरणाय चारित्रस्य (पृ॰ 47)। इसके आरम्भ में प्राचीन कविविषयक स्तुति-पद्यों के अनन्तर दण्डी तथा उनके पूर्व-पुरुषों का ऐतिहासिक वृत्त वर्णित है जो आरम्भ में दिया गया है और जिससे दण्डी के अविर्भाव का काल सप्तम शती का अन्तिम अथवा अष्टम शती का प्रथम चरण सिद्ध होता है। अवन्तिसुन्दरी कथा ही निश्चयेन दण्डी का प्रख्यात गद्यकाव्य है। यह अधूरा ही उपलब्ध है। यदि यह पूर्णरूपेण उपलब्ध हो जाय, तो दशकुमारचित के साथ इसके सम्बन्ध की पूर्ण समीक्षा हो सके।

दण्डी के तृतीय प्रबन्ध की सूचना हमें भोजराज के श्रृंगारप्रकाश से प्राप्त होती है। भोज ने इसे दो बार अपने पूर्वोक्त ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया ह-'दण्डिनो धनंयस्य वा द्विसन्धाने (सप्तम प्रकाश) तथा 'रामायण-महाभारतयोर्दण्डिद्विसन्धानमिव' (अष्टम प्रकाश)। दण्डी का यह द्विसन्धान काव्य श्लेष के द्वारा रामायण एवं महाभारत के दोनों कथानकों को समान पद्यों में वर्णन करता है, यह महाकाव्य आज उपलब्ध नहीं है परन्तु भोज के द्वारा निर्दिष्ट होने से इसकी सत्ता एकादश शती में अनुमानत: सिद्ध होती है। इस प्रकार दण्डी की प्रबन्धत्रयी है-काव्यादर्श, अवन्तिसुन्दरी तथा द्विसन्धानकाव्य।

6.4 दण्डी द्वारा रचित ग्रन्थ दशकुमार चरित

पुष्पपुरी (पटना) का राजा राजहंस मालवेश्वर मानसार को परास्त करता है, परन्तु तपस्या के बल से प्रभावसम्पन्न होकर मानसार पाटलिपुत्र पर चढ़ाई करता है और राजा को युद्ध में हराता है। राजहंस जंगल में चला जाता है और वहीं राजवाहन नामक पुत्र उसे उत्पन्न होता है। उनके

मन्त्रियों के भी पुत्र उत्पन्न होते हैं। ये बड़े होने पर यात्रा के निमित्त परदेश जाते है और भाग्य की विषमता के कारण अलग-अलग देशों में पहुँच जाते है तथा विचित्र संकटपूर्ण जीवन बिताते हैं। राजवाहन से पुनः भेंट होने पर वे आपबीती सुनाते हैं और इन्हीं साहसी कुमारों के साहसपूर्ण घटनाओं का आकर्षक वर्णन प्रस्तुत करने वाला आख्यान ग्रन्थ 'दशकुमार-चरित' कहलाता है। 'दशकुमार-चरित्र एक घटना-प्रधान कथानक है जिसमें नाना प्रकार की उल्लेखनीय रोमांचक घटनाएँ पाठकों के हृदय में कभी विस्मय की और कभी विषाद की रेखायें खींचने में नितान्त समर्थ होती हैं। कहीं पाठक भयानक अरण्यानी के बीच हिंसक पशुओं के चीत्कारों तथा दहाड़ों को सुनकर व्यग्र हो उठता है, तो कहीं वह समुद्र के बीच जहाज टूट जाने से अपने को पानी में काठ के सहारे तैरता हुआ पाता है। इन कहानियों का संबंध दोनों क्षेत्रों से है-स्थल-जगत् से तथा जल-जगत् से। मित्रगुप्त के जीवन में हमें तात्कालिक जलयात्रा का एक बड़ा ही रोचक चित्र मिलता है। मित्रगुप्त दामलिप्ति (ताम्रलिप्ति) नामक प्रख्यात बंगीय बन्दरगाह से किसी नवीन द्वीप में जहाज से जाता है। चट्टान की चोट पाकर जहाज टूट जाता है। बहुत देर तक तैरने के बाद संयोगवश उसे काल का एक तैरता हुआ टुकड़ा मिलता है। रात-दिन उसी के सहारे बिताने पर यवन नाविकों का एक जहाज दिखलाई पड़ता है जिसके कप्तान (नाविक नायक) का राम 'रामेषु' है। यवनों के ऊपर अन्य युद्धपोत (मद्गु) का आक्रमण होता है। यवन नाविक इस नवीन विपत्ति से विचलित हो उठते हैं। मित्रगुप्त जिसे जंजीरों से बांधा गया था मुक्त कर दिया जाता है। वह इस पोत के डाकूओं को अपनी वीरता से हराकर यवनों को बचाता है और उनसे पुरस्कृत होकर पुनः स्वदेश लौट आता है। इसी प्रकार की रोमांच तथा साहस से भरी हुई विस्मयावह घटनाओं से पूर्ण होने के कारण दशकुमार-चरित का वातावरण नितान्त भौतिक है। छल-कपट, मार-काट तथा सांच-झूट से ओत-प्रोत होने के कारण यह एक अत्यंत सजीव रचना है। दण्डी की प्रतिभा घटनाओं की यथार्थता में चरितार्थ होती है। यथार्थवाद यहां पूर्णतः प्रतिबिम्बित हो रहा है।

'रामेषु' सीरिया की शमी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है सुंदर ईसा (रामत्रसुंदर, ईशुपुत्रईसा)। ईसाई धर्म के प्रचार के कारण यह नाम उस समय यवन नाविका में चल चुका था। गुप्त काल में भरत की नौसेना के बेड़े देशान्तारों से व्यापार करने में तथा रत्नार्वणों की मेखला से युक्त भारतभूमि की रक्षा करने में नितान्त पटु थे। दण्डी के इस वर्णन से घटना की पुष्टि होती है। दण्डी के द्वारा निर्दिष्ट 'मद्गु' नामक जंगी जहाज झपट्टा मारनेवाले समुद्री पक्षी की समता रखने के कारण इस नाम से पुकारा गया है। दशकुमार के तृतीय उच्छवास में 'खनति' नाम एक यवन व्यापारी से एक बहुमूल्य हीरा ठगने केा उल्लेख है। 'खनति' की व्युत्पति का पता नहीं कि यह किस भाषा का शब्द है, परन्तु इतना तो निश्चित है कि दण्डी के युग में ईरानी व्यापारी भारत में हीरा जवाहरात का व्यापार करते थे।

6.5 लक्षणग्रन्थ काव्यादर्श का परिचय

यह आचार्य दण्डी के समस्त ग्रन्थों में श्रेष्ठ और संस्कृत काव्यशास्त्र के मान्य प्राचीन ग्रन्थों में अन्यतम है। परम्परा और ग्रन्थ की पुष्पिकायें इसके प्रसिद्ध नाम 'काव्यादर्श' को ही प्रख्यापित करती हैं। इसका यह नाम सम्भवतः इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद के पंचम श्लोक के आधार पर पड़ा हो सकता है, जिसमें लेखक ने काव्य को प्राचीन राजाओं के यशोबिम्ब के लिये 'आदर्श' बताया है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी तो काव्य के लिये आदर्श ही है, क्योंकि काव्य अपने समस्त रूपकों के साथ बिम्बित हो रहा है।

इस प्रसिद्ध नाम के साथ इसका एक और अप्रसिद्ध नाम 'काव्यलक्षण' भी है। इसके बौद्ध व्याख्याकार 'रत्नश्रीज्ञान' इसे इसी नाम से अभिहित करते है। अनन्तलाल ठाकुर और उपेन्द्र झा के सम्पादकत्व में इसका संस्करण भी 'काव्यलक्षण' नाम से निकला था। ग्रन्थ के इस नाम का आधार भी प्रथम परिच्छेद के द्वितीय श्लोक का 'क्रियते काव्यलक्षणम्' अंश है। इसके 'काव्यलक्षणम्' शब्द को ग्रन्थ का नाम भी माना जा सकता है और काव्य को लक्षित-निरूपित करने वाला सामान्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी। आचार्य कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवित' (3/33) में दण्डी को 'लक्षणकार' कहा है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः अतीत में, कभी कुछ प्रदेशों में, यह 'काव्यलक्षण' के नाम से भी प्रसिद्ध रहा हो, किन्तु आज तो यह 'काव्यादर्श के नाम से ही सर्वत्र प्रसिद्ध है।

वर्तमान में उपलब्ध 'काव्यदर्श' अधूरा प्रतीत होता है, क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ (3/171) की ही 'तस्याः कलापरिच्छेदे रूपममाविर्भविष्यति' इस पंक्ति से लगता है कि इस ग्रन्थ में 'कलापरिच्छेद' के नाम से एक परिच्छेद और था, जिसमें उसके नाम के अनुसार ही सम्भवतः कलाओं (काव्य से सम्बद्ध नाट्य तथा तत्सदृश अन्य कलाओं) का विवेचन किया गया होगा। यह परिच्छेद 'काव्यादर्श' के किसी भी संस्करण में उपलब्ध नहीं होता, किन्तु अतीत में इसके अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। 'मालतीमाधव' के व्याख्याकार जगद्धर ने 'काव्यादर्श' से छह पद्य/पद्यांश अपनी व्याख्या में उद्धृत किए हैं, किन्तु उनमें से केवल तीन ही वर्तमान 'काव्यादर्श' में अविकल उपलब्ध होते हैं। दो का किसी तरह कहीं न कहीं समावेश किया जा सकता है किन्तु नाट्य के 'प्रकरण' नामक भेद से सम्बद्ध एक उद्धरण का समावेश वर्तमान 'काव्यदर्श' के किसी भी परिच्छेद में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसमें नाट्य की चर्चा कहीं नहीं है। लगता है यह उद्धरण अधुना अनुपलब्ध कलापरिच्छेद का रहा होगा। इसी प्रकार वात्सायन के 'कामसूत्र' के व्याख्याकार यशोधर ने अपनी 'जयमश्ला' नामक व्याख्या में दुर्वाचक और काव्यमस्यपूरण इन दो कलाओं से सम्बन्धित जो दो श्लोक 'काव्यदर्श' का नाम लेकर उद्धृत किए हैं, वे वर्तमान 'काव्यदर्श' में उपलब्ध नहीं होते है। ये भी 'कलापरिच्छेद' के ही होंगे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। प्रतीत होता है कि उक्त दोनों व्याख्याकारों के समय (1200-1300ई०) 'काव्यदर्श' का उक्त परिच्छेद वर्तमान था तथा बाद में किन्हीं कारणों से नष्ट हो गया। इस तथ्य की पुष्टि 'काव्यदर्श' के टीकाकार 'रत्नश्रीज्ञान' के 'चतुर्थः कलापरिच्छेदोऽस्य दण्डिनेऽस्ति, स त्विह न प्रवर्तते।' इस तथा दूसरे टीकाकार तरुणवाचस्पति के 'चतुषष्टिकलासंग्रहात्मकः काव्यदर्शस्य कश्चिदन्योऽपि परिचछेऽस्तीत्याहुः इस कथन से भी होती

है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि इन व्याख्याकारों के समय 'कलापरिच्छेद' का अस्तित्व कहीं न कहीं अवश्य था, किन्तु ये लोग जहाँ रहते थे, वहाँ उसका प्रचलन नहीं था (स त्विह न प्रवर्तते) । इसीलिये उसकी व्याख्या भी नहीं की गई । कलापरिच्छेद के प्रचलन के न होने का कारण यही हो सकता है कि उसमें जिन कलाओं का विवेचन किया गया था, वे उस युग की दृष्टि में काव्य से सम्बद्ध नहीं रह गई होंगी, इसलिये काव्यशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिए उनका कोई उपयोग नहीं रह गया था । परवर्ती काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में कलाओं के विवेचन का न होना इस तथ्य का पुष्ट प्रमाण है कि काव्यशास्त्र के आचार्यों की दृष्टि में काव्यशास्त्र का काव्येतर कलाओं से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था ।

वर्तमान में प्रकाशित 'काव्यदर्श' के संस्करणों में तीन परिच्छेद उपलब्ध होते हैं, जिनमें कारिका (लक्षण श्लोक) और उदाहरण दोनों को मिलाकर कुल 660 श्लोक हैं । कहा जाता है कि ब्रह्मवादि मुद्रणालय, मद्रास से प्रकाशित इसके संस्करण में चार परिच्छेद हैं, न कि वर्तमान संस्करणों के समान तीन । इसमें तृतीय परिच्छेद की समाप्ति यमक-प्रहेलिक निरूपण के साथ हो जाती है । चतुर्थ परिच्छेद में केवल दोषों का विवेचन है । इधर डॉ० जयशंकर त्रिपाठी ने अपने शोधग्रन्थ 'आचार्य दण्डी और संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास-दर्शन' में विभिन्न तर्कों के आधार पर 'काव्यदर्श' के तृतीय परिच्छेद को अप्रामाणिक ठहरा कर केवल दो परिच्छेदों को मान्यता प्रदान की है । डॉ० धर्मेन्द्र कुमार गुप्त ने अपने धारदार एवं युक्तियुक्त तर्कों से डॉ० त्रिपाठी की असंगत और अपारम्परिक मान्यता को निराधार सिद्ध कर इस क्षेत्र में पैर पसार रही बे सिर-पैर की आलोचना का जो समुचित उत्तर दिया है (दृ० काव्यादर्श, धर्मेन्द्र कुमार गुप्त भूमिका, पृ० 17-21), उसके लिए वे कोटिश:साधुवाद के पात्र हैं । वास्तव में 'काव्यादर्श' के तीसरे परिच्छेद को अप्रामाणिक ठहराने से पहले डॉ० त्रिपाठी को 'काव्यदर्श' का वह स्थल बताना चाहिए था, जहाँ दण्डी की प्रथम परिच्छेद के श्लोक 61 में यमक के सम्बन्ध में की गई-

'तनु नैकान्तमधुरमतः पश्चाद्विधास्येत।'

यह घोषणा कार्यान्वित की गई हो । दण्डी ने 'यमक' सदृश नैकान्तमधुर, सुकर-दुष्कर अलंकारों, चित्रकाव्य के विविध भेदों तथा दोषों के निरूपण के लिए तीसरे परिच्छेद की रचना की थी, यह निश्चय है । बिना तीसरे परिच्छेद के वर्तमान -'काव्यदर्श' विकलांग-सा हो जायेगा, इसलिये उसके पृथक्करण के लिए कोई भी प्रयास करना उचित नहीं होगा ।

'काव्यदर्श' के 'पूर्वशास्त्राणि संहत्य' (1/2), 'निबबन्धुः क्रियाविधिम्' (1/9), तैः शरीरच्च काव्यानामलंकाराश्च दर्शिताः (1/10) तथा किन्तु बीज विकल्पनां पूर्वाचार्यैः प्रदर्शितम्' 2/2 इन श्लोकांशों से सूचित होता है कि दण्डी के पहले काव्यशास्त्र के कई आचार्य हो चुके थे, जिन्होंने इस शास्त्र के नामकरण के साथ-साथ काव्य के शरीर, उसके शोभाधायक धर्म (गुण और अलंकार), विकल्पों (अलंकारों) के बीज तथा काव्य के लिए परिहार्य विविध दोषों के सम्बन्ध में अपनी-अपनी दृष्टि और सामर्थ्य के अनुसार विवेचन किया था । आचार्य ने दण्डी ने उनके ग्रन्थों का सूक्ष्म आलोचना करने तथा पूर्ववर्ती एवं समकालीन काव्यग्रन्थों का गहराई से अध्ययन के उपरान्त (प्रयोगानुपलक्ष्य च 1/2) उस समय तक स्थापित हो चुके काव्य के

सिद्धान्तों का जो परिसंस्कार किया (तदेव परिसंस्कर्तुमयमस्मत्-परिश्रमः 2/2), उसी का मूर्त रूप यह 'काव्यादर्श' है। कहना न होता कि दण्डी ने इसमें अपने समय तक के काव्यसिद्धान्तों को संशोधित (परिवर्तित एवं परिवर्धित) करके के साथ-साथ, अपने भी कतिपय सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया होगा। 'काव्यादर्श में निरूपित काव्ससिद्धान्तों को परिच्छेदानुसार इस प्रकार देखा जा सकता है।

प्रथम परिच्छेद के द्वितीय श्लोक में सबसे पहले 'काव्यलक्षण' करने की प्रतिज्ञा करने की अनन्तर वाणी की प्रशंसा, काव्यवणी की प्रशंसा, भाषा के सुप्रयोग और दुष्प्रयोग की फलश्रुति, काव्यदोषों की अनुपेक्षणीयता, काव्यगत गुण-दोषों के ज्ञान के लिए काव्यशास्त्र की आवश्यकता, सूरियों के द्वारा काव्यशास्त्र के निबन्धन के साथ-साथ काव्य शरीर और अलंकारों के निर्धारण की सूचना, काव्य (शरीर) की परिभाषा, छन्द के अनुसार काव्य का विभाजन और छन्दोविचिति में उसके विस्तृत विवेचन का संकेत, महाकाव्यका लक्षण, परम्परा की पृष्ठभूमि में कथा और आख्यायिका के लक्षण के उपरान्त दोनों को एक ही गद्यजाति की मान्यता, मिश्रकाव्य नाटकों के अन्यत्र विवेचन का संकेत, चम्पू की परिभाषा, भाषा के आधार पर काव्य के चार भेद, संस्कृत और भेदों सहित प्राकृत का उल्लेख, सेतुबन्ध की रचना के माध्यम से महाराष्ट्री की प्रशंसा, अन्य प्राकृतों का संकेत, भाषामूल काव्यों की अलग-अलग विशेषतायें, 'बृहत्कथा' के पैशाची में लिखे जाने का संकेत, दृश्यादि के आधार पर काव्य के प्रकारत्रयत्व का प्रतिपादन सूक्ष्म भेदों वाले वाणी के अनेक मागों की सूचना के बाद स्पष्ट अन्तर वाले वैदर्भ और गौडीय मार्ग के वर्णन की प्रतिज्ञा। दश गुणां के उद्देश्य-कथन के साथ उनके वैदर्भ मार्ग के प्राण और गौड मार्ग में विपर्ययत्व का प्रतिपादन, प्रत्येक गुण के लक्षणोदाहरण पूर्वक प्रतिपादन के साथ तत्तद् गुण के प्रति दोनों मार्गों के विशिष्ट दृष्टिकोण का निर्देश, गुण-निरूपण के मध्य ही प्रसंश अग्राम्यत्व, अनेयत्व अनुप्रास, यमक तथा गौणवृत्ति के प्रति आचार्य की दृष्टि की सूचना, इक्षु और गुड आदि के दृष्टान्त से प्रति-कवि में स्थित मार्गभेद के प्रतिपादन में अपनी असमर्थता का प्रतिपादन करने के बाद अन्त में बताया गया है कि काव्य के यद्यपि प्रतिभा, श्रुत और अभियोग (अभयास) ये तीन कारण होते हैं, किन्तु अभयास पूर्वक वाग्देवी की उपासना करने वाले कवि को प्रतिभा के न रहने पर भी विदग्ध-गोष्टी में विहार कराने योग्य काव्यनिर्माण की सामर्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

द्वितीय परिच्छेद में अलंकारों का निरूपण है। इसमें सबसे पहले अलंकार की परिभाषा के साथ यह बताया गया है कि अलंकारों की कल्पना आज भी हो रही हैं, इसलिये उसक पूर्ण रूप से निरूपण नहीं किया जा सकता। इसके बाद यह बताया गया है कि प्रत्येक अलंकार के मूलभूत तत्त्व का प्रदर्शन पूर्वाचार्य कर चुके हैं, दण्डी को अब उसका परिसंस्कार करना है। इसके पश्चात अलंकार के दोनों भेदों-मार्गविभाजक अलंकार गुण और साधारण अलंकार उपमादि-को पहली बार बताने के पश्चात साधारण अलंकारों के निरूपण का उपक्रम किया गया है। इसी क्रम में सबसे पहले स्वभावाख्यान (स्वभावोक्ति), उपमा, रूपक, दीपक आवृत्ति, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु सूक्ष्म लव, क्रम,

प्रेयस् रसवत्, ऊर्जास्विन्, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, अपह्नुति, श्लेष, तुल्ययोगिता, विरोध, अप्रस्तुत-स्तोत्र (अप्रस्तुतप्रशंसा), वजस्तुति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशीः, संसृष्टि और भाविक-इन 35 अर्थालंकारों का पूर्वसूरियों के नाम पर परिगणन किया गया है और उसके पश्चात् उपर्युक्त क्रम से ही प्रत्येक अलंकार का लक्षण, भेदोपभेद और उदाहरण के साथ विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। उसने अपने युग में स्वतन्त्र अलंकार के रूप में मान्य अनन्वय और ससन्देह को उपमा के भेदों, उपमारूपक को रूपक के भेदों में तथा उत्प्रेक्षावयव को उत्प्रेक्षा के भेदों में समाविष्ट कर दिया है। इसके अतिरिक्त उसने उपमेयोपमा नामक एक और अलंकार का 'उपमा' के अन्योन्योपमा नामक भेद के रूप में निरूपण किया है। इस प्रकार देखा जाए तो उसने कुल 40 अर्थालंकारों का निरूपण किया है।

दण्डी के अर्थालंकारों के इस विवेचन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कुल विवेचित 35 स्वतन्त्र अलंकारों में 27 के भेदों की संख्या 190 है। केवल उपमा के ही 32 भेद है। उपमा के इन भेदों में से कोई ऐसे हैं, जो आगे चलकर स्वतन्त्र अलंकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। 10 या उससे अधिक भेद वाले अलंकार ये है-आक्षेप (24), रूपक (20), हेतु (16), दीपक(12), और व्यतिरेक (10)। अन्य विकल्पित अलंकार ये हैं- श्लेष (9), अर्थान्तरन्यास (8), रसवन् (8), विरोध (6), विशेषोक्ति (5), स्वभावोक्ति, समासोक्ति और श्लेश (प्रत्येक4), आवृत्ति और अपह्नुति (प्रत्येक के तीन भेद), विभावना, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, सूक्ष्म, श्लेश, प्रेयम, उदात्त, तुल्ययोगिता व्याजस्तुति सहोक्ति, संसृष्टि और निदर्शन (प्रत्येक के दो भेद)। जिनके एक से अधिक भेद नहीं हैं, ऐसे अलंकार ये है-यथासंख्या, ऊर्जास्वी, पर्यायोक्त, समाहित, अप्रस्तुत प्रशंसा, परिवृत्ति आशीः और भाविक।

दण्डी ने यमक का निरूपण बड़े मनोयोग से किया प्रतीत होता है यद्यपि 'यमक' उनके लिए 'नैकान्तमधुर' है, किन्तु जिस विशाल फलक पर उसका निरूपण हुआ है वह इस तथ्य को झुठलाता प्रतीत होता है। दण्डी ने उसके कुल 315 भेद माने हैं। सदृष्ट और समुद्गक आदि सात भेद इसके अतिरिक्त है। आचार्य ने इसके लगभग 50 भेदों के उदाहरण के लिए स्वरचित पद्यों का प्रयोग किया है। विद्वानों की दृष्टि में 'दण्डी' का यमक निरूपण संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में परिपूर्ण तथा विशद निरूपण का अद्वितीय निदर्शन है।

यमक के पश्चात अन्य शब्दालंकारों में गोमूत्रिका, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र, स्वरनियम स्थाननियम, वर्णनियम तथा प्रहेलिका का निरूपण है। इनमें स्वरनियम, स्थाननियम तथा वर्णनियम में से प्रत्येक के चार-चार भेद तथा प्रहेलिका के 16 भेद है। यमक को छोड़कर शेष सभी अलंकार की दृष्टि में चित्र हैं। तृतीय परिच्छेद के अन्तिम विवेचनीय विषय के रूप में दण्डी ने दोषों को लिया है। ये दोष संख्या में दस हैं, जैसे-अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय, अपक्रम, शब्दहीन, मतिभ्रष्ट, भिन्नवृत्त, देशकाल, कलालोकन्यायागम विरोध। भामह के द्वारा विवेचित 'प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानि' रूप दोष का उन्होंने 'विचार कर्मशप्रायस्तेनालीढेन किं फलम' कहकर काव्य में विचार करने का विरोध किया है। दसों दोषों का यह विवेचन अत्यन्त प्रशस्त शैली में लभगण साठ श्लोकों में सम्पन्न हुआ है।

इस प्रकार 'काव्यादर्श के वर्ण्यविषय का परिचय देने के पश्चात् अब हम उसकी उन विशेषताओं के सरलता से रेखांकित कर सकते हैं, जिन्हे उनकी संस्कृत काव्यशास्त्र के लिए योगदान माना जा सकता है-काव्यशास्त्र की आदिम कालीन मान्यता के अनुसार काव्य के केवल शरीर पक्ष पर ध्यान देते हुए भी दण्डी, ने काव्य की जो 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' के रूप में परिभाषा दी उसके 'इष्टार्थ' में वह 'आत्मतत्त्व' भी विद्यमान है, जो बाद में 'रस' के रूप में काव्यात्मा माना गया। इसकी इसी विशेषता के कारण पण्डितराज जगन्नाथ जैसे रसवादी कवि और आचार्य ने इसके प्रभाव में अपनी काव्य-परिभाषा दी।

काव्यशरीर के अलंकरण के लिए जिस 'अलंकार' तत्त्व की उद्भावना की गई, उसमें उन्होंने प्रसिद्ध 'अलंकार' के साथ ही 'गुण' को भी सम्मिलित करके दोनों को समान महत्व दिया। यद्यपि इससे दोनों की स्पष्ट न हो सकने वाली भिन्नता परवर्ती वामनाचार्य के द्वारा ही स्पष्ट की जा सकी, तथापि दोनों को समान स्तर प्रदान करने का श्रेय तो दण्डी को मिलना ही चाहिए।

दण्डी पहला काव्याचार्य है, जिसने प्रतीक विभिन्न काव्यमार्ग को पहचान तथा स्पष्ट अन्तरों वाले दो वैदर्भी और गौडीय मार्गों और उनके नियामक तत्त्वों के रूप में दस गुणों का संयुक्तिक और सबल प्रतिपादित किया। यद्यपि उसके इस प्रतिपादन में कुछ त्रुटियाँ हैं, तथापि उसके ही सैद्धान्तिक आधार पर आगे बढ़कर वामन ने रीति के नाम पर मार्गों की संख्या, मध्यवर्ती रीति पांचाली की मान्यता के साथ, तीन की तथा रीति का स्तर इस सीमा तक विकसित किया कि उसे काव्य की 'आत्मा' माने जाने का सौभाग्य मिला। उसके इस सौभाग्य में दण्डी का ही योगदान है।

दण्डी ने महाकाव्य की जो परिभाषा दी वह काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक आचार्यो में सर्वश्रेष्ठ, तथा उसी में कुछ परिवर्तन-परिवर्धन कर विश्वनाथ ने उसे लगभग पूर्ण और युगानुकूल बनाया। कथा और आख्यायिका को एक ही गद्यजाति मानकर, दोनों में एकता प्रतिपादन कर दण्डी ने परम्परा से टक्कर लेने के साथ ही अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण का परिचय दिया है, यद्यपि सभी गद्यजातियों को एक मानने का उनका सिद्धान्त गले नहीं उतरता। दण्डी ने अपने गुण-विवेचन की कमी को दोष-विवेचन में दूर कर दिया है। उन्होंने दस दोषों का निरूपण बड़ी ही वैज्ञानिक दृष्टि से किया है। यद्यपि दण्डी ने गुण के समान दोष की भी कोई सामान्य परिभाषा नहीं दी, तथापि उनके दोषों के विश्लेषण से पता चलता है कि वे दोष को भावात्मक तत्त्व मानते हैं। दण्डी के उदाहरण प्रायः स्वरचित है और उनमें निबद्ध विषय-वस्तु जीवन के सभी क्षेत्रों से ली गई हैं। उनमें कुछेक स्थलों को छोड़कर, अपने लक्षण से सर्वथा संगति मिलती है।

दण्डी आचार्यर्य के साथ-साथ प्रतिभाशाली कवि भी है। अत्यन्त दुरूह शास्त्रीय विषय को अत्यन्त सरस और ललित भाषा में प्रस्तुत करने में उनकी कोई तुलना नहीं। दण्डी की इन विशेषताओं के प्रकाश में संस्कृत काव्यशास्त्र में उनके योगदान का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। यदि किसी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की लोकप्रियता के मूल में उसका वह महत्व होता जो उसने अपने क्षेत्र में अपने विशिष्ट योगदान के द्वारा उपार्जित किया होता है, तो 'काव्यादर्श' संस्कृत काव्यशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ प्रमाणित होता है, क्योंकि जो लोकप्रियता, विशेषकर भारत

के संस्कृतेतर तथा देशान्तरीय क्षेत्रो में, इसको मिली किसी अन्य ग्रन्थ को नहीं मिल सकी। इसकी इस लोकप्रियता का आकलन दो प्रकार से किया जा सकता है-1.अपने समकालीन और परवर्ती काव्यशास्त्रीय साहित्य पर इसके प्रभाव की दृष्टि से और 2. उसके सिद्धान्तों को समझाने के लिए उसके ऊपर की गई व्याख्याओं की दृष्टि से। पहले साहित्य-शास्त्र पर इसके प्रभाव को लेते हैं।

संस्कृत साहित्य के परवर्ती आचार्यों पर 'काव्यादर्श' का व्यापक प्रभाव पड़ा है, विशेषकर मध्यकालीन उत्तर भारतीय आचार्यों पर। भोज के दोनों ग्रन्थों- सरस्वतीकण्ठाभरण और श्रृंगारप्रकाश-में इसके व्यापक प्रभाव का कई रूपों में साक्षात्कार किया जा सकता है। कई स्थलों पर तो भोज ने बिना किसी परिवर्तन के ही काव्यादर्श के श्लोकों-कारिका और उदाहरण दोनों-को उद्धृत किया है और कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन के साथ। 'अग्निपुराण' के काव्यशास्त्रीय भाग की भी वही स्थिति हैं वामन की रीति और उसके आधारस्तम्भ के विवेचन में 'काव्यदर्श' का ही प्रभाव काम कर रहा है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। उत्तरकाल में अलंकारों की संख्या में जो भूयसी वृद्धि हुई, उसके भी मूल में दण्डी के अलंकार भेद ही है। कुछ अलंकार-भेद तो ज्यों के त्यों स्वतन्त्र अलंकार के रूप में गृहीत हो गए है। दण्डी की न केवल काव्यपरिभाषा ने अपितु उनके स्वरचित लालित्य उदाहरणों ने भी काव्यशास्त्र के अन्तिम दिग्गज आचार्य जगन्नाथ पण्डित तक को प्रभावित किया है। 'कामसूत्र' के व्याख्याकार और 'मालतीमाधव' के व्याख्याकार जगद्धर ने कुछ विषयों की पुष्टि के लिए 'काव्यादर्श' को उद्धत किया है, यह देखा जा चुका है। इसकी तुलना में अधिकांश कश्मीरी आचार्य और उनसे प्रभावित उत्तर भारतीय-विश्वनाथ आदि-दण्डी के प्रति अवश्य ही उदासीन रहे हैं। उनकी तुलना में उन्होंने उनके प्रतिद्वन्द्वी भामह की अधिक मान-सम्मान दिया हैं। इसका एक कारण भामह का कश्मीरी होना भी हो सकता है। किन्तु संस्कृत साहित्यशास्त्र के बाहर, अन्य भाषायी काव्यशास्त्रों पर जब दण्डी के प्रभाव को देखते है तो संस्कृत का बड़े से बड़ा काव्यशास्त्री भी सामने तुच्छ सा दिखाई देने लगता है। इतिहास बताता है कि तमिल, कन्नड़ और सिंहली भाषा के काव्यशास्त्र पर काव्यादर्श का व्यापक प्रभाव पड़ा है। अपनी रचना के डेढ़ दो शतक पश्चात् ही यह ग्रन्थ कन्नड़ भाषा के 'कविराजमार्ग' सिघली भाषा के 'विसवसलंकार' (स्वभाषालंकार) पर विभिन्न रूपों में अपना प्रभाव छोड़ने में सफल रहा है। इसी प्रकार ग्यारहवीं शती के मध्यभाग में बुद्धमित्र की तमिल रचना 'वीरचोरियम्' के अलंकार प्रकरण पर तथा लगभग 1140 में लिखित अज्ञात लेखक की तमिल रचना 'दण्डियलंकारम्' (दण्ड्यलंकारम्) हिन्दी के प्रसिद्ध रीतिकालिका कवि केशवदास की -कविप्रिया' (1601) पर इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है।

भारत के पड़ोसी देशों, जहाँ संस्कृत ही नहीं भारत की किसी भी भाषा का कोई काव्यशास्त्री नहीं पहुँचा सका, में भी दण्डी का व्यापक प्रभाव पड़ने की सूचना हैं सिंघली भाषा में रचित 'सियवलसलकर' लंका में वहाँ के राजा शीलवर्ण मेघसेन के द्वारा लिखा गया। 'काव्यादर्श' का प्राचीन तथा विश्रृत बौद्ध व्याख्याकार रत्नश्रोज्ञान लंका का ही निवासी थ। (अन्य किसी भी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का व्याख्यकार कोई बौद्ध भी हुआ है, ऐसा सुना नहीं गया) 12वीं शतीं के

एक अन्य सिंघली लेखक संघरिक्खत का पालि भाषा में लिखित अलंकार गन्थ स्रबोधालंकार 'काव्यादर्श' पर आधारित है। इसके कई पद्य 'काव्यादर्श' के पद्यों के अनुवादमात्र है। तिब्बत भी दण्डी के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। वहीं की भोंट भाषा में 'काव्यादर्श' का एक अनुवाद किया गया था, जिसका सम्पादन डॉ॰ अनुकूल चन्द्र बनर्जी ने किया है। इसके अतिरिक्त तेरहवीं शताब्दी में तिब्बती भाषा में लिखित 'काव्यदर्श' की एक टीका मिलती है।

6.6 सारांश

संस्कृत गद्य काव्य के लेखकों में आचार्य दण्डी की कृर्ति आज भी अक्षुण्ण है जिस गद्य शैली को बाण नें अपने मनोरम कादम्बरी के द्वारा प्रसक्त किया उसी शैली को दण्डी ने अपने सरल, सुगम, दशकुमार चरित के द्वारा उज्जवल बनाते हुए चमत्कृत किया है। इनके द्वारा लिखा हुआ लक्षण ग्रंथ काव्यादर्श अलंकारशास्त्र के अत्यंत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है। जिसका अध्ययन आप इस इकाई के माध्यम से बड़े ही सरलता पूर्वक कर सकते हैं। संस्कृत साहित्य के परवर्ती आचार्यों पर 'काव्यादर्श' का व्यापक प्रभाव पड़ा है, विशेषकर मध्यकालीन उत्तर भारतीय आचार्यों पर। भोज के दोनों ग्रन्थों- सरस्वतीकण्ठाभरण और श्रृंगारप्रकाश-में इसके व्यापक प्रभाव का कई रूपों में साक्षात्कार किया जा सकता है। कई स्थलों पर तो भोज ने बिना किसी परिवर्तन के ही काव्यादर्श के श्लोकों-कारिका और उदाहरण दोनों-को उद्धृत किया है और कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन के साथ। 'अग्निपुराण' के काव्यशास्त्रीय भाग की भी वही स्थिति हैं वामन की रीति और उसके आधारस्तम्भ के विवेचन में 'काव्यदर्श' का ही प्रभाव काम कर रहा है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। उत्तरकाल में अलंकारों की संख्या में जो भूयसी वृद्धि हुई, उसके भी मूल में दण्डी के अलंकार भेद ही है। कुछ अलंकार-भेद तो ज्यों के त्यों स्वतन्त्र अलंकार के रूप में गृहीत हो गए है। दण्डी की न केवल काव्यपरिभाषा ने अपितु उनके स्वरचित लालित्य उदाहरणों ने भी काव्यशास्त्र के अन्तिम दिग्गज आचार्य जगन्नाथ पण्डित तक को प्रभावित किया है।

6.7 शब्दावली

किंवदन्ती	-	प्रसिद्ध
सन्निविष्ट	-	मिला हुआ
निर्दिष्ट	-	बतलाया गया
प्रतिबिम्बित	-	चित्रित
वंशनाली	-	बांस की चोंगा
अविश्वसनीय	-	जिस पर विश्वास न किया जा सके

बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) काव्यादर्श में परिच्छेद है ?

(क) 6 (ख) 3 (ग) 9 (घ) 10

(ब) आचार्य दण्डी के पिता का नाम था।

(क) वीरदत्त (ख) चित्रभानु (ग) वाचस्पति (घ) राघव

(स) काव्यादर्श में अंलकारों की संख्या है।

(क) 30 (ख) 62 (ग) 35 (घ) 45

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) आचार्य दण्डी के माता का नाम.....है।

(ख) काव्यादर्श..... में विभक्त है।

(ग) दण्डी का जन्मस्थान.....है।

(3) निम्न वाक्यों में सही के सामने (√) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगायें:-

(क) दशकुमार चरित के रचनाकार आचार्य दण्डी है ( )

(ख) दण्डी ने गौणी रीति का प्रयोग किया है ( )

(ग) दण्डी ने दश गुणों का निरूपण किया है ( )

(घ) दण्डी ने अर्थालंकारों का वर्णन किया है ( )

6 . 8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) अ (ख) ब (क) स (ग)

(2) गौरी (ख) परिच्छेद (ग) कांची

(3) (√) (ख) (×) (ग) (×) (घ) (√)

6 . 9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) उमाशंकरशर्मा 'ऋषि'-संस्कृत साहित्य का इतिहास

(2) पं० बलदेव उपाध्याय-संस्कृत वांगमय का वृहद् इतिहास

6 . 10 उपयोगी ग्रन्थ

(1) कन्हैया लाल पोद्दार-संस्कृत साहित्य का इतिहास

(2) आचार्य दण्डी-दषकुमार चरित

(3) आचार्य दण्डी-काव्यादर्श

6 . 11 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) महाकवि दण्डी का काल निर्धारण कीजिए।

(2) काव्यादर्श लक्षण ग्रन्थ है इसे सिद्ध कीजिए।